राष्ट्र निर्माण के शिल्पी

डॉ भीमराव आम्बेडकर

नाथु सोसा

राष्ट्रनिर्माण के शिल्पी
डॉ. भीमराव अंबेडकर

नाथु सोसा

अनुवाद

डॉ. हेतल चौहान

नवसर्जन पब्लिकेशन

201, पेलिकन हाउस, जी.सी.सी.आई. के पास,

आश्रम रोड, अहमदाबाद

RASTRANIRMAN KE SHILPI DR. BHIMRAV AMBEDAKAR

By Nathu Sosa

Transleted by Dr. Hetal Chauhan

Navsarjan Publicationa, Ahmedabad

2019

ISBN : ??-?

© Nathu Sosa

प्रथम संस्करण : 2019

किंमत : ??.00

प्रकाशक

नवसर्जन पब्लिकेशन

201, पेलिकन हाउस, जी.सी.सी.आई. के पास,

आश्रम रोड, अहमदाबाद

टाईप सेटिंग

स्टाइलस ग्राफिक्स

अहमदाबाद

मुद्रण

युनिक ऑफसेट

अमदावाद

अर्पण

"हम सबसे पहले
और
अंत में भारतीय हैं"
लेकिन
जो कौम अपना इतिहास
नहीं जानती है
वह
कौम अपना इतिहास
भी
नहीं बना सकती है।"
– भारतरत्न डॉ. भीमराव अंबेडकर

सत्यमेव जयते

प्रधानमंत्री

Prime Minister

संदेश

श्री नाथुभाई सोसा द्वारा रचित 'राष्ट्रनिर्माण के शिल्पी डॉ. भीमराव अंबेडकर' पुस्तक के गुजराती से हिन्दी अनुवाद के बारे में जानकर प्रसन्नता हुई है। बाबासाहब के जीवन के विभिन्न पड़ावों और उनके विचारों को इस पुस्तक के माध्यम से लोगों तक पहुंचाना सराहनीय है।

भारत रत्न डॉ. अंबेडकर देश के उन महापुरुषों में से एक हैं जिनके कृतित्व व व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों को जानने और समझने का निरंतर प्रयास किया जा रहा है। राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत डॉ. अंबेडकर ने अपने जीवन में तमाम संघर्षों के बावजूद जिस पवित्र भावना से संविधान का निर्माण किया और देशवासियों को समता और एकता का उपहार दिया वह अतुलनीय है। युगद्रष्टा बाबासाहब केवल वंचित व शोषित वर्ग के उद्धारक ही नहीं, बल्कि समग्र राष्ट्र के नेता और मां भारती के सच्चे सपूत थे।

स्वाभिमान, स्वावलंबन और आत्मोद्धार के साथ 'शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो' का उनका मूलमंत्र करोड़ों लोगों के जीवन को उज्ज्वल बना रहा है। मुझे उम्मीद है कि 'राष्ट्रनिर्माण के शिल्पी डॉ. भीमराव अंबेडकर' पुस्तक बाबासाब के अमूल्य विचारों को लोगों तक पहुंचाने का सार्थक माध्यम बनेगी।

पुस्तक की सफलता की शुभकामनाओं सहित।

आपका,

(नरेन्द्र मोदी)

नई दिल्ली
आषाढ़ 17, शक संवत् 1941
08 जुलाई, 2019
श्री नाथुभाई सोसा

लेखक का निवेदन

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने संविधान की रचना के वक्त ही धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या स्पष्ट की थी। उन्होंने कहा था कि 'धर्मनिरपेक्षता अर्थात् अधार्मिकता नहीं है। धर्मनिरपेक्षता का अर्थ इतना ही है कि धर्म के विषय में राज्य या केन्द्र सरकार किसी पर मेहरबान नहीं रहेगी और ना ही किसी को दबाएगी। मतलब कि धर्म के विषय में सरकार निष्पक्ष रहेगी।' अर्थात् न्याय सबके लिए मगर चापलूसी किसी की नहीं।

इसी प्रकार उन्होंने कानून की बात भी कही है। कानून लोगों द्वारा लोगों के लिए बनाया गया है। लोगों के लिए कानून है, कानून के लिए लोग नहीं हैं। व्यक्तियों ने कानून बनाए हैं, कानूनों ने व्यक्ति नहीं बनाए। लोगों ने अपने सुख के लिए कानून का निर्माण किया है।

डॉ. बाबासाहब द्वारा भारत की आजादी के समय दूरदर्शिता से बनाए गए कानूनों में आजादी के दशकों बाद भी कोई विशेष बदलाव राजनैतिक हित को ध्यान में लेने के सिवाय, करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी है। इसका अर्थ यह है कि अगर डॉ. बाबासाहब द्वारा बनाए गए संविधान की बारीकियों का सम्पूर्णतया पालन हुआ होता तो आज भारत के लोगों की सुविधाओं और भारत की दुनिया में सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में साख और छवि कुछ अलग ही होती।

डॉ. अंबेडकर को हम दलित समाज में से तमाम समाजों की ओर ले जाने का

प्रयास करते हैं। तब इस वास्तविकता पर पर्दा डालकर कई लोगों द्वारा दलित समाज के लिए चुनावों के समय मगरमच्छ के आंसु बहाए जाते हैं। सिर्फ दलित समाज की बस्तियों में जाते समय ही डॉ. अंबेडकर को याद किया जाता है। ऐसे में समाज को जागरुक करने के आशय से कुछ एतिहासिक सच्चाइयों को आपके समक्ष रखने का प्रयास कर रहा हूं।

इस दौरान बहुत ही सुखद और कई आश्चर्यजनिक वास्तविकताएं जानने को मिलीं। डॉ. अंबेडकर को जो समाज अपना मसीहा मानता है, उस समाज के व्यक्ति पढ़े-लिखे और बहुत प्रतिष्ठित लोग मिले, परन्तु डॉ. अंबेडकर द्वारा किए गए कामों की पर्याप्त जानकारी उनके पास नहीं दिखायी दी है।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने कहा है कि, 'में मेरे दलित समाज की बहनों और भाईयों से एक सवाल पूछना चाहता हूं कि तुमने समाज के लिए क्या किया ? तुम लोग घर संसार के मायाजाल में ही पड़े रहोगे। परन्तु जिस समाज में आपका जन्म हुआ है, उस समाज की परिस्थिति क्या है ? इस ओर आपको ध्यान देना चाहिए। अपने समाज की उन्नति और उद्धार के लिए संभव हो, उतना त्याग कीजिए। आप नौकरी करते-करते भी समाज के जरुरतमंदों की यथासंभव आर्थिक सहायता करें। कड़े परिश्रम से ये हासिल सुविधाओं का ज्यादा से ज्यादा लाभ उठाइये। अभ्यास के बाद सरकार के महत्वपूर्ण पदों पर पहुंचें कि जहां से समाज की ज्यादा से ज्यादा सेवा की जा सके। अगर आपने सरकारी सहायता का उपयोग करके उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की और उच्च पदों तक नहीं पहुंचे तो बाद में पछतावा होगा। उच्च पद प्राप्त करने के बाद इस समाज को कभी ना भूलें।'

'साहित्यकारों से मैं आग्रहपूर्वक कहना चाहता हूं कि आप अपने साहित्य सर्जन द्वारा उदात्त जीवनमूल्यों और सांस्कृतिक मूल्यों का विकास कीजिए। अपने विचारों को संकुचित या सीमित ना रखें। अपने आपको उदार और उदात्त बनाएं। अपनी वाणी को चारदीवारी में सीमित ना रखें बल्कि गांव-गांव के गहरे अन्धेरों को दूर करने के लिए चारों ओर फैलाएं। आपको भूलना नहीं चाहिए कि हमारे देश में उपेक्षितों का, दलितों का और दीन-दुखियारों का एक अलग ही विश्व है।

उनका दुःख और उनकी व्यथा को समझें और साहित्य द्वारा जीवन उन्नत बनाने के लिए अपनी सृजन शक्ति को समर्पित कीजिए। सच्ची मानवता इसी में है।'

डॉ. अंबेडकर कहा करते थे कि लड़ो। लड़ेंगे नहीं तो पीछे रह जाएंगे। आप में लड़ने का मिजाज होगा तो अस्पृश्य समाज को निश्चित रूप से आगे बढ़ा सकेंगे। अगर संघर्षकारी मिजाज नहीं होगा तो आपकी सत्तर पीढ़ियां भी अगर इस दुनिया से चली जाएंगी, फिर भी आपका विकास या प्रगति तनिक भी नजर नहीं आएगी। जब तक समाज में महिलाओं की स्थिति सुधारेंगे नहीं, तब तक हमारे समाज की प्रगति होगी, एसा सोचना भी रेत में जहाज चलाने के समान है। समाज की प्रगति करनी है तो पहली और अंतिम शर्त यही है कि आप पढ़ें और आपके बालकों को भी पढ़ाएं। आपका मुक्तिदाता बन सके, ऐसा अगर कोई तत्त्व है तो वह मात्र शिक्षा ही है। भूतकाल में तथा भविष्य में भी यही रहेगा।

डॉ. बाबासाहब के लिए कहा गया है कि महिलाओं का, शोषितों का, दलितों का, अछूतों का, आदिवासियों का और खेत मजदूरों का अगर कोई भगवान है तो वह डॉ. बाबासाहब अंबेडकर हैं। धरती पर मैंने भगवान को देखा नहीं है। अगर भगवान को किसी रूप में देखा है तो वह सिर्फ और सिर्फ डॉ. बाबासाहब अंबेडकर हैं जिन्होंने पशुओं से भी खराब जीवन जीनेवाले अस्पृश्य समाज को सही अर्थों में हक और अधिकार दिलवाए। जिस तरह समुद्र लांघने से पहले जामवत ने हनुमान को उनकी शक्ति का बोध करवाया था, उसी तरह डॉ. अंबेडकर ने समाज को उसके भीतर मौजूद शक्ति का अहसास करवाया। अन्य समाज के व्यक्ति और दलित समाज के व्यक्ति की शक्ति और ताकत में कोई फर्क नहीं है, यह बोध करवाकर उन्होंने समाज को नवजीवन प्रदान किया है। उन्होंने कहा था कि अन्य समाज में जिस प्रकार से शक्तियां मौजूद हैं, वही शक्तियां आप में भी मौजूद हैं। अलबत्त आप अच्छे गुणों के संवर्धन और गुणाकार के लिए शिक्षा को समाज का जीवनमंत्र बनाएं। सभी मंत्रों से अग्रिम मंत्र है तो वह है 'शिक्षा मंत्र'। व्यक्ति के जीवन की लगभग सभी समस्याओं और प्रश्नों का निराकरण शिक्षण में ही मौजूद है।

डॉ. अंबेडकर की जो धारणा थी, वह आज सही साबित हो रही हैं। किसी भी क्षेत्र की बात आज हम करें, तो खयाल आएगा कि हम सभी स्वतंत्र भारत के नागरिक हैं परन्तु राजनैतिक तौर पर हम आज भी गुलामी ही भोग रहे हैं। अस्पृश्य समाज के हित की भात करनेवाले दलित, राजनैतिक अग्रणियों और अदलित समाज के हित की बात करनेवाले समाज के राजनैतिक अग्रणियों के बीच चयन की बात जब आएगी तब, अदलित समाज हंमेशा ऐसे दलित अग्रणी का चयन करेगा कि जो अदलित समाज कहे वैसा ही व्यवहार करे। अथवा अदलित समाज कहे वैसे ही काम करे।

इस देश को आजादी मिले कई बरस बीत गए, इसके बावजूद जिस प्रकार दलित समाज की प्रगति होनी चाहिए, वैसी नहीं हुई है। आज दलित समाज के प्रति शारीरिक छुआछूत कम दिखायी पड़ती है लेकिन मानसिक छुआछूत परोक्ष रूप से या प्रत्यक्ष रूप से हम आज भी महसूस करते हैं। राज्य अथवा राष्ट्र में पलायन करने के लिए इस समाज को मजबूर किया जाता है। एकसाथ 30 या ज्यादा प्रकार से दलित समाज की प्रकाड़ना की जाती है। आजादी के 70 वर्ष बाद भी जहां से शुरुआत की गई थी, हम वहीं पर आकर खड़े हैं। अदलित शक्तिशाली समाज द्वारा दलित जिस तरह से पहले गुलामी भोग रहे थे, वह आज भी शिक्षण, रहन-सहन में आगे बढ़ने के बावजूद राजनैतिक गुलामी की दशा भोग रहे हैं। यही स्पष्ट वास्तविकता है जो आजादी के 70 साल बाद तो क्या बल्कि 365 वें वर्ष में भी भोग रहे होंगे ?

हम इस स्वतंत्र भारत के, स्वतंत्र दलित राजनैतिक अग्रणी बन सके हैं ? परंतु इसी तरह समाज का राजनैतिक शोषण किया जा रहा है। इस समाज की प्रगति करना वास्तव में मुश्किल है। दलित राजनैतिक अग्रणियों को वास्तव में यदि समाज की प्रगति करनी हो तो पहले समाज को जागृत करना होगा।

आगामी सदी ज्ञान की सदी है। ज्ञान की सदी हमारे दलित समाज की सदी बने, इसके लिए हमें बहुत ज्यादा मेहनत करनी होगी। कहावत है कि 'कठोर परिश्रम का कोई विकल्प नहीं है।' हमारे समाज की जहां जैसी स्थिति है, वहां से

हमारे समाज की प्रगति किस तरह संभव होगी ? प्रगति कैसे की जा सकती है ? इसके लिए समाज के अग्रणियों, समाज के बुद्धिजीवियों, समाज के साहित्यकारों, समाज के श्रेष्ठियों और समाज के राजनैतिक अग्रणियों का गहन चिंतन करना होगा। अधिकारों के लिए कर्मशील बनेंगे तो समाज का विकास करने में कुछ सीमा तक सफल होंगे। हमें समाज को बड़ा करने के लिए समाज के बंधुओं को शिक्षा के लिए निरंतर प्रोत्साहित करना होगा।

हमारा समाज उन्नत दिशा में विकास करे, प्रगति करे, राजनैतिक स्वतंत्रता हासिल करे, ऐसा पुरुषार्थ प्रारंभ करें। समाज के अंतिम सिरे तक हमारे समाज के बंधु हैं। इनका विकास करने में मैं क्या कर सकता हूं ? ऐसी भावना उजागर करने के लिए गांवों से शुरु करके नगर-तहसील-जिला-राज्य या राष्ट्र तक एक कड़ी में बंधेंगे तो ही हम कुछ कर सकेंगे। स्वतंत्र भारत के बरसों बीत जाने के बाद, आने वाला समय भी वैसे ही बीत जाएगा। यह समाज जिस स्थिति में जीवन व्यतीत करता है, वैसी ही स्थिति में जियेगा। इसलिए समाज बड़ा हो, विचारशील बने और असमंजस में पड़े बगैर समाज हित में विशेष योगदान अर्पित करे, यह आवश्यक है।

समाज हित में काम करने की प्रेरणा और ऊर्जा हमें डॉ. बाबासाहब अंबेडकर की विचारधारा से मिली है। इसी विचारधारा को पकड़कर आगे बढ़ते रहेंगे तभी समाज का विकास कर सकेंगे। हम सब राजनैतिक तौर पर अलग-अलग लोगों में बंटे हुए हैं। लेकिन समय-संजोग-परिस्थिति हम सभी को एक करने से रोक नहीं सकती है। हमारे समाज के अलग-अलग दृष्टिकोण होंगे। अलग-अलग विचार होंगे परन्तु अलग भाषा और अलग प्रांत होने के बावजूद हमारे दलित समाज की समस्या एक ही है और उसमें कोई दो राय नहीं है। वह यह है कि दलित समाज असंगठित है, इसको संगठित होना ही पड़ेगा और इसके बगैर उद्धार भी नहीं है। अगर यह करने में हम असफल हो जाएंगे तो हमारी प्रगति की कल्पना एक मृगतृष्णा की तरह साबित होगी।

साथ ही यह भी कहना चाहूंगा कि अस्पृश्य समाज में से आनेवाले हमारे

कार्यकर्ताओं को विकास के तमाम रास्तों पर जूझना होगा। आज अनुसूचित जाति के समाज की स्थिति पर अगर हम विचार करें तो पता चलेगा कि ज्यादा कुछ हम हासिल नहीं कर पाए हैं। क्योंकि दलित समाज असंगठित समाज है। इसमें अलग-अलग समाज, अलग-अलग गोत्र तथा भिन्न-भिन्न जातियों के समूह है जिनमें हम बंटे हुए हैं। और यही अपने समाज की सबसे कमजोर कड़ी है। कोई भी जंजीर कितनी मजबूत हो, उसकी मजबूती को मजबूत कड़ी साबित नहीं करती बल्कि कमजोर कड़ी साबित करती हैं।

इस समाज में अलग-अलग समूह, अलग-अलग उपजातियों और छोटे-छोटे गोत्र और परगनों की संकुचित विचारधारा के कारण इस समाज में एक नेता नहीं है। इक दिशा नहीं है, एक विचार नहीं है। स्वयं स्वतंत्र है, दूसरों से ज्यादा बुद्धिमान है लेकिन अपने ही विचारों में व्यस्त रहते हैं और वह किसी की भी नेतागिरी स्वीकार करने पर सहमत नहीं होते हैं। इसलिए हमारा समाज प्रगति नहीं कर पाया है। कुल्हाड़ी के हत्थे की तरह हमारा उपयोग कर लिया जाता है। यह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हम महसूस कर सकते हैं।

गुजरात के अठारह हजार गांवों में आज भी ऐसे कई गांव हैं जहां अस्पृश्य समाज को मंदिरों में प्रवेश से वंचित रखा गया है। अस्पृश्य समाज ने 2500 वर्ष से ऐसी कठिन वेदना सहकर राष्ट्र की संस्कृति का जतन किया है, उसका पोषण किया है। इसके बावजूद आज भी हम महसूस करते हैं कि अस्पृश्य समाज को अस्पृश्य समाज के प्रति ही मनोभावों में भारी-भरकम फर्क आया है जो शारीरिक तौर पर है। लेकिन मन-मस्तिष्क के विचारों में अब भी बहुत कुछ करना बाकी है। आज भी बुद्धिजीवियों, विश्लेषकों और साहित्यकारों द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए अस्पृश्य समाज के लिए इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो उन्हें पसंद नहीं है।

जब दुनिया 21वीं सदी के दूसरे दशक में खड़ी है तब, हम जाति, धर्म, प्रांतवाद, भाषावाद और ऊंच-नीच के अखाड़ों में उतरकर राष्ट्र की शक्ति या योग्य परिप्रेक्ष्य में उपभोग करेंगे ? या फिर नफरत का बीजारोपण किसी ना किसी स्वरूप में राष्ट्र

में डालने या डलवाने की मनोवृत्ति में लगे रहेंगे ? या फिर भारतीय के तौर पर 21वीं सदी भारत के दलितों और सवर्णों के बीच के मतभेद दूर करने की सदी बने, इसका प्रयत्न करने के लिए हम प्रतिबद्ध बनेंगे ?

दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश भारत है और भारत में सबसे बड़ा अगर कोई समाज है तो वह दलित समाज है। दलित समाज की स्थिति को सुधारने के लिए डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने अपना जीवन खपा दिया और पूरे देश के साथ दुश्मनी मोल ली। स्वतंत्रता के दशकों बाद भी इस समाज की परिस्थिति बदली नहीं है। विशेष तौर पर आर्थिक और शैक्षणिक मामलों में भी अभी बहुत कुछ करना बाकी है। अगर शिक्षा प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों के प्रमाण की बात करें तो प्लानिंग कमीशन के आंकड़ों के मुताबिक 1991 में दलित समाज में शिक्षा का प्रमाण अन्य समाज का 57.69 प्रतिशत था जो 2001 में बढ़कर 68.81 प्रतिशत हुआ। इन आंकड़ों की तुलना में अन्य समाज के साथ करें तो 1991 में इन आंकड़ों का अन्तर 20.28 प्रतिशत था जो वर्ष 2001 में घटकर 14.12 प्रतिशत हुआ, जो आनंद का विषय है। लेकिन फिर भी इस क्षेत्र में दलित समाज अन्य समाज से काफी पीछे है। समग्र रूप से भारत की शैक्षणिक स्थिति की बात करें तो अभी बहुत कुछ कार्य करना बाकी है।

भारत में आज भी दलित समाज अन्य समाज से बहुत पिछड़ा हुआ है। अगर लोकतांत्रिक देश में लोकतांत्रिक रूप से हम दलित समाज का आंकलन करें तो, लोकसभा चुनाव में औसतन मतदान 60 प्रतिशत के आसपास है। इसमें से सबसे ज्यादा 30 प्रतिशत मतदान दलितों और मुस्लिमों द्वारा किया जाता है और शेष 30 प्रतिशत मतदान सामान्य मतदाताओं द्वारा किया जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि ज्यादा मतदान करनेवाले समाजों में दलित, मुस्लिम और अन्य पिछड़ा वर्ग शामिल है।

स्वतंत्र भारत में दलित समाज की जनसंख्या के बारे में अभ्यास करें तो 1961 में भारत की जनसंख्या 43.9 करोड़ थी और दलित समाज की जनसंख्या 6.44 करोड़ थी। यह भारत की जनसंख्या का 14.67 प्रतिशत थी। वर्ष 1971 में भारत

की जनसंख्या 54.79 करोड़ थी, दलित समाज की जनसंख्या 8 करोड़ थी जो भारत की जनसंख्या का 14.60 प्रतिशत थी। वर्ष 1981 में भारत की जनसंख्या 65.53 प्रतिशत थी जबकि दलित समाज की जनसंख्या 10.48 करोड़ थी। यह भारत की जनसंख्या का 15.75 प्रतिशत थी।

वर्ष 1991 में भारत की जनसंख्या 83.86 करोड़ थी जबकि दलित समाज की जनसंख्या 13.82 करोड़ थी जो भारत की जनसंख्या का कुल 16.47 प्रतिशत थी। वर्ष 2001 में भारत की जनसंख्या 162.86 प्रतिशत थी जबकि दलित समाज की जनसंख्या 16.66 करोड़ थी। यह भारत की जनसंख्या का 16.20 प्रतिशत थी जबकि 2011 में भारत की जनसंख्या करीब 121.02 करोड़ थी।

वर्तमान में देश में 68.83 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में बसती है जबकि 31.16 प्रतिशत जनसंख्या शहरों में रहती है। वर्ष 2001 में प्लानिंग कमीशन ऑफ इन्डिया के आंकड़ों के मुताबिक 16.60 करोड़ दलित समाज की आबादी 20.20 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों में बसती है। दलित समाज की कुल जनसंख्या में 45.20 प्रतिशत साक्षरता है जबकि 44.30 प्रतिशत दलित परिवारों के घरों में बिजली का कनैक्शन है। इसमें गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करनेवाले 36.25 प्रतिशत ग्राम्यक्षेत्रों में जबकि 38.47 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों में बसे हैं। उल्लेखनीय है कि प्लानिंग कमिशन के आंकड़ों के मुताबिक 4.42 करोड़ दलित परिवारों के पास घर है जिनमें 1.90 करोड़ पक्के मकान हैं। जबकि 2.16 करोड़ परिवारों के पास रहने के लिए घर तो हैं लेकिन वह पक्के नहीं हैं। जबकि ऐसे 35 लाख से ज्यादा परिवार हैं जिनके सिर पर आसमान और नीचे धरती हैं अर्थात् उनके पास घर नहीं है।

वर्ष 2014 की जनसंख्या की बात करें तो करीब 20 करोड़ दलितों की संख्या है। देश में रहनेवाले 121 करोड़ लोगों में से हर छठा व्यक्ति दलित समाज का है। इतनी बड़ी जनसंख्या होने के बावजूद इस समाज के लिए कोई ठोस कदम कोई भी केन्द्र या राज्य सरकार उठा नहीं सकी है। आज भी दलित समाज के बेघर परिवारों की संख्या बहुत बड़ी है, शिक्षा का प्रमाण भी बहुत कम है। हम सबको

साथ बैठकर विचार करने का अब समय आ गया है, ऐसा नहीं लगता ? ध्यान रहे कि अब इस देश में दलितोद्धार के लिए कोई अंबेडकर जन्म नहीं लेने वाले। जो कुछ भी करना है वह दलित समाज के अग्रणियों को, राज्य के शाषकों को इस समाज के साथ मिलकर करना है। धरती पर रोज हजारों लोग जन्म लेते हैं और लाखों लोग मृत्यु की चादर ओढ़कर हमेशा के लिए परलोक यात्रा पर निकल जाते हैं। हमारे दुःखों का निराकरण स्वयं हमारे सिवाय कोई नहीं कर सकता। यह आज के राष्ट्र की तासीर पर से देखा जा सकता है।

बहरहाल, अच्छे गुणों के संवर्धन और गुणाकार के लिए शिक्षा को अपने सामाजिक जीवन का मंत्र बनाइये। क्योंकि सभी मंत्रों से उपर अगर कोई प्रथम और अग्रिम मंत्र हे तो वह है शिक्षा का मंत्र।

इन सब परिस्थितियों के बावजूद इस समाज ने अपनी अलग पहचान खड़ी की है, यह बाद भी उतनी है सत्य है। कुछ विशेष कार्यों के मामले में तो यह समाज हमेशा ही आगे रहा है। आज से करीब 35-40 वर्ष पूर्व निर्माण मंडली, बुनाई मंडली, खादी ग्रामोद्योग, गृहउद्योग मंडली, चर्म उद्योग मंडली तथा शंटिंग कार्य करनेवाले कारीगरों में अगर किसी समाज का नाम है तो वह दलित समाज का था। परंतु आज की स्थिति पर विचार करें तो 50 से 60 वर्ष पहले के समय में दलित समाज कपड़े की फेरी, घी का व्यापार, चर्म उद्योग संलग्न फुटवेयर जैसी अनेक समाज उपयोगी वस्तुएं तैयार कर आर्थिक उपार्जन प्राप्त करता था। लोकतांत्रिक शासन में आज ज्यादा अफसरों के होने पर भी हमारे दलित समाज के लोग वर्तमान स्थिति में निर्माण मंडलियों में कार्य हासिल नहीं कर सकते हैं। इस व्यवसाय के साथ जुड़ा अन्य कोई व्यक्ति यह काम ले ना जाए, इस प्रकार की व्युहरचना बनायी जाती है। अदलित समाज के चालाक, होशियार, धनवान और ताकतवर लोग मिलकर हमारे सामने खड़े हो जाते हैं और हमें गिरा देना चाहते हैं। ईर्ष्या-द्वेष की हीन मानसिकता के चलते हम में से ही कई पीछे रह जाते हैं और किसी अन्य का हथियर बनकर समाज की प्रगति को अवरोधित करते हैं। यही वास्तविक स्थिति है जिसे हम देख सकते हैं।

बहुत से क्षेत्रों में मोटे तौर पर हमारी यही स्थिति है। हम लोग सही दिशा पर विचार किए बगैर कई नकारात्मक मामलों को आज भी आगे कर रहे हैं। हमारे समाज में अंदर-अंदर की लड़ाई और ईर्ष्या इस हद तक पहुंच चुकी है कि हम अपना वर्चस्व और सर्वस्व गुमा देना चाहते हैं, ऐसा लग रहा है। ऐसे कई उदाहरण नजरों के सामने आप सबने जगह-जगह देखे होंगे। आज भी आप मोड़-मोड़ पर सुनते ही होंगे कि, 'यह तो हरिजन है।'

आज भी अदलित समाज के मस्तिष्क में दलित समाज के व्यक्ति के प्रति अन्य समाज के व्यकित की आदर भावना कहीं दिखाई नहीं देती है। ऐसी आदर की मानसिकता नहीं है और भविष्य में कब आएगी, यह इस धरती पर जीनेवाला व्यक्ति बता नहीं सकता है। यह गूंज सुनायी देती है कि व्यक्ति की जन्म जाति पता नहीं होती, तब के समाज की उसके प्रति नजरिये और उस व्यक्ति का आंकलन करने की दृष्टि अलग होती है। जैसे ही पता चलता है कि यह व्यक्ति अस्पृश्य समाज में से आता है तो तत्काल ही समाज की उस व्यक्ति को देखने की और उसके नजरिये की दृष्टि में फर्क आ जाता है। किसी भी क्षेत्र के दो एक समान स्तर के व्यक्ति हो तो भी, अगर कोई एक व्यक्ति उसमें से अस्पृश्य समाज का होगा तो वह व्यक्ति चाहे कितना भी श्रेष्ठ हो, उसके मान-सन्मान में उस समाज के व्यक्ति की नजरों में कमी स्पष्ट रूप से दिखायी देती है। ऐसी घटनाएं पल-पल महसूस की जाती हैं। अस्पृश्य समाज के मानसपटल पर ऐसी घटनाओं के कारण कैसी और कितनी भयंकर पीड़ा होती होगी यह कल्पना, ऐसा व्यवहार करनेवाला व्यक्ति सोच भी नहीं सकता। यही सनानत सत्य है।

भारत का इतिहास गवाह है कि अस्पृश्य समाज ने वर्षों से अनेक प्रकार की पीड़ाएं, अपमान और अत्याचार सहे लेकिन उन्होंने भारतीय भूमि का तथा संस्कृति का जतन तो किया ही है। भारतमाता का दोहन नहीं बल्कि भारतमाता का पोषण किया है। आज भी हम महसूस करते हैं कि अदलित समाज में सदियों पुरानी जो मानसिकता है, वह दूर होने का नाम ही नहीं लेती है। किसी ना किसी स्वरूप में सामने आती ही है। अस्पृश्य समाज 18 वीं शताब्दी के आदिमानव वाले विचारों

को छोड़ेगा नहीं, तब तक विकसित समाज, विकसित राष्ट्र की कल्पना जादुई स्वप्न के समान बनी रहेगी। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने कहा है कि : आप हमेशा खयाल रखना कि जीवन में कोई भव्य ध्येय होना, एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात है। फिर वह अपने जीवन में प्रगति साधना हो, या देश के विकास का हो। परन्तु उसे प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अविरत रूप से कार्यरत रहना चाहिए। दुनिया की सर्व महान वस्तुएं अविरत परिश्रम द्वारा तथा धैर्य के साथ कष्टों और मुश्किलों का सामना करके ही हासिल की जा सकती है। आपके ध्येय पर आपकी सभी शक्तियों को केंद्रित कर दो। मनुष्य को जीने के लिए खाना पड़ता है, यह सत्य है। उतनी ही सत्य यह बात भी है कि मनुष्य को समाज के उद्धार के लिए काम करना है, उसके लिए जीना चाहिए।

मित्रों ! हम कब तक हजारों को दोष देते रहेंगे ? दूसरों को दोष देना आसान है लेकिन दूसरों में से हमारे अपने जीवन में अच्छा ग्रहण करना कठिन है। हमें प्रगति करनी है तो उन उच्च विचारों का अमल अपने जीवन में करना होगा। ऐसे उच्च विचारों के माध्यम से ही समाज अथवा राष्ट्र को दिशा दी जा सकती है और इसी से समाज और राष्ट्र प्रगति करते हैं।

बाबासाहब विदेश पढ़ने गए और वहीं से उन्होंने अपने कार्य के आधार पर जो उपलब्धि हासिल की, इसमें इस बात को देखा जा सकता है। अमेरिका के न्यूयार्क शहर में विश्वविद्यालय कोलंबिया युनिवर्सिटी है जिसके मुख्य गेट के भीतर भारतीय संविधान के जनक डॉ. बाबासाहब अंबेडकर का फोटो लगाया गया है। इसके नीचे लिखा गया है कि, 'हमें गर्व है कि ऐवे विद्यार्थी हमारी युनिवर्सिटी में पढ़कर गए हैं... जिन्होंने भारत देश का संविधान लिखकर इस देश पर बड़ा उपकार किया है।' कोलंबिया युनिवर्सिटी की स्थापना को 300 वर्ष हुए, इस अवसर पर गत 300 वर्ष के समयकाल में जो भी विद्यार्थी अभ्यास करके गए उनमें मेधावी और होशियार विद्यार्थी कौन था ? इसका सर्वे करवाया गया। इसमें प्रथम नम्बर पर नाम आया डॉ. बाबासाहब अंबेडकर का।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने कोलंबिया युनिवर्सिटी में परिश्रम की पराकाष्ठा की

थी। डॉ. अंबेडकर ने कोलंबिया युनिवर्सिटी में जिस अभ्यास के लिए प्रवेश लिया था उस कोर्स की अवधि 8 वर्ष की थी। लेकिन बाबासाहब ने यह अभ्यास सिर्फ 2 वर्ष 3 माह में ही पूरा कर लिया था। दिन के 24 घण्टे में से वह करीब 21 घण्टे अभ्यास किया करते थे और इसलिए ही इतने कम समयकाल में ही डिग्री प्राप्त कर सके। डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के सम्मान में कोलंबिया युनिवर्सिटी के मुख्य गेट पर उनकी कांस्य की प्रतिमा का अनावरण अमेरिका के राष्ट्रपति श्री बराक ओबामा द्वारा किया गया था, जिसके नीचे लिखा है, Symbol of Knowledge अर्थात् 'ज्ञान के प्रतीक।'

हमारे पड़ौसी देश श्रीलंका की राजधानी कोलम्बो में दो एकर जमीन पर डॉ. बाबासाहब अंबेडकर जीवन और उनकी फुल साइज की प्रतिमा स्थापित करने की मंजूरी मिली है। इसके साथ ही अन्य पांच एकड़ जमीन अंबेडकर मिशन के लिए श्रीलंका की राजधानी कोलंबो में महाबोधी सोसायटी के मुख्य कार्यालय के सामने महान अनागरिक धम्मपाल की प्रतिमा के पास डॉ. अंबेडकर की पूर्ण कद की प्रतिमा की स्थापना भी की जाएगी। इसके साथ ही कोलम्बो के पान्निपिटीम स्थल पर दो एकड़ जमीन में डॉ. अंबेडकर भवन का निर्माण किया जाएगा। केंडी में पांच एकड़ जमीन श्रीलंकन उद्योगपति डॉ. जीवक भंडारे ने डॉ. बाबासाहब अंबेडकर मिशन के लिए दान दी है।

जानेमाने लेखक और साहित्यकार गुणवंत शाह ने कहा है कि, 'डॉ. बाबासाहब अंबेडकर सवालदार, जवाबदार और रौबदार राष्ट्रनेता थे।'

अनुवादक की ओर से पुस्तक की ऊर्ध्वमुखी यात्रा

जब मैंने नाथुभाई की "राष्ट्रनिर्माण ना शिल्पी डॉ. भीमराव अंबेडकर" मेरे हाथ में ली तब एक अजीब-सी अनुभूति हुई और उस पर भी जब मैंने इस पुस्तक को पढ़ा तो लगा कि बंद तहखाने का दरवाजा खोल कर सदियों से दबे रहने को मजबूर यथार्थ के कंकाल को निकाल बाहर कर दिया है जिससे पूरा बाहरी जगत बेखबर था।

इस किताब को एक ही बैठक में पूरा करने के पश्चात् यह बात मन में आई कि सत्य कहने का जोखिम तो विरले ही उठा पाते हैं और इतिहास के एक अनछुए पन्ने का सत्य कहने का जोखिम तो बहुत ही दुष्कर कार्य हैं, कठिन कार्य है। पर श्री नाथुभाई जी ने यह किया। इसलिए "राष्ट्रनिर्माण ना शिल्पी डॉ. भीमराव अंबेडकर" भारतीय इतिहास के सत्य के साथ-साथ पूरे देश के सत्य का दस्तावेज बनकर सामने आया।

दलित चेतना के विकास का जीता-जगता उदाहरण स्वयं डॉ. भीमराव अंबेडकर हैं। उनकी सोच, उनका मंथन, उनका चिंतन, उनके व्याख्यान, उनका साहित्य दलित सोच का विकास हैं या यूँ कहूँ कि एक पूरा का पूरा दलित चेतना का, जागृति का इतिहास है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

यह किताब मूल गुजराती भाषा में लिखी गई थी। यही किताब हिंदी पाठकों को उपलब्ध कराने की मेरी और नाथुभाई की बहुत इच्छा थी। उसी वक्त ऐसी

ही इच्छा जाहिर करते हुए गुजराती दलित साहित्य की नींव समान श्री मोहनभाई परमारजी ने कहा कि, "स्वच्छ विचारों से, वैचारिक वफादारी से और तटस्थ रूप से श्री नाथुभाई ने जिस तरीके से डॉ. बाबासाहब के जीवन व भारत के इतिहास के इस पहलुओं को गुजराती भाषा में लिखा है उसे तो हिंदी पाठकों तक पहुँचाना ही चाहिए और यह काम तो हेतल ही करेगी।" यह कहकर उन्होंने मेरे मन में इस किताब का हिंदी भाषा में अनुवाद करने की सुषुप्त इच्छा को जगा दिया। इसके अतिरिक्त कई साहित्यकारों एवं चिंतकों ने भी इस ऐतिहासिक दस्तावेज का हिंदी में अनुवाद हो यह इच्छा जाहिर की। फलस्वरूप आपके हाथ में आज यह किताब है।

राजकीय स्वातंत्र्य हासिल करने के पश्चात् अब भारत को एक सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के ढाँचे में ढालने का ध्येय हमारे समक्ष था, तब इस काम के लिए हमें डॉ. भीमराव अंबेडकर के अलावा अन्य कौन राजकीय नेता मिल सकता था ? विद्वता के साथ-साथ कष्ट तथा संघर्ष से भरपूर उनका जीवन मुख्यत: तो भारत के करोड़ों लोगों को उनकी युगों पुरानी दास्ताँ से मुक्त कराने के ध्येय को समर्पित हो गया था। उन्होंने उन जीवों के तथा भारत के इतिहास में नए युग के दीप को प्रज्वलित किया था, और साथ में भारत में सामाजिक और आर्थिक लोकशाही के प्रवेश और निर्माण के विषय में भी उनका योगदान कम नहीं था।

इस किताब में डॉ. भीमराव अंबेडकर के जीवन एवं उनके राजकीय पक्ष को उजागर किया हैं। इस पुस्तक में सत्रह प्रकरण हैं। जिसके अंतर्गत एक से लेकर ग्यारह प्रकरणों के अंतर्गत "आज के सदर्भ में डॉ. भीमराव अंबेडकर", "विद्यार्थियों जागो... डॉ. बाबासाहब अंबेडकर", "डॉ. अंबेडकर और अस्पृश्यता के जख्म", "डॉ. बाबासाहब द्वारा अस्पृश्यता निवारण के लिए किए गए प्रयास", "डॉ. अंबेडकर और सत्याग्रह", "डॉ. अंबेडकर और आजादी का संग्राम", "डॉ. अंबेडकर और कांग्रेस", "डॉ. अंबेडकर और पक्षीय राजनीति", "डॉ. अंबेडकर और संविधान की रचना", "भारत के प्रथम मंत्रिमंडल से डॉ. अंबेडकर का इस्तीफा", "डॉ. अंबेडकर और धर्ममंथन" आदि प्रकरणों में डॉ. भीमराव अंबेडकर के अंगत जीवन एवं

राजकीय जीवन में उनको मिली यातना, तकलीफ, पीड़ा तथा उनको जिन मुसीबतों का सामना करना पड़ा उसके बारे में बताया गया है।

उसके बाद के प्रकरणों बारह से लेकर सत्तरह तक में "डॉ. अंबेडकर की सिद्धियाँ", "भीम विचारकर्णिका", "डॉ. अंबेडकर विषयक महानुभावों के विचार", "संविधान की रचना के पश्चात् महानुभावों के डॉ. भीमराव अंबेडकर के लिए विचार", "डॉ. अंबेडकर द्वारा लिखे गए लेख और पुस्तकों" की सूची दी गई हैं और अंत में "डॉ. अंबेडकर के जीवन की तवारीख" उनके जन्म से लेकर उनको मिले भारतरत्न सम्मान का वर्ष के अनुसार ब्यौरा दिया गया है।

आज डॉ. भीमराव अंबेडकर का जो भी साहित्य उपलब्ध हैं, उसे देखते हुए इस विषय पर किसी पुस्तक को निरर्थक नहीं माना जा सकता और, यह भी नहीं कहा जा सकता कि इससे किसी छोटी-मोटी समस्या का विवेचन किया गया है। यह पुस्तक आपके हाथों में रखते हुए मैं यह निश्चित तौर पर कह सकती हूँ कि इस पुस्तक से समाजशास्त्री, इतिहासवेत्ता और शोधकर्ता को भारतीय इतिहास के संदर्भ में गहन शोध कार्य करने की प्रेरणा मिलेगी। शोधार्थियों की दृष्टि से यह पुस्तक अमूल्य है। इस पुस्तक से शोध करने के जो निष्कर्ष प्रस्तुत होते हैं उससे इतिहासवेत्ताओं को आगे शोध कार्य की सामग्री उपलब्ध होगी।

आज यह पुस्तक आपके हाथों में देकर मैं बेहद खुशी का अनुभव कर रही हूँ, आज मैंने इस पुस्तक के द्वारा बाबासाहब डॉ. भीमराव अंबेडकर को शब्दांजलि देने का प्रयास किया हैं, मुझे विश्वास हैं कि यह पुस्तक डॉ. भीमराव अंबेडकर के ऊपर शोध कार्य करने वालों के लिए लाईट हॉउस साबित होगी। यह पुस्तक दलित एवं गैरदलितों को एक नया दृष्टिकोण भी देगी ताकि वे यथार्थ की अनछुई परतों के सत्य को जान सके, उसका एहसास कर सके, उसे पहचान सके।

इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद करने के लिए नाथुभाई ने मुझे अनुमति दी इसलिए मैं उनकी आभारी हूँ। मोहनभाई परमार ने इस पुस्तक के अनुवाद के लिए मुझ पर

जो विश्वास रखा इसलिए भी मैं उनकी बहुत आभारी हूँ मेरे माता-पिता, भैया-भाभी एवं प्यारे बच्चों का भी यहाँ धन्यवाद करना चाहती हूँ क्योंकि उनके सहयोग के बिना मैं यह कार्य पूर्ण नहीं पाती।

गुजराती से हिंदी अनुवाद के क्षेत्र में यह मेरा पहला प्रयास है। अत: हो सकता है कि भावबोध और अर्थबोध के स्तर पर सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से कहीं कोई कमजोरी रह गई हो फिर भी मैंने प्रयास किया है कि लिखा गया प्रस्तुत ग्रन्थ "राष्ट्रनिर्माण के शिल्पी डॉ. भीमराव अंबेडकर" (नाथुभाई सोसा) पढ़ने वाले पाठकों से अपना तादात्म्य स्थापित कर सके, अपने भीतर संजोई वैचारिकता को हिंदी-भाषी लोगों तक पहुँचाने में सफल हो, एक अनुवादक के रूप में अनुवाद के संदर्भ में पाठकों की प्रतिक्रियाओं का मुझे इंतजार रहेगा।

डॉ. हेतल गणपतभाई चौहान

१९-२०, परीक्षित सोसायटी, जमना नगर के पास
घोड दौड रोड, सूरत- ३९५००१ गुजरात.
दूरभाष : ९९७९८८१११८

Contents

1. आज के संदर्भ में डॉ. भीमराव अंबेडकर.....
2. विद्यार्थियों जागो... डॉ. बाबासाहब अंबेडकर.....
3. डॉ. अंबेडकर और अस्पृश्यता के जख्म.....
4. बाबासाहब का बचपन.....
5. डॉ. अंबेडकर द्वारा अस्पृश्यता निवारण के लिए किए गए प्रयास.....
6. डॉ. अंबेडकर और सत्याग्रह.....
7. डॉ. अंबेडकर और आजादी का संग्राम.....
8. डॉ. अंबेडकर और कांग्रेस.....
9. डॉ. अंबेडकर और पक्षीय राजनीति.....
10. डॉ. अंबेडकर और संविधान की रचना.....
11. भारत के प्रथम मंत्रिमंडल से डॉ. अंबेडकर का इस्तीफा.....
12. डॉ. अंबेडकर और धर्ममंथन.....
13. डॉ. अंबेडकर की सिद्धियाँ.....
14. भीम विचारकर्णिका.....
15. डॉ. अंबेडकर विषयक महानुभावों के विचार.....
16. संविधान की रचना के बाद महानुभावों के –
    डॉ. भीमराव अंबेडकर के विषय में विचार.....
17. डॉ. अंबेडकर द्वारा लिखे लेख और पुस्तकें.....
18. डॉ. अंबेडकर की जीवन तवारीख.....

आज के संदर्भ में डॉ. भीमराव अंबेडकर

डॉ. अंबेडकर के विचार उनकी जीवनयात्रा के दौरान जितने प्रस्तुत थे उतने ही आज भी हैं। उन्होंने कहा था, "यदि इस देश में किसी चीज की कमी है तो वह है राष्ट्रीय भावना की।"

यदि आज हम सामाजिक तथा राजकीय प्रश्नों का अध्ययन करते हैं, तो उनके विचार आज भी वास्तविक है। देश में अगर राष्ट्रीय भावना को बलशाली बनाया जाए तो बहुत से प्रश्नों और समस्याओं का समाधान हो सकता हैं।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने अपने जीवन में अनेकों यातनाएँ, संघर्ष एवं अपमान सहे थे। इस देश के करोड़ों पददलित बंधुओं को सामाजिक न्याय और सम्मान मिले इसलिए उन्होंने बहुत प्रयास किए थे। वंचितों और पीड़ितों को विकास का मौका मिले इसलिए वे जीवनभर कड़ी मेहनत करते रहे। देश में जातिगत तथा समाजिक भेदभाव के ताने-बाने की वजह से देश की एकता खंडित व छिन्न-भिन्न न हो जाए इस बात के लिए वे हमेशा सचेत रहते थे।

डॉ. बाबासाहब कहते थे, "इतना पढ़ने पर जो ज्ञानशक्ति मिली है उसका उपयोग सिर्फ अपने परिवार या अपनी जाति के लिए नहीं वरन् समस्त अस्पृश्य समाज के लिए करना था, अस्पृश्यों की समस्या विशाल हिमालय जैसी हैं, मैं हिमालय के साथ मेरा सिर फोड़ने के लिए तैयार हूँ, हो सकता हैं कि हिमालय अपनी हार स्वीकार न करे और मेरा खून से भरा सिर देखकर सात करोड़ अस्पृश्य हिमालय को तहस-नहस करने के लिए सज्ज हो जाए। यह बात तो तय है कि वे खुद अपने प्राण देने के लिए भी तैयार हैं।" अस्पृश्यों के घर के ईश्वरीय कार्य में अपना सर्वस्व न्योछावर करने की भावना तथा उस प्रकार के संनिष्ट कर्म की वजह से डॉ. अंबेडकर ने महात्मा गांधी और सरदार वल्लभभाई पटेल, नेताजी सुभाषचंद्र बोस की तरह इस देश में अपनी अलग पहचान बनाई है।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर कहते थे कि, "यदि आप मुझे अछूत मानते हैं तो

मुझे अछूत होने का गर्व है, यदि मैं अछूतों का उद्धार करने में विफल रहूँगा तो बिजली के खंभे पर लटककर खुदकुशी कर लूँगा।"

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने इस देश का संविधान २६ जनवरी, १९५० के दिन दिया, उस वक्त भारत के करोड़ों स्वातंत्र्य सेनानी और जनता ने भारत के भविष्य के कुछ सपने देखे थे। आजादी को इतनी सदियों बाद भी यदि हम चिंतन करें तो मन में प्रश्न उठते हैं कि क्या सच में वह सपने साकार हुए हैं ? तो मन के सभी कोनों से एक ही आवाज आएगी "नहीं"।

आज भी हमारे देश में बेरोजगारी-भुखमरी सहन करते और अशिक्षित लोगों की संख्या बहुत बड़ी है। आज भी यह देश विकासशील देशों की सूची में सबसे निम्न स्थान के करीब अपना स्थान रखता है। गौरतलब है कि अपने साथ ही आजाद हुए देश जापान, जर्मनी, इजराइल जैसे राष्ट्र अन्य विकसित राष्ट्र के साथ प्रथम स्थान के लिए स्पर्धा करते हैं तो वे प्रथम पंक्ति में स्थान प्राप्त करते हैं। जबकि हम आज भी कछुए की चाल से गति कर रहे हैं।

इस देश की १३२ करोड़ जनसंख्या में ६५ प्रतिशत से ज्यादा युवाधन है, विश्व के सबसे अधिक युवाओं की जनसंख्या प्राप्त देश होने के बावजूद इस जनशक्ति-युवाशक्ति का योग्य उपयोग न करना सरकार और समाज की सबसे बड़ी कमी है। साथ ही हम अपने देश के लोगों में आत्मविश्वास नहीं जगा पाए यह भी हमारी एक कमी है ऐसा चित्र उभरकर सामने आ रहा है। हमारे देश पर धार्मिक आक्रमण हो रहे हैं, जहाँ-जहाँ हिन्दु धर्म से अन्य धर्म में परिवर्तन हुआ वहाँ-वहाँ विभाजन की भावना अधिक रही है। पूर्वांचल की स्थिति बहुत खराब है। दक्षिण में श्रीलंका के मार्ग से, उत्तर में अपनी सरहदों से तथा पश्चिमोत्तर में पाकिस्तान के माध्यम से चीन हम पर कब्जा करने में लगातार कार्यरत है।

ऐसे वक्त में समाज को समरसता की भावना से एक डोर में बाँधने की जरूरत है। यदि समाज एक होगा तभी हम भारत के समक्ष आनेवाली किसी भी चुनौतियों का सामना कर सकेंगे। वर्तमान संदर्भ में डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के जीवनपथ के स्मरण समाज एवं राष्ट्र को दिशादर्शन करानेवाले हैं। यदि हमें अपने राष्ट्र को

वैभवशाली, प्रगतिशील और समृद्ध बनाना है तो राष्ट्र को एवं १३२ करोड़ की जनसंख्या को धर्म, पंथ, भाषा के बंधन को छोडकर मैं इस राष्ट्र के लिए क्या कर सकता हूँ ? राष्ट्रवाद की भावना को जगाना पड़ेगा। एक भी रूपये को खर्च किए बिना सर्वप्रथम करने लायक यदि कोई काम है तो वह है राष्ट्रीय भावना को बढ़ाना। मैं इस देश के कायदे-कानून का उसका पूर्णत: जतन करूंगा, मेरी संपत्ति के तरह ही प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्र की संपत्ति का जतन करूंगा, मेरे देश को नुकसान हो ऐसा एक भी कार्य नहीं करूंगा। जब इस प्रकार की भावना प्रत्येक भारतीय के जीवन में चरितार्थ होगी तब इस देश की प्रगति को कोई नहीं रोक सकता।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर सिर्फ किसी एक वर्ग के नेता नहीं अपितु समग्र राष्ट्र के नेता थे। उन्होंने समग्र राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान किया था। उनका कार्य सिर्फ दलितों तक ही सिमित था ऐसा समझना ही एक बहुत बड़ी गलतफहमी है। उन्होंने समग्र हिन्दु समाज को या फिर भारतवर्ष को प्रतिष्ठा देने के लिए संघर्ष किया। उनको हिन्दु विरोधी मानना भी उनके साथ अन्याय करने के बराबर होगा। उनकी महानता गाँधीजी, सरदार पटेल, डॉ. सुभाषचंद्र बोस जितनी ही प्रभावक है।

हमें डॉ. अंबेडकर के दृष्टांत से यह समझना है कि तेजस्विता किसी भी जाति की व्यक्ति में होती है अर्थात् मानव मात्र में होती है। अत: प्रत्येक व्यक्ति को अपनी प्रतिभा का विकास करने का समान मौका मिलना चाहिए। उनके विषय में ऐसा कहा जाता है कि, "अस्पृश्य जाति के एक लड़के ने अपनी मेहनत और होशियारी से मेधावी प्रतिभा प्राप्त की।" जैसे महामानव राजमहल में जन्म लेते हैं, वैसे ही वे सामान्य गरीब परिवार में भी जन्म लेते हैं। अंबेडकर की असाधारणता तब सिद्ध हुई कि जब वे धूल से शिखर तक पहुँच गए थे। विपुलता के बीच विकास करना शायद सरल है, अपितु अभाव के बीच विकास करना कठिन है। लार्ड लिनलिठगो के साथ चर्चा करते वक्त डॉ. बाबासाहब ने कहा था कि, "यदि आपको बुरा न लगे तो मुझे एक प्रश्न पूछने की इच्छा है।" उन्होंने पूछा, "क्या आप इस बात को मानते हैं कि मैं अकेला ही पाँच सौ डिग्रीधारियों के बराबर हूँ।" लार्ड ने कहा, "हाँ, मैं अवश्य ऐसा ही मानता हूँ।" यह डॉ. बाबासाहब की

मेधावी प्रतिभा की पहचान थी।

शिवाजी विश्वविद्यालय के डॉ. बाबासाहब अंबेडकर अनुसंधान विकास केन्द्र द्वारा बाबासाहब के शब्दसंग्रह और उनके अंग्रेजी के विषय ज्ञान पर एक सर्वे किया गया और लगातार दो वर्ष के संशोधन के पश्चात् डॉ. बाबासाहब के विभिन्न लेखों, पुस्तकों इत्यादि में उपयोग किए शब्दों की संख्या ८५०० जितनी थी। अर्थात् उनके शब्दकोश में ८५०० शब्द देखने को मिले। इसका मतलब यह हुआ कि उनके द्वारा लिखे गए पुस्तकों तथा लेखों से शब्दों को अलग किया गया और जब उनका जोड़ मिलाया गया तब यह तथ्य तय किया गया कि सामान्य तौर पर जब किसी भी लेखक के शब्दसंग्रह में १००० शब्द होते हैं तब उसको विचारक कहा जाता हैं, किंतु यहाँ बाबासाहब में उससे भी ज्यादा अधिक गुना क्षमता है। शोधकर्ता ने कई शब्दों का अर्थ डिक्शनरी से ढूंढने का प्रयत्न किया लेकिन वह ढूंढ नहीं सके। कई शब्द दो-तीन या चार शब्दों से बनाए गए थे एवं संस्कृत, पाली और प्राकृत भाषा का उपयोग करके बनाए गए थे। जो डिक्शनरी में भी नहीं दिखाई दिए, इस तरह इससे उनको भारत की अन्य भाषा के विषय में कितना ज्ञान था, यह ज्ञात होता है। यह तो उस विश्वविद्यालय की बात हैं, जिसने डॉ. अंबेडकर के लिखे शब्दों पर आधारित शब्दकोश की रचना के लिए मंजूरी और सहायता माँगी है, लेकिन केन्द्र सरकार द्वारा ११ वीं पंचवर्षीय योजना तक वह दी नहीं गई थी। आज भी ऐसी स्थिति है।

दलित बंधुओं पर हो रहे अत्याचार को वाणी मिले तथा उनको न्याय मिले इसलिए डॉ. बाबासाहब ने आग्रह रखा, उसके पीछे भी उनकी देश की एकता की भावना ही मुख्य रही हैं। यदि देश में समरसतायुक्त आनंद का माहौल पैदा करना है तो देश में रही जातिर्यों को निर्मूल करना होगा एसी भूमिका डॉ. बाबासाहब की थी। डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ऐसा कहते थे कि, "जब तक जातिवाद होगा, तब तक संगठन होगा नहीं, जब तक संगठन नहीं होगा, तब तक हिन्दु दुर्बल और दीन रहेंगे।" जातिवाद ने संगठन और सहकार जैसे अच्छे कार्य में रूकावटे खडी की हैं। हिन्दु जागृति जैसा कुछ नहीं है, प्रत्येक हिन्दु में समाज सुधार के डॉ.

बाबासाहब के प्रयास अखंडरूप से चल रहे थे।

आज आजादी के इतने वर्षों पश्चात् भी धर्मनिरपेक्षता के जिस मुख्य स्तंभ पर संविधान की रचना हुई है, उस धर्मनिरपेक्षता का सही अर्थ क्या है ? धर्मनिरपेक्षता के विषय में रो-पीटकर राजकीय पक्षों तथा कथित मानवतावादी इत्यादि खुद अपनी आवश्यकता के अनुसार नागरिक, समाज तथा राष्ट्र को गुमराह करने का प्रयास करते हैं।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर को विश्वास था कि, "एक व्यक्ति-एक मूल्य" के लोकतंत्र के तत्व को सजीव रखना है तो समाज की आर्थिक व्यवस्था की रचना को विचारों का आधार देने की उतनी ही आवश्यकता है। इस विचार से सामाजिक दृष्टि से पददलितों को स्वयं की उन्नति करने के लिए समक्ष बनाने के लिए आरक्षण का अत्यंत अभूतपूर्व तत्व हमारे संविधान में समाया गया है। समाज की असमान रचना में इस कमजोर समाज इकाई को योग्य हिस्सा मिले यही इस व्यवस्था का उद्देश्य है।

श्री भीखूजी इदात जो लिखते हैं उस आधार पर कहें तो – भारतरत्न डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के जीवन और कार्य पर आजकल विविध प्रकार से विचार मंथन शुरू हो गया हैं। डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने १९ मई, १९१३ के दिन कोलंबिया विद्यापीठ के मानवशास्त्र विभाग के अभ्यासवर्तुल समक्ष पढ़े 'भारत की जातियाँ' निबंध से लेकर १९५६ में सारनाथ में उनके द्वारा पढे गए आखरी व्याख्यान तक में विभिन्न विषय पर उनके विचार देखने को मिलते हैं। उन्होंने संशोधनात्मक ग्रंथ, सार्वजनिक व्याख्यान, आंदोलन के माध्यम से मार्गदर्शन, संपादकीय विचार, सामाजिक, आर्थिक और राजकीय विषयों पर विस्तुत सुस्पष्ट विचार पेश किए हैं। यह विचार हक और कर्तव्यबोध कराने वाले हैं। उसमें आत्मसम्मान के लिए कठोर आत्मपरीक्षण के प्रत्यक्ष दर्शन हैं। जिस तरह किसी भी महापुरुष के विषय उनके स्थायी, शाश्वत और तत्कालिन विचारों के दो हिस्से करने पड़ते हैं उसी तरह डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के विचारों को भी दो हिस्सों में विभाजित करना पड़े ऐसा है। डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के प्रदीर्घ समय के विचार आज भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। राष्ट्र की एकात्मकता तथा राष्ट्र, संस्कृति व धर्म विषयक

उनका मुलभूत चिंतन हमारे लिए हमेशा मार्गदर्शक बनेगा। उन्होंने हमेशा राष्ट्रहित को ही प्रधानता दी हैं, जो उनके जीवन से दिखाई देता हैं। हमें उनके संपूर्ण चिंतन का आधार इस राष्ट्र की मिट्टी, देश के संरक्षण और धर्म के अधिष्ठान में दिखाई देता है। उनका राष्ट्रचिंतन अपने देश की एक अमूल्य बपौती है।

इससे पूर्व समाज सुधार एवं धर्म के स्वरूप को विशुद्ध करने के लिए भगवान बुद्ध ने तत्कालीन समाज की मान्यताओं की आलोचना की थी। उन्होंने यह आलोचना समाज से लोगों को दूर करने के लिए नहीं की थी। वर्तमान समय में डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने समाज की भलाई एवं धर्म के हित के खातिर तथा हमारा आधुनिक समाज सरल और सुदृढ़ बने उस दृष्टि से ही कार्य किया। मेरी एसी मान्यता है कि उन्होंने समाज में अलग पंथ खड़ा करने के लिए कार्य नहीं किया और इसलिए ही इस युग के भगवान बुद्ध के वारिस के रूप में उनकी पवित्र स्मृति को मैं अत:करणपूर्वक वंदन करता हूँ।

डॉ. अंबेडकर के आंदोलन से पाँचवें पुनर्जीवन और हिन्दु समाज का पुनर्गठन आरंभ हुआ। हिन्दु धर्म एवं समाज के विरुद्ध अंबेडकर द्वारा किया गया विप्लव भूचाल की तरफ हिला देने वाला था। इस विप्लव का स्वरूप भगवान बुद्ध से लेकर आज तक के क्रांतिकारियों के द्वारा व्यक्त किए गए स्वरूप से अलग ही था, क्योंकि डॉ. अंबेडकर पिछले २५०० वर्षों में दलित समाज में जन्मे प्रथम क्रांतिकारी नेता थे। उन्होंने हिन्दु समाज की विषम समाज रचना और हिन्दु धर्म के विरुद्ध विप्लव किया, इतना ही नहीं उन्होंने हिन्दु धर्म के इतिहास में अभूतपूर्व ऐसे क्रांतिपर्व का आरंभ किया। इस क्रांति के पीछे का उद्देश्य बहुत ऊँचा और महान था। डॉ. बाबासाहब का उद्देश्य हिन्दु धर्म के शुद्धिकरण द्वारा उसमें क्रांति करके हिन्दु समाज को पुनर्गठित करके हिन्दु समाज को पुनर्जीवन देने का था। ऐसा करके वे हिन्दु समाज और हिन्दु धर्म का अध:पतन तथा उसकी मानहानि होने से रोकना चाहते थे। इसलिए उनके द्वारा हिन्दु धर्म और हिन्दुस्तान के लिए किया गया काम आधुनिक भारत के पुनर्जीवन के कार्य में राजा राममोहन राय, ज्योतिबा फुले, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानंद और न्यायमूर्ति रानडे द्वारा किए

गए कार्य से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। डॉ. अंबेडकर द्वारा भारत के संविधान एवं राजकीय तथा सामाजिक क्षेत्र में दिया गया योगदान नि:संदेह अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर की हमेशा से इस प्रकार की भूमिका रही है, उन्होंने कभी भी इस विचार के साथ समझौता नहीं किया। हिन्दु धर्म और हिन्दु राष्ट्र के कुछ दोषों की वजह से यह देश गुलाम हुआ ऐसा उन्होंने कई बार सार्वजनिक स्थानों पर कहा हैं। जब तक अपने अंदर रहे सामाजिक दोष नष्ट नहीं होंगे तब तक देश में सुख के दिन नहीं आएंगे। ऐसा डॉ. अंबेडकर दृढतापूर्वक कहते थे। २१ सितम्बर के दिन 'बहिष्कृत भारत' में 'हिन्दु धर्मशास्त्र' शीर्षक से लिखे गए एक संपादकीय लेख में डॉ. बाबासाहब कहते हैं कि, "हिन्दु राष्ट्र अत्यंत प्राचीनकाल से उदित राष्ट्रों में से एक हैं। यह बात जगजाहिर हैं, उसको पुन: याद करने की आवश्यकता नहीं है। उसके साथ के इजिप्त, आसोरिया, रोम, ग्रीस आदि जड़ से नष्ट हो गए हैं वह उतना ही सत्य है। लेकिन हिन्दु राष्ट्र शक्तिशाली राष्ट्र है इसलिए इतने वर्षों तक टिका हुआ है वह उसका शौर्य नहीं, अपितु जिन लोगों ने उसे जीता उसके कारण ही वह जीवंत है ... हिन्दु राष्ट्र के अपयश की परंपरा का कारण उसका विपरीत समाज बंधारण है यह निर्विवाद है और जिस अर्थ में उसका समाज बंधारण धर्मशास्त्र के अनुरूप है यह देखते हुए हिन्दु राष्ट्र का अध:पतन भी उसके धर्मशास्त्र की वजह से ही हुआ है यह स्वभाविक लगता है।"

वास्तव में देखा जाए तो डॉ. बाबासाहब अंबेडकर धर्म विरोधी नहीं थे अपितु वे सही अर्थ में धर्म के प्रखर समर्थक थे। धर्म की परिभाषा में रहा एकात्मकता का भाव डॉ. बाबासाहब अंबेडकर को पूर्ण रूप से मान्य था। लेकिन उन्होंने धर्म के आचरण में रही भ्रष्टता के कारण खड़ी हुई विषमता पर कठोर प्रहार किए। हिन्दु समाज के मूल में रही सांस्कृतिक एकता के लिए मान होने के बावजूद आचरण में रहे अमानुषी वर्तन के प्रति उनको चिढ़ थी। 'भारत की जातियाँ' विषयक निबंध में डॉ. बाबासाहब कहते हैं, "वंशशास्त्र की दृष्टि से लोकसमूह की एकता के लिए सिर्फ सांस्कृतिक एकात्मकता ही एकता की शक्ति हैं। मैं बेधड़क कहना चाहता हूँ कि इस देश के लोगों की सांस्कृतिक एकता के मामले में दूसरा कोई भी देश

भारत की बराबरी नहीं कर सकता। भारत सिर्फ भौगोलिक दृष्टि से ही एक है ऐसा नहीं किंतु यहाँ किसी भी क्षेत्र में सांस्कृतिक एकता नीचे से ऊपर तक देखने को मिलेगी। किंतु इस एकता के मूल में जातीय समस्या का स्पष्टीकरण करना अधिक कठिन है। हिन्दु समाज एकदूसरे से अलग जातिसमूह होता तो यह विषय काफी सरल बन गया होता। लेकिन सर्वप्रथम एक ही समाज से उत्पन्न जातियों की उत्पत्ति का स्पष्टीकरण करना कठिन है।"

सांस्कृतिक एकता में आगे जाकर जो विकृतियाँ आई वह धर्म के उद्देश्य से असंगत ऐसी आचार पद्धति और रूढ़ी उत्पन्न होने के कारण आई। इसलिए तो डॉ. बाबासाहब कहते थे कि, "धर्म की आवश्यकता गरीबों को हैं, उस पर भी पीड़ित लोगों को धर्म की आवश्यकता अधिक हैं। गरीब इंसान आशा के सहारे जीता हैं, उसके जीवन के मूल में आशा है। यदि यह आशा ही नष्ट हो जाएगी तो उसका जीवन टिकेगा कैसे ? धर्म इंसान को आशावादी बनाता है और पीड़ितों तथा गरीबों को सन्देश देता हैं कि, "घबराने की जरूरत नहीं, जीवन आशामय बनेगा।"

भारतीय समाज की लगातार चिंता भाषावार प्रांतों की रचना करना अर्थात् एकता की भावना की जड़ में प्रहार करने जैसा हैं। राष्ट्र की एकता अखंडितता और राष्ट्र निर्माण में जितनी मात्र में प्रांतिय भावना का पोषण किया जाएगा उतनी ही मात्रा में राष्ट्रीय भावना का बीज मुर्झा जाएगा। भाषावार प्रांत रचना करने से अच्छा है संपूर्ण राष्ट्र को एक भाषा मिले उसमें ही सच्चा राष्ट्रहित है, ऐसा बाबासाहब ने कहा है। यदि भाषावार प्रांत रचना के तत्व पर काम किया होता तो इस देश में १७१ भाषा बोलने वाले लोग हैं, लेकिन जिस योजना से हिन्दुओं को नुकसान होता हो वह योजना किस काम की ? ऐसा प्रश्न करके उन्होंने आगे कहा कि नहेरु कमेटी की योजना विषयक हमने जो विवेचन किया है उस पर आपको संपूर्ण विचार करना चाहिए। वह विवेचन निस्वार्थ है। इस कमिटी की योजना का जो विरोध हुआ है वह विरूध अस्पृश्यों को बर्बाद किया उसके लिए नहीं, किंतु उसमें हिन्दु का भी नुकसान नजर आ रहा है, हिन्दु समाज के ऊपर भी एक

अनिष्ट है इसलिए मैंने उसका विरोध किया है। इस योजना से कोई नुकसान नहीं होगा ऐसा समझकर कुछ लोग उसका साथ देते होंगे अथवा थोड़ा नुकसान होगा ऐसा सोचकर साथ देते होंगे ऐसे दोनों वर्गों से हमें कोई निस्बत नहीं है। लेकिन इन दोनों वर्गों के अलावा भी एक बहुत बड़ा वर्ग है, जो इसमें कोई भी नुकसान नहीं है ऐसा मानकर इस योजना का साथ दे रहे हैं। इस वर्ग को उचित समझ मिले इसलिए यह प्रयास है। मुझे इस प्रयास को सफल बनाने के लिए अत्यंत स्पष्टता से पेश करने की आवश्यकता है। इस लेख का स्पष्टीकरण पढ़कर कुछ लोग मुझे दोष देंगे। व्यवहार में कुछेक प्रसंगों को छुपाकर रखना फायदेमंद होता हैं तो कुछेक प्रसंगों में सत्य छुपाने जैसा बड़ा कोई पाप नहीं होता है। आज का यह प्रसंग दूसरी तरह का होने के कारण यह स्पष्टता करने की आवश्यकता आन पड़ी है। जो सत्य है वहीं लोगों के समक्ष निर्भयता से रखना चाहिए। हिन्दु समाज का रोष मुझ पर है। उसमें मुसलमान समाज का भी रोष जुड़ जाए यह ठीक नहीं, इतना तो मुझे समझ में आता है, लेकिन जिसमें देश का अहित है उसमें मेरा भी अहित है। मेरी एसी भावना होने से यह जोखिम हमने सिर पर लिया है। उसकी सार्थकता समझकर लोकमत को योग्य दिशा मिलेगी ऐसी मुझे आशा है।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने विकट परिस्थिति में भी राष्ट्रीय एकात्मकता का सूत्र हमेशा पकड़कर रखा, अत: उनकी देशभक्ति का वर्णन परिस्थिति निरपेक्ष राष्ट्रभक्ति ऐसा किया गया है। उनके सभी आंदोलन और राजनीति का एक ही सूत्र था 'भारत एक सामर्थ्यशाली राष्ट्र के रूप में विश्व के समक्ष खड़ा हो।' इसके लिए उन्होंने अनेकों बार समाज को जागृत किया है। उनकी यह ज्वलंत राष्ट्रभक्ति के दर्शन उनके संविधान समिति के आखरी व्याख्यान से व्यक्त होते हैं। उस व्याख्यान का उत्तरार्ध भारत की स्वतंत्रता पुन: अपने हाथों से चली तो नहीं जाएगी ? ऐसी आशंका व्यक्त करता है। परिणामस्वरूप देश में जागृति लाने के लिए वे देश को सतर्क करते हैं। २५-११-१९४९ के दिन दिल्ली में संविधान समिति के अपने व्याख्यान में उन्होंने कहा था, "भारत २६ जनवरी, १९५० के दिन स्वतंत्र होगा,

इस स्वातंत्र्य का क्या होगा ? वह अपने स्वातंत्र्य की रक्षा कर सकेगा या फिर से उसे गँवा देगा ? देश के भविष्य को लेकर मुझे बहुत चिंता होती है। जो गँवा दिया उसकी वजह हिन्दुस्तान के कुछेक निवासियों का कपटी षड्यंत्र है और यह सत्य हृदय को असह्य तकलीफ दे रहा है।

"भारतीय इतिहास में यह जो घटनाएँ घटी हैं उसका पुनरावर्तन होगा तो नहीं ? यह प्रश्न मेरे मन को बेचैन कर रहा हैं। जातिभेद और अलग-अलग ध्येयों को सामने रखकर जिन राजकीय पक्षों की स्थापना हुई है और जिसकी स्थापना होगी वे जाने-अनजाने अपने पुराने शत्रु में बढोत्तरी कर रहे हैं। ऐसे विचार मेरे मन में उठ रहे हैं और उससे अपने देश का भविष्य कैसा होगा इसकी चिंता मुझे हो रही है। भारत के लोग अपने पक्ष की सोच से ज्यादा अपने देश को अधिक महत्त्व देंगे या अपने पक्ष की विचारधारा को अधिक महत्त्व देंगे यह मैं नहीं कह सकता लेकिन इतना है कि यदि अलग-अलग पक्ष अपने देश से ज्यादा अपनी विचारधारा को अधिक महत्त्व देंगे तो अपनी स्वतंत्रता पुन: मुसीबत में आ जाएगी और शायद यह स्वतंत्रता हमेशा के लिए चली जाएगी। ऐसी मुसीबत हम पर पुन: न आ जाए इसके लिए हम सबको पूर्व तैयारी करने की आवश्यकता है। हम सब अपने खून की आखरी बूंद तक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा अपने प्राणों का बलिदान देकर भी करेंगे, ऐसा दृढ निश्चय सबको करना चाहिए। संवैधानिक मार्ग का सबको उपयोग करना चाहिए ऐसा उन्होंने सुझाव दिया हैं। सामाजिक विषमता से देश का नाश होगा ऐसा संकेत उन्होंने दिया है। उन्होंने सामाजिक लोकतंत्र अर्थात् स्वातंत्र्य, समता और बंधुता की तरफ ध्यान खींचा है और यह सब करते वक्त व्यक्तिपूजा से अलिप्त रहने का आह्वान भी किया हैं। वे कहते हैं कि, "ज्होन स्टुअर्ट के संदेश का पालन करना चाहिए।" उनके संदेश अनुसार हम में से कोई भी आदमी कितना भी महान क्यों न हो तो भी उसके कदमों में हमें स्वतंत्रता के फूल अर्पण नहीं करने चाहिए। महान व्यक्तियों के लिए कृतज्ञता दिखाना कोई गलत बात नहीं है, किंतु कृतज्ञता व्यक्त करने में भी मर्यादाएँ हैं। आयरलैण्ड के देशभक्त डेनियल-ओ-कोनेल ने मार्मिकता

से कहा है कि, "स्वाभिमान का बलिदान देकर कोई भी व्यक्ति कृतज्ञ नहीं रह सकेगा। अपने चारित्र्य का बलिदान देकर कोई स्त्री कृतज्ञ नहीं रह सकेगी और स्वातंत्र्य का बलिदान देकर कोई भी राष्ट्र कृतज्ञता व्यक्त नहीं कर सकेगा।" इस भयसूचक संदेश की आवश्यकता किसी दूसरे देश से ज्यादा भारत को अधिक है। इसका कारण यह है कि भारत की राजनीति में भक्ति अथवा व्यक्ति पूजा की भावना जितनी घर कर गई है उतनी किसी भी देश की राजनीति में नहीं है।

किसी भी एक व्यक्ति ने धार्मिकता में भक्ति व्यक्त की तो उसको जन्मजन्मांतर के फेरे से मुक्ति मिल जायेगी। परंतु कोई भी व्यक्ति राजनीति में भक्ति अथवा व्यक्ति महात्म्य दिखाएगा वह राजकीय क्षेत्र में तानाशाही की स्थापना करेगा। डॉ. बाबासाहब के उपरोक्त कथन से उनके दूरंदेशीपन का आज हमें अनुभव हो रहा है।

ऐसे इस दूरदर्शी महापुरुष ने हमारी समक्ष प्रस्थापित किए हुए राष्ट्रचिंतन की ओर आज तक हमने उपेक्षा दिखाई है। यदि इस देश को सामर्थ्य, संपन्न, सुसंगठित और एकात्म बनाना है तो डॉ. बाबासाहब द्वारा व्यक्त किए राष्ट्र विचार, उनके द्वारा किए गए संकेत और उनके द्वारा बताए गए मार्ग को योग्य तरीके से ग्रहण करना चाहिए। हमें उनके विचारों को नोट करके इनके विचार स्वरूप प्रकाश में अपने आचरण को भी गतिमान करना चाहिए। उनका विचारधन ही हमारी राष्ट्रीय विरासत है। इन विचारों की उपेक्षा करने से ही आज अपने देश समक्ष चिंताजनक परिस्थिति खड़ी हो गई है। किंतु हम निराश नहीं होंगे तथा किसी भी परिस्थिति पर काबू प्राप्त करने के लिए आज अपना जो सामर्थ्य हैं, तेज है वह प्रकट करेंगे और विजय तथा सिर्फ विजय की दिशा में ही आगे बढ़ेंगे। तभी सही अर्थ में हम डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के विचारों और मूल्यों को साकार कर सकेंगे।

लेखक प्रो. अनिरुद्ध देशपांडे ने लिखा है कि, "महामानव बोधिसत्त्व डॉ. बाबासाहब अंबेडकर का जीवन विविध पहलुओं से भरा है। समाज की एकात्मकता और रचना के निर्माण का विचार पेश करना है तो सामाजिक समता के आचरण

को सभी को अंत:करण से स्वीकार करना चाहिए। ऐसा महत्त्वपूर्ण संदेश उनके जीवनचरित्र से मिलता है। आधुनिक राष्ट्रवाद के महान रचयिता के रूप में उनका नाम इतिहास में अमर रहेगा। डॉ. अंबेडकर ने राष्ट्रवाद का विचार अनेक दृष्टिबिंदु से रखकर दिया है।"

किसी भी राष्ट्र का परिचय उस शब्द के समाज के आचारविचार से ही विश्व को होता है। एकात्म राष्ट्र ही एकरस और समतायुक्त समाज का परिणाम है यह विचार डॉ. बाबासाहब ने रखा है। जन्म के आधार पर ऊँचनीच के भेदभाव से घिरा समाज एकात्म राष्ट्र की रचना नहीं कर सकता, ऐसा उन्होंने दृढ़ता से प्रतिपादित किया है। सुदृढ और बलशाली राष्ट्र का निर्माण उस समाज के घटक के परस्पर संबंध पर आधारित होता है। इसलिए इन सभी घटकों को एक परिवार के सदस्यों की तरह और भाईचारे का संबंध बाँधकर एकरस होना चाहिए। हम सब एक ही ईश्वर के बच्चे हैं और उसमें भेदभाव उत्पन्न करने वाले दलालों को दूर धकेलने का विचार बाबासाहब ने पेश किया था। स्वातंत्र्य, समानता और बंधुत्व इन तीन शब्दों से बाबासाहब को बहुत प्रेम था। फिर भी समाज का गठन करना है तो बंधुत्व की भावना से होता है और तभी इंसानियत का संबंध प्रस्थापित हो सकता है ऐसा विचार पेश करते हुए बाबासाहब कहते हैं, "मेरे सामाजिक तत्वज्ञान को तीन शब्दों में गूंथा जा सकता हैं और वे शब्द हैं स्वातंत्र्य, समता और बंधुत्व। मेरे तत्वज्ञान में स्वातंत्र्य और समता इन दोनों का उल्लंघन न हो इसलिए सिर्फ संरक्षण के लिए मैंने उसमें निर्बंध को स्थान दिया है, फिर भी निर्बंध ही स्वातंत्र्य और समता के विषय में होने वाले उल्लंघन के लिए भरोसा दे सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास नहीं है। मेरे तत्त्वज्ञान में सर्वोत्तम स्थान पर बंधुत्व है। स्वातंत्र्य और समता सिर्फ बंधुत्वभावना में ही है और उसका दूसरा नाम हैं इंसानियत ! एवं इंसानियत ही धर्म का दूसरा नाम है।

"डॉ. बाबासाहब के उपरोक्त विचार उनकी समाज की कल्पना बंधुभाव पर आधारित थी, यह दर्शाता है। यदि समाज की एकात्मकता राष्ट्रवाद का तात्पर्य

हैं तो प्राचीन भारतीय परंपरा द्वारा जपे गए बंधुत्व का आदर्श, एकात्मकता का महत्त्वपूर्ण तंतु है।"

आदर्श समाज की रचना नैतिकता के सर्वमान्य नींव पर होनी चाहिए, ऐसा डॉ. बाबासाहब के तत्वज्ञान का संकेत था। गौतम बुद्ध की विचारधारा में तत्व "शील" को डॉ. बाबासाहब ने अपना आराध्य देव माना था। शील का संवर्धन ही व्यक्तिनिर्माण का महत्त्वपूर्ण अंश है, समाज की उन्नति नैतिकता के आधार पर होनी चाहिए और सिर्फ भौतिक प्रगति ही उसका मानदंड नहीं होना चाहिए ऐसा उन्होंने अपने व्याख्यान "मेरे तीन गुरु और तीन पूज्य देवताओं" में कहा है। भारतीय संस्कृति गुरुपरंपरा का आदर्श डॉ. बाबासाहब के तत्वज्ञान में नजर आता है। उसको मिली सामाजिक मान्यता उनकी समाज विषयक आत्मीयता का प्रतीक है। गौतम बुद्ध, संत कबीर और महात्मा फुले इन तीनों को गुरु मानने का अर्थ है समाज की रचना कैसी होनी चाहिए ? इस विचारधारा से डॉ. बाबासाहब ने भारत का भविष्य के लिए एक सपना देखा है।

इंसानियत, समता व समाज के लिए असीम करुणा एवं शाश्वत टिकने वाले इन संस्कारों की छाप और इन गुरुओं के तत्वज्ञान का प्रभाव डॉ. बाबासाहब के मन पर हुआ है। "यदि हिन्दु धर्म के लोगों को अपने राष्ट्र को जाग्रत करना है तो उनको बौद्ध धर्म के विचारों को समझना चाहिए।" उनमें जन्मी सामाजिक परिवर्तन की परिकल्पना उनको राष्ट्र विषयक कल्पना की समझ देती है।

भारतीय समाज जातपाँत के भेदभाव से खोखला हो गया है। इस बात का दुःख डॉ. बाबासाहब ने व्यक्त किया है। यहाँ तक कि इस जातिभेद विरुद्ध के संघर्ष में उन्होंने अपने जीवन की होली जला दी। इस जातिगत भेदभाव की वजह से सांस्कृतिक एकता खत्म हो गई है और भेदभाव ही संस्कृति बन गई है इस बात के दुःख को डॉ. बाबासाहब ने अपने जीवन की चौखट पर अत्यधिक उग्र तरीके से दर्शाया है। बिना जातिभेद और सांस्कृतिक एकता पर

रचित समाज रचना को राष्ट्र का आधार मानने की बात को उन्होंने स्वीकारा हैं। उन्होंने "भारत की जातियों की मीमांसा" लेख के अंतर्गत देश में फैले अस्पृश्यता और जातिभेद का उन्होंने अत्यंत तीखे शब्दों में वर्णन किया है, उसका निर्माण करने वाली कुरूढ़ियों और कुप्रथाओं की भी कड़े शब्दों में निंदा की है। इसका निवारण सामाजिक एकात्मकता स्थापित करने से होगा ऐसा आग्रह उन्होंने इस विचार के आधार पर ही किया है। एकजुट भारतीय समाज ही मजबूत राष्ट्र निर्माण का आधार है, ऐसा वर्णन करते डॉ. बाबासाहब उपरोक्त लेख में लिखते हैं, "भारतीय लोकसमूह एकजुट समाज हैं भारत में आए विविध वंशों के लोग अलग-अलग प्रदेश में स्थायी होने के बाद भीतर ही विलीन हो गए और उसमें से सांस्कृतिक एकता निर्माण हुई। यह सांस्कृतिक एकता ही एकात्मकता का सही रूप है।" उनके अनुसार राष्ट्रवाद ही सांस्कृतिक एकात्मकता का दूसरा नाम है ऐसा सिद्धांत स्पष्ट होता है। भारतीय जातियाँ अर्थात् इस एकजुट समाज के कृत्रिम टुकड़ों से निर्मित निश्चित और स्थिर घटक। यह टुकड़े टूट ना जाए इसलिए ऐसे सामाजिक समता के मार्ग डॉ. बाबासाहब के विचारधन से निर्मित हुए हैं। राष्ट्रनिर्माण और सांस्कृतिक एकवाक्यता का एकदूसरे पर अवलंबन इस विचार से स्पष्ट होता है।

डॉ. अंबेडकर के राष्ट्रवाद का ध्यान खींचने वाला लक्षण भावात्मक एकता ही होना चाहिए ऐसा हमें लग रहा है। मनुष्य मात्र के मानसिक विकास और बंधनों के विचार निर्माण प्रक्रिया में यह बात मुख्यत: नजर आती है। जातिप्रथा के कारण इस भावात्मक एकता का नाश होता है। इसलिए राष्ट्र को खड़ा होने में रूकावटें आती हैं ऐसा डॉ. बाबासाहब ने कहा है। यदि कोई भी परिवर्तन या क्रांति समानता का भरोसा नहीं दे सकती हैं तो वह अर्थहीन हैं। समाज झुंड की तरह नहीं रह सकता है। अत: वह संगठित अवस्था में ही रहना चाहिए और इसके लिए उसको कुछ समान सूत्रों का स्वीकार करना चाहिए। ऐसे जातिप्रथा के बारे में विचार पेश करते हुए डॉ. बाबासाहब ने कहा हैं, "यदि काम का बँटवारा समाज में जरूरी है तो भी श्रमिकों का विभाजन जरूरी नहीं।" भौगोलिक परिस्थिति,

समान रिति-रिवाज, उत्सव, रूढ़ि-परंपराएँ ही सिर्फ समाज के संविधान में काफी नहीं हैं। समान भाषा से इंसान दूसरे समाज की इकाई बन जाता हैं, ऐसा नहीं है। एकजुट समाज का निर्माण भावात्मक एकता अर्थात् अंत:करण की एकरसता के बिना उत्पन्न नहीं होता है। उस अर्थ में राष्ट्रवाद का आधार भाववाही एकता हो सकता है। ऐसा डॉ. बाबासाहब ने "एनिहिलेशन ऑफ कास्ट" नामके प्रख्यात निबंध में बताया हैं। वे कहते हैं, "एकात्मकता की भावना का निर्माण करने के लिए समाज के सभी कार्यों में उसे हिस्सा लेना चाहिए। वह उसके साथ एकरस हो जाना चाहिए और दूसरों के मन में खड़ी होने वाली भावनाएँ उसके मन और अंत:करण को स्पर्श करनी चाहिए। सामान्य कामों में एक इकाई के रूप में हिस्सा लेकर उस काम का यश-अपयश मेरा खुद का है एसी भावना का जागृत होना ही इंसान के समाजबंधन को बाँधने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।" जाति-व्यवस्था के कारण यह भावात्मक एकता नष्ट होने की वेदना व्यक्त करने वाले समाज का संविधान मानसिक एकता से होगा। इस भावना की घोषणा बाबासाहब ने की है। सामाजिक विषमता का नाश करने का चिरंतन मार्ग इस मन के मेल से ही साकार होगा एसी भूमिका थी।

ऐसी विषम परिस्थिति के ऊपर समाज के निर्माण का कठिन कार्य डॉ. बाबासाहब ने किया। समाज में निर्मित जीवन कलह राष्ट्र के निर्माण में मुख्य रुकावट बनती आयी है। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का भोग बना हुआ अस्पृश्य समाज या उत्पादन के साधनों का मालिक न बनने वाला गरीब समाज ही इस समाज की विषमता है। यदि समाज की ऐसी इकाई इस मौके से वंचित रह गई तो समाज एकता और उन्नति नहीं कर सकेगा। इसी अनुभव के आधार पर डॉ. बाबासाहब ने दर्द के जड़ की चर्चा की है। समान तक का अभाव सामाजिक और आर्थिक रोग का मूल कारण है। समाज की इस मानसिकता और परंपरागत कुरीतिओं की वजह से, समान तक के अभाव का प्रश्न उठा है। नौकरी, धंधा, व्यापार, अर्थप्राप्ति इन सभी मामलों में अस्पृश्य समाज ऊपर वर्षों से हो रहे अन्याय को डॉ. बाबासाहब ने अपने चिंतन में स्थान दिया है। उसमें भी इस अनामत या आरक्षित जगह का

प्रस्ताव रखा और इस तरह अस्पृश्य समाज को समान तक देने वाले साधन के रूप में उसका विचार होने लगा। बाबासाहब ने "अस्पृश्यता निवारण करने के मार्ग" बताए हैं। उसमें उन्होंने "समान अवसर" का सूत्र सब के सामने रखा है। परस्पर संबंधों का विकास तो होना ही चाहिए, किंतु इसके साथ हमें पारिवारिक संबंधों के दृष्टिकोण से समान तक का माहौल खड़ा करने की जिम्मेदारी भी स्वीकारनी चाहिए। डॉ. बाबासाहब को मान्य ऐसे राष्ट्र निर्माण के काम में समान अवसर के सूत्र का स्वीकार ही महत्त्वपूर्ण है।

"मेरे समाज के लोगों को कहना – मैंने अनेकों कष्टों और
जिंदगीभर दुःख सहन करके मेरे विरोधियों के साथ लड़ाई लड़कर
जो कुछ भी हासिल किया है, बड़ी मुश्किल से यह काफिला आज
आपको जहाँ दिख रहा हैं, वहाँ लाया हूँ। मार्ग में नई-नई रुकावटें
आ जाए तो भी यह काफिला अब पीछे हटना नहीं चाहिए। मेरे
साथियों ! यदि आप इस काफिले को आगे ले जाने में असमर्थ हो तो
इस काफिले को वहीं छोड़ देना चाहिए,
किंतु काफिला किसी भी हालत में वापिस लौटना नहीं
चाहिए, यही मेरा लोक संदेश है।"
– डॉ. बाबासाहब अंबेडकर का देश के नाम अंतिम संदेश।

विद्यार्थियों जागो

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर

(रविवार ११-०९-१९३८ के दिन पुणे में आयोजित
११वें अस्पृश्य विद्यार्थी सम्मेलन में अध्यक्ष पद से दिया गया प्रवचन)

आज का सम्मेलन वैसे तो विद्यार्थियों का हैं, फिर भी यहाँ बैठे हुए समूह की तरह नजर घुमाते हैं तो यहाँ विद्यार्थियों से ज्यादा जो विद्यार्थी नहीं हैं, ऐसे लोगों की ही संख्या यहाँ नजर आ रही है। खिचड़ी में चावल की जगह दाल ज्यादा हो जाती है वैसा यहाँ इस सम्मेलन का हाल हुआ है। जबकि देखा जाए तो जिस अर्थ में यह 'विद्यार्थी सम्मेलन' है, तब विद्यार्थियों को उपदेश के दो शब्द कहना मैं मेरा फर्ज समझता हूँ। क्योंकि आज मैं यहाँ आया हूँ वह विद्यार्थियों के सम्मेलन के लिए आया हूँ। आज के सम्मेलन के अध्यक्ष पद को स्वीकारने से पूर्व मैंने कार्यकारी मंडल के समक्ष कुछ शर्तें रखी हैं। वे सभी शर्तें विद्यार्थी मंडल ने मान्य रखी इसलिए आज के इस सम्मेलन की वैभवता और भव्यता (अर्थात् चमक-दमक) थोड़ी कम लग रही होगी। मेरा प्रवचन मुख्यतः विद्यार्थियों के लिए है। इस कारण अन्य लोगों को नीरस लगे यह संभव है। यद्यपि, विद्यार्थियों को वह जरूर पसंद आएगा, ऐसा मेरा मानना है। विद्यार्थियों ने मुझे यह मौका दिया इसलिए उनका शुक्रिया अदा करना मैं मेरा फर्ज समझता हूँ।

मेरा जीवन तो अभी गाँव में बसने वाले अनपढ़ और जुल्म अत्याचार से त्रस्त लोगों की शिकायतें सुनकर उनका हल निकालने और उनकी इस समस्याओं का सुखद समाधान कैसे लाया जाए उसकी चिंता में गुजर रहा था, इस वजह से विद्यार्थी वर्ग की तरफ जितना देना चाहिए उतना पर्याप्त ध्यान देने का मुझे मौका नहीं मिलता है। इसलिए मैं विद्यार्थियों की उपेक्षा कर रहा हूँ, ऐसी गलतफहमी कुछ लोगों को हो रही है तथा कभी-कभी ऐसे सुर भी मेरे कानों में आए हैं। लेकिन सर्व प्रथम आपको एक बात कहना चाहता हूँ, एक

अकेला-अटुला आदमी उसके जीवन के दौरान विविध प्रकार के कार्य उत्तम तरीके से कर नहीं सकता है। इस मामले में एक ग्रंथकर्ता का सुभाषित मुझे याद आ रहा है, 'If you want success you must be narrow minded।' इस वाक्य में बहुत गहरा रहस्य छुपा हुआ है, क्योंकि अकेला-अटुला आदमी समस्त कार्यों को 'मैं वास्तव में अकेले हाथों करूंगा' ऐसा कहे भी तो वैसा करना उसके लिए असंभव ही है।

एक कार्य भी सुगठित तरीके से पूरा न करना और दूसरे अनेकों कार्यों में हाथ डालना अनुचित है। अपने समाज की दृष्टि से सोचे तो हमारे पास उपलब्ध साधन-सामग्री बहुत अल्प है। इसलिए इंसान को छोटे-छोटे कार्यों को हाथ में लेकर उनको पूरा करने की कोशिश करनी चाहिए। यही उत्तम मार्ग है और इसलिए ही दिन-दुखी, स्पृश्य समाज के जुल्म से त्रस्त हुए, अनपढ़ समाज के कार्य का बोझ मैंने अपने सिर पर लिया है और उस कार्य के लिए ही विद्यार्थियों की ओर जितना ध्यान देना चाहिए उतना ध्यान दे पाना संभव नहीं बन सका। उसका अर्थ यह नहीं होता कि मैं विद्यार्थियों का विरोधी हूँ। उलटा मैं राजनीति, समाज कार्यों में पिरोया हुआ हूँ, फिर भी मैं आजन्म विद्यार्थी ही हूँ। अत: विद्यार्थी ही विद्यार्थी का विरोध कैसे कर सकता है ? मुझे जरूरी अभ्यास के लिए बार-बार किताबें खरीदनी पड़ती हैं। आज के दिन में मुझ पर रुपये १०००/- की किताबें खरीदने का कर्ज है। इसके बावजूद भी मेरी अच्छी खासी प्रतिष्ठा है। जो अभी भी बरकरार है। मुंबई की किसी भी दुकान से मैं किताब उधार ले सकता हूँ, परंतु मेरे विद्यार्जन-ज्ञान प्राप्ति के कार्य में जरा भी विक्षेप होने नहीं देता, क्योंकि विद्या की उपासना मेरा बहुत गहरा व्यसन बन गया है। इसलिए भी मैं विद्यार्थियों का विरोधी कैसे हो सकता हूँ ?

विद्यार्थियों को विद्याप्राप्ति के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के बाद किस तरह व्यवहार करना चाहिए इस विषय में उपदेश देने के बारे में सोचकर मैं दुविधा में पड़ गया हूँ, क्योंकि मेरा गृहस्थाश्रम व्यर्थ ही गया है। यद्यपि विद्यार्थियों को विद्यार्थी अवस्था में कैसे व्यवहार करना चाहिए इस मामले में मैं मेरे स्वानुभव के आधार पर

कुछ तो कह सकूंगा। जिस समाज में हजारों वर्षों तक किसी भी तरह की शिक्षा न थी, उस समाज के विशाल स्वानुभव के आधार पर कुछ तो कह सकूंगा। वर्तमान समय में उस समाज के अधिकांश लोगों को विद्यापीठों की बी.ए., एम.ए. आदि डिग्रियां लेकर बाहर आते देखकर किसको संतोष नहीं होगा ? पहले के जमाने में तो अपने समाज में से बी.ए. की डिग्री प्राप्त करने वाले नाम मात्र के भी नहीं मिलते थे। कुछेक वर्ष पूर्व कृष्णा जिला में अपने समाज की एक व्यक्ति प्रथम बी.ए. पास हुई थी। इस वजह से वह व्यक्ति ने इतनी प्रसिद्धि प्राप्त की थी कि उसका सिर्फ नाम लिखकर उसके आगे बी.ए. लिखो तो पोस्टमेन वह पत्र उसको ही देता था। बी.ए. पास करने से इतना प्रसिद्ध हो गया था। आज तो हमारे समाज में कई लोग बी.ए. पास हैं। इतना ही नहीं, अपितु यदि मजाक में कहना हो तो ऐसा कहा जा सकता है कि यहाँ उपस्थित लोगों के बीच यदि कंकड़ फेंककर मारा जाए तो वह बी.ए. पास को ही लगेगा। बी.ए. पास हुए कुछ लोग आज यहाँ बैठे हैं उनको एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि हमें जिस लोगों के सामने टक्कर लेनी है वे हमसे बहुत आगे हैं और होशियार भी हैं।

आज के जीवन संघर्ष की लड़ाई में आगे बढ़े हुए लोगों से यदि हम पीछे रह गए तो हम सुरक्षित नहीं रहेंगे, क्योंकि आज सर्व सत्ताधारी स्थानों पर आगे बढ़ने वाले लोग ही बैठे हैं। नौकरी प्राप्त करने के लिए किसी भी ऑफिस में चले जाईए, वहाँ वरिष्ठ अधिकारीगण अपने ही रिश्तेदारों की भर्ती करते हैं, यह एक नग्न सत्य है। सिर्फ बी.ए. पास कर लेने से आपको नौकरी मिलेगी नहीं, हमेशा आगे रहने वाले सवर्ण के साथ स्पर्धा करके उस जगह पर बिना अपनी बुद्धि का प्रभाव डाले सिर्फ शिक्षण के मूल्यों से कुछ भी प्राप्त नहीं होगा या आगे रहने वाले सवर्ण हम से दबकर नहीं रहेंगे। उल्टा सदियों से हमको तथा हमारे पूर्वजों को उन्होंने दबा कर रखा इसलिए वे आपको बिना दबाए नहीं रह सकते। अत: आप जो शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं वो ऐसी प्राप्त कीजिए जिससे हमारे सभी छात्र उत्तम कक्षा के बने। अनपढ़ माँ-बाप के पेट से जन्म लेकर यदि बी.ए. कर लेते हो तो दुराभिमान मत रखिएगा। अपने फर्ज को मद्देनजर रखते हुए मन लगाकर पढ़िए। मैं सर्वप्रथम

बेरिस्टर बनकर आया तब 'महारडा बेरिस्टर' (महार जाति का ऐसा अपमानजनक शब्द प्रयोग) ऐसा संबोधन कर मुझे हीन बताकर सवर्ण लोग मुझे बेरिस्टर कहते थे। परंतु मैंने अपनी योग्यता साबित करके सबका मुँह बंद कर दिया था।

बड़ा साहस किए बिना हमको महत्व मिलता नहीं हैं। जबकि अन्य समाज के लिए ऐसा नहीं है, जब हम सोने के मूल्य जितना कार्य करेंगे, तब जाकर अन्य वर्ग के लोग उस कार्य को जस्ता (हलकी या तुच्छ चीज) जितना मूल्यवान मानेंगे और यदि वे जितना भी कार्य करेंगे तो भी उसको सोने जितना मूल्यवान मानेंगे ऐसा ही कुछ आज का व्यवहार बन गया है। हम देखते हैं कि यदि एक भी महार, मांग या चमार बहन सोने के गहने पहनेगी भी तो वे नकली हैं ऐसी समझ ऊँच वर्ण के लोग कर लेते हैं। वैसे ही ये सवर्ण लोगों की स्त्री पीतल के गहने पहनेगी तो भी वह सोने के ही होंगे, ऐसा समझा जाएगा। इस प्रकार ही इतर मामले में भी अपनी प्रतिष्ठा निम्न कक्षा की समझी जाती है। जब हम कोई भी कार्य उनसे शतश: अच्छा करेंगे तब जाकर उनके समकक्ष अपनी प्रतिष्ठा होगी। यह सब करने के लिए हमें अपने अंदर पूर्ण आत्मविश्वास निर्माण करने की जरूरत है।

आत्मविश्वास जैसे दूसरी कोई दैवी शक्ति नहीं हैं, हमें अपना आत्मविश्वास खोना नहीं चाहिए। मसलन, जब कुश्ती लड़ने के लिए अखाड़े में उतरने वाला पहलवान यदि सामने वाले पहलवान की जंघा पर मारी गई थाप स्वरूप चुनौती से घबरा जाता है, तब उसके हाथ-पैर ठंडे पड़ जाते हैं और वह कुछ नहीं कर सकता हैं। मैं तो हमेशा यही कहता रहता हूँ कि मैं जो करूंगा वह होकर ही रहेगा, अर्थात् यह सब मैं आत्मविश्वास के आधार पर कहता हूँ। ऐसा कहने पर कुछ लोग मुझे अंहकारी, मिथ्याभिमानी आदि कहकर मेरी निंदा करते होंगे। किंतु वास्तव में यह मेरा अहम् या मिथ्याभिमान नहीं, लेकिन आत्मविश्वास है। जिसकी वजह से मैं छाती ठोककर कह सकता हूँ, यदि मैं मन में ठान लूँ तो सवा लाख का काम आसनी से कर दूँ। मैं भी आपके जैसे एक महारबाई के पेट से जन्मा हूँ। गरीबी की दृष्टि से सोचें तो आज के गरीब से भी गरीब विद्यार्थी की तुलना में

उस वक्त मुझे कोई अच्छी सुविधा या अनुकूलता नहीं थी। मुंबई के डवलपमेन्ट डिपार्टमेन्ट की चोल में दस बाय दस की खोली में माँ-बाप, भाईयों के साथ रहकर एक पैसे के मिट्टी का तेल प्रयोग कर, अभ्यास किया है। इतना ही नहीं लेकिन उस समय दूसरी भी अनेकों अड़चनें और मुसीबतों का सामना करके यदि इतना करना मेरे लिए संभव हो सका तो आज के साधन-सामग्री से सज्ज समय में वह आपके लिए असंभव कैसे हो सकता है ?

कोई भी इंसान निरंतर दीर्घ परिश्रम द्वारा ही पराक्रमी और बुद्धिमान बन सकता है। कोई भी इंसान कुदरती रूप से आजन्म बुद्धिमान या पराक्रमी नहीं होता। मैं जब विद्यार्थी अवस्था में इंग्लैंड में था तब जो पाठ्यक्रम ८ साल में पूर्ण होता, वहीं अभ्यास मैंने २ साल और ३ महीने में सफलतापूर्वक पूर्ण किया था। उसके लिए मुझे २४ घंटों में से २१ घंटे अभ्यास करना पड़ा था। आज चालीस साल की उम्र में भी मैं २४ घंटों में से १८ घंटे कुर्सी पर बैठकर काम कर सकता हूँ। आज-कल के जवान यदि आधा घंटा भी निरंतर पढ़ने बैठे तो उसको सुँघनी नाक में भरनी पड़ती है, वरना सिगरेट फूंककर हाथ-पैर लंबे करने के लिए या फिर थोड़ी देर नींद लिए बिना उत्साह नहीं आता। मुझे तो आज भी इस उम्र में इसमें से किसी भी वस्तु की जरूरत महसूस नहीं होती।

अत्यधिक परिश्रम और मेहनत करने से ही यश प्राप्त होता है। नई पदवी प्राप्त करने से कुछ हासिल नहीं होता है, क्योंकि पदवी अर्थात् ज्ञान नहीं, सिर्फ शिक्षक की सहायता के बिना ज्ञानार्जन के लिए संजोई हुई साधन-सामग्री है। विश्वविद्यालय की पदवी और बुद्धिमत्ता के बीच कोई संबंध नहीं। इस मामले में एक दिलचस्प बात आपकी जानकारी के लिए कहता हूँ, मरहूम ७वें एडवर्ड के बाद पंचम ज्योर्ज जब १९११ के वर्ष में गद्दी पर आए तब वे हिन्दुस्तान आए, यहाँ से जाने के बाद उन्होंने हिन्दुस्तान के विश्वविद्यालयों को कुछेक लाख रुपये ग्रांट दी। अर्थात् उस ग्रांट की रकम का उपयोग कर गणितशास्त्र के विद्वान ऐसे प्रोफेसर को बुलाकर उसका लाभ हमारे देश को देने का निश्चय लिया गया और तदानुसार उन प्रोफेसर को बुलाया गया। यहाँ आने के पश्चात् तय किया गया कि, जिन्होंने एम.ए. पास

किया होगा वहीं उनकी कक्षा में बैठ सकेंगे।

उस समय मद्रास में रेलवे की ऑफिस में रामानुज नामका क्लर्क महीने के २० रूपये वेतन से नौकरी करता था। वह अपना काम पूर्ण करके गणित के विद्वान के प्रवचनों को सुनने की तीव्र इच्छा रखता था। अत: उसने अपने आपको इस प्रवचन में उपस्थित रहने की मंजूरी देने की विनती की परंतु रामानुज तो सिर्फ मेट्रिक ही पास था; 'इसलिए यदि वो इस क्लास में आएगा तो कुछ समझ नहीं पायेगा।' ऐसा गणित के विद्वानों को लगा। फिर भी रामानुज की इच्छा है तो वह क्लास में उपस्थित रह सकेगा ऐसी मंजूरी दी गई।

रामानुज ने उस प्रोफेसर के ५-६ प्रवचन सुने, किंतु प्रत्येक प्रवचन के वक्त वह गणित के विद्वान के प्रवचन सुनने के बदले अपनी नोटबुक में कुछ और ही लिखता रहता था। अत: प्रोफेसर ने गुस्से होकर उसको बहुत डांटा, 'तुम्हें दिए गए मौके का तुम अनुचित लाभ उठा रहा है।' ऐसा भी कहा। उसका विनम्रता से जवाब देते हुए रामानुज ने कहा, 'महाशय आज आप जो गणित के प्रमेय पढ़ा रहे हो उसे तो मैंने मेरी विद्यार्थी अवस्था में ही हल कर दिए है। इसलिए इसमें मुझे कुछ भी नया नहीं दिखाई देता... इतना ही नहीं लेकिन इसके आगे के प्रमेय भी मैंने मेरी कॉपी में हल कर दिए हैं, वह कॉपी भी मेरे पास है।' गणित के प्रोफेसर ने उसकी कोपी देखी, रामानुज ने गणितशास्त्र की बड़े-बड़े अजीबोगरीब तानेबानों का हल कर दिया था। उस से खुश होकर प्रोफेसर ने गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया को लिख भेजा कि 'जो व्यक्ति गणितशास्त्र में इतना विद्वान है और उसको महीने में २० रूपये के वेतन से क्लार्क के रूप में नौकरी पर रखा हुआ है यह बहुत दुखद बात है।' प्रोफेसर यहीं नहीं रुके, रामानुज गणितशास्त्र में विद्वान होने के कारण उसके ज्ञान का लाभ लेने के लिए उसको अच्छे वेतन से लोगों को पढ़ाने के लिए विदेश ले गए और खुद भी रामानुज के शिष्य बन गए। परंतु रामानुज ब्राह्मण होने के नाते उसका ब्राह्मणत्व उसके लिए मुसीबत समान साबित हुआ। विदेश जाते वक्त वे खाना बनाने में जरूरी सभी सामग्रियाँ ले गए थे। ईंट का चूल्हा बनाकर वे खुद ही खाना बनाकर खाते थे। यूरोपियन तो यवन होते हैं अत: उनको स्पर्श होने से

सुबह-शाम ठंडे पानी से स्नान करना पड़ता था। इंग्लैंड में हड्डियाँ जमाने वाली ठंड यूरोपियन तो ज्यादा से ज्यादा शुक्रवार को ही स्नान करते थे तब अपना यह बन्दा रोज-रोज सुबह-शाम ठंडे पानी से स्नान कर लेता। ठंडे पानी से स्नान करने के कारण उसको न्युमोनिया हुआ और इसमें ही उसकी मृत्यु हो गई।

उसकी तरह ही लिबरल पक्ष के श्री चिंतामणि बहुत ही बुद्धिशाली, होशियार के रूप में प्रख्यात है। इसके अलावा वे पूरे हिन्दुस्तान में प्रथम दर्जे के संपादक और लेखक के रूप में भी ख्यातनाम थे। हमारे विद्यार्थियों में ऐसी समझ आ गई हो ऐसा लगता है, बी.ए. की डिग्री प्राप्त कर ली मतलब अब आगे कुछ पढ़ना नहीं है। परंतु वास्तव में तो बी.ए. होने के पश्चात् ज्यादा से ज्यादा तो बिना शिक्षक के भी स्वतंत्र तौर पर अभ्यास हो सकता है। अर्थात् जो पढ़ना है वह अब बी.ए. के बाद में ही पढ़ना है। यदि इंसान जिंदगीभर पढ़े तो भी विद्यासागर के तट पर रहने के बावजूद भी मुश्किल से घुंटने जितने ज्ञान तक ही पहुँचा जा सकता है।

चरित्र का महत्त्व

विद्या के साथ ही हमारे में शील-चारित्र्य भी होना चाहिए। नैतिकता बिना विद्या तो व्यर्थ हो जाती है, क्योंकि विद्या एक शस्त्र है। यदि किसी के पास विद्या का शस्त्र है और वह चरित्रवान भी है तो वह इनमें से किसी एक का तो रक्षण करेगा ही। परंतु यदि उसी व्यक्ति के पास चारित्र्यशीलता नहीं है तो वह विद्या के शस्त्र से दूसरे को चोट पहुँचाएगा। विद्या तलवार की धार जैसी है परंतु उसका महत्त्व उसको धारण करने वाले पर आश्रित है, क्योंकि अनपढ़ आदमी किसी को छल नहीं सकता। किसी को कैसे चकमा दिया जा सकता हैं उसकी उसे खबर होती ही नहीं है, लेकिन पढे-लिखे लोगों के पास किसको कैसे छलना है और छलने के लिए युक्ति-प्रयुक्तियाँ भी उसके पास होने से वह सच का झूठ और झूठ का सच साबित कर छलता है। प्रत्येक गाँव के ब्राह्मण, बनिए और दूसरे पढ़े-लिखे गाँव के गुण्डे झूठ-लबारी से किस प्रकार ठगते हैं, वह आपने देखा ही होगा। लोगों को ठगने के लिए सदाचार और बुद्धि की जरूरत होती है, परंतु यदि चतुराई और

बुद्धि के साथ सदाचार अर्थात् शील चारित्र्यशीलता है तो वह आदमी लबारी या चकमा दे नहीं सकता और इसलिए ही साक्षर लोगों में नैतिकता होनी जरूरी है। बिना नैतिकता यदि पढ़े-लिखे पैदा होने लगेंगे तो उनकी शिक्षा में समाज और राष्ट्र का नाश समाया हुआ है। इसलिए ही नैतिकता का मूल्य शिक्षा से अधिक है यह बात आपके ध्यान में तो आई ही होगी। अत: प्रत्येक इंसान में प्रथम नैतिकता होनी आवश्यक है।

विद्यार्थी और राजनीति

मेरा प्रवचन पूर्ण करने से पूर्व मैं यहाँ राजनीति के बारे में दो शब्द कहना मेरा फर्ज समझता हूँ। साधारणतया हम लोग गरीबी के कारण विद्या का प्रयोग केवल पेट भरने तक ही करते है। शिक्षा का दूसरा कोई लाभ वे लेते नहीं हैं। साक्षर लोगों की मुश्किलों को आप नजरअंदाज नहीं कर सकते हो, आज अधिकारी-पद पर स्पृश्य समाज है। इसलिए कथित स्पृश्य समाज की स्थिति काफी संतोषपूर्ण है। उनका मार्ग सभी तरीके से सरल है जबकि उनके सामने उससे विपरीत आपका मार्ग कांटेदार है। क्या करने से वह मार्ग आसान बन सकता है इस बारे में आप सभी को अभी से सोचना चाहिए।

हमारे समाज का सभी तरफ से दम घुट रहा है इस बारे में यहां बात करना असंभव है। हम अल्पसंख्य है। संस्था के बल पर कथित स्पृश्य समाज जैसा चाहे वैसा जुल्म अभी कर रहा है। यदि आज हम कोर्ट, कचहरी में प्रवेश करें तो क्या देखते हैं ? मजिस्ट्रेट कौन तो ब्राह्मण, कारकुन तो ब्राह्मण, सर्कल इन्स्पेक्टर तो ब्राह्मण, पटवारी तो ब्राह्मण, 10B सिविल कोर्ट का जर्ज तो ब्राह्मण, फौजदार तो ब्राह्मण। ऐसी परिस्थिति में यदि हम मुकदमा करके न्याय मांगने जाएंगे तो क्या वहाँ न्याय मिलता है ? जरा भी नहीं। कुछेक मुकदमे के फैसले में मजिस्ट्रेट लोग 'महारों' के पक्ष में महार ही गवाह होता है इस वजह से उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता, ऐसा कहा है। परंतु स्पृश्य जातियों के पक्ष में स्पृश्य जाति साक्षी में होगी तो मजिस्ट्रेट को वह चलेगा। ज्यादा तो क्या कहना ? दूर क्यों जाना ? आज के कांग्रेसी प्रधानमंत्री भी

यदि कोई कांग्रेस वाला होगा तो ही उसकी सहायता करने के लिए तैयार होता है। अत: ऐसे हालात में मौके की जगह अपने कब्जे में लाए बिना हम पर हो रहे जुल्म रुकेंगे नहीं परंतु ऐसी जगह कैसे प्राप्त होगी, यह सोचनीय प्रश्न है।

आज तो चोर एवं लबार जैसों के समूह कथित स्पृश्य कांग्रेस के लोगों का है। जो उनके झुंड में शामिल होंगे उनकी ओर वे लोग थोड़ी हमदर्दी से देखेंगे। जो लोग उनमें शामिल नहीं हैं उनकी तरफ दुश्मन जैसी नजर से वे देखते हैं इसकी अनुभूति हमें हुई ही हैं। इसीलिए मैं आपको दो बातें कहना चाहता हूँ।

पहली यह है कि, हम सभी को संगठित होना चाहिए। यदि हम सब कथित अस्पृश्य इकट्ठे होंगे तो इस भेदभाव के नगर के किले में कही तो दरार पड़े बिना नहीं रहेंगी। लोग अनपढ़ है। वे पढ़-लिख नहीं सकते है। गाँव के सरफिरे लोगों के कहने से या फिर उनकी इच्छानुसार वे जो कहते हैं वो करने को तैयार हो जाते हैं। डर के कारण भी लोगों के फिर से अलग होने जाने की संभावना पूरी होती है, क्या ऐसे एकता खड़ी करने के लिए विद्यार्थी वर्ग तैयार हैं ? विद्यार्थी वर्ग ऐसी एकता कैसे संभाल सकेंगे ? यह एक बड़ी आशंका है। विद्यार्थियों को अपनी छात्रावस्था दौरान विद्याप्राप्ति करने के लिए सब कुछ करना चाहिए। यह तो बहुत संतोष की बात है। परंतु इसके साथ ही ऐसे संगठन की अंशत: जिम्मेदारी उनको अपने कंधे पर उठा लेनी चाहिए, यह बहुत ही जरूरी है। अपनी सभी इच्छाओं को तृप्त करने का सामर्थ्य हम में से किसी में नहीं है और इसलिए ही उसकी व्यक्तिगत मंशा या आकांक्षा पूर्ण न होने के कारण वह तनाव में रहकर अपने ही सर्वनाश को न्यौता दे रहे हैं। अत: इस सभी बातों को मद्देनजर रखते हुए स्वार्थ को त्यागकर संगठन मजबूत बनाने के लिए हम सभी को मन से कार्य करना चाहिए। व्यक्तिगत स्वार्थ से ज्यादा समाज के लाभ में अधिक ध्यान देना चाहिए।

दूसरी बात यह है कि, अपना उद्धार करने के लिए हरिजन सेवक संघ जैसी हजारों संस्थाओं की स्थापना की गई है। परंतु उसका अंतिम ध्येय क्या है यह समझ नहीं आ रहा है। उसका काम अपना फर्ज अदा करने के इरादे से किया गया है कि मुर्गी को दाने डालकर काटने के लिए पकड़ने की स्वार्थवृत्ति का है

? इस संस्था के लाभ का परिणाम क्या आएगा यही तो सोचनीय प्रश्न है, इस ब्राह्मणवादी संस्थाओं से हमारे विद्यार्थियों ने लाभ लेने के बाद 'जिसका नमक खाया है उसके साथ नमक हरामी नहीं कर सकते हैं।' ऐसी सालों की नसीहत के चलते हम अपने स्वत्व को भूल जायेंगे इस बात का डर लग रहा है। इस मामले में भीष्म और द्रोणाचार्य का उदाहरण हमारी समक्ष है ही। पांडवों का पक्ष न्याय संगत होने के बावजूद आप उनके सामने युद्ध क्यों किया ? ऐसा प्रश्न भीष्म को पूछा गया तब उन्होंने उत्तर दिया कि :

'जिसका अन्न मैं खाता हूँ उनकी पक्ष में मुझे लड़ना चाहिए।' इस उत्तर में इंसान के सर्व सामान्य प्रकृति के चित्र का आलेखन हुआ है और इसलिए ही स्पृश्य वर्गों द्वारा स्थापित इस संस्थाओं का लाभ लेने से पहले हमें उसका यह लाभ लेना या नहीं लेना यह सोचनीय प्रश्न है।

अर्थात् मैं इस मामले में एक बात कहना चाहता हूँ कि, पुराणकाल में देवों और दानवों के मध्य युद्ध चलता था। युद्ध में राक्षसों के गुरु शुक्राचार्य को संजीवनी विद्या की जानकारी होने से लड़ाई में मरे हुए राक्षसों को वे इस विद्या के बल से पुन: सजीवन कर देते थे। जबकि देवों के पक्ष में मरे हुए को सजीवन करना असंभव था। अत: इस वजह से देवों का सैन्य बल दिन-ब-दिन कम होता गया। तब सर्व देवों ने एकत्रित होकर इस विषय में बहुत चर्चा की आखिर में यह तय किया गया कि देवों के पुत्र कच को राक्षसों के पास संजीवनी विद्या सीखने हेतु भेजा जाए। इस प्रकार कच राक्षसों के गुरु के पास संजीवनी विद्या सीखने गया, परंतु राक्षसों को देवों के इस षड्यंत्र के बारे में ज्ञात होते ही उन्होंने कच को मार डाला और उसको जलाकर उसकी भस्म शुक्राचार्य को मदिरा में मिलाकर पिला दी। ऐसा करने के पीछे का कारण यह था कि, कच ने शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी के साथ प्रेमसंबंध बाँधकर उसको अपने मोहपाश में जकड़ लिया था। अत: कच को संजीवनी विद्या सिखाने के लिए पिता के समक्ष देवयानी हठ लेकर बैठी थी। यदि पुत्री के कहने पर शुक्राचार्य कच को संजीवनी विद्या सिखाएंगे तो हम बहुत बड़े संकट में फंस जाएँगे। इस डर के कारण और यदि शुक्राचार्य के पेट में मदिरा के

साथ कच का भस्म जाएगा तो उसे जिंदा करने के लिए शुक्राचार्य को स्वयं मरना पड़ेगा, ऐसी स्थिति में देवयानी की कच को जीवित करने की व्यर्थ हठ भी चली जाएगी, ऐसा सोचकर राक्षसों ने यह सारा षड्यंत्र रचा था। परंतु इस पूरे षड्यंत्र का पता देवयानी को चल जाता है और उसने सर्व प्रथम शुक्राचार्य के पेट में पड़े कच को संजीविनी विद्या सिखाने की हठ पकड़ी। इसलिए शुक्राचार्य ने अपने पेट में रहे कच को संजीवनी विद्या सीखा दी तत्पश्चात् मंत्रोच्चार करते ही शुक्राचार्य का पेट फाड़कर कच बाहर आया और उसने सीखी हुई विद्या द्वारा शुक्राचार्य को पुन: जीवित किया, ऐसी किवदंती है। देवयानी को 'तेरे साथ विवाह करूँगा।' कच के ऐसा विश्वास दिलाने के बावजूद भी अपना कार्य पूर्ण होते ही वह दिया हुआ वचन भूल गया। कच देवयानी के साथ विवाह किए बिना ही अपने समूह के पास भाग गया। कच के इस कृत्य को कुछ लोग कृतघ्न कहते हैं, परंतु मैं उसके कृत्य को कृतघ्न नहीं मानता। यदि अपने विद्यार्थी उसका अनुसरण करेंगे तो मुझे बुरा नहीं लगेगा। इस मामले में एक अंग्रेजी कहावत मुझे याद आ रही है :

No woman can be greatful, at the cost of her chastity!

OR

No nation can be greatful at the cost of liberty!

मैं आज तक गाँधी के कथित सत्य-अहिंसा का मतलब ही नहीं समझ पाया हूँ सत्य किसे और कब कहना चाहिए इस बात का उत्तर गांधीजी ने आज तक नहीं दिया है। सिर्फ कल्पना कीजिए कि मेरे पड़ौस में एक धनिक गृहस्थ रहता है। मेरे मित्र होने के नाते वे अपनी संपत्ति कहाँ रखते हैं वह मैं जानता हूँ यदि कोई चोर आकर मुझे पूछे कि, 'तुम्हारे पड़ौसी अपनी संपत्ति कहाँ रखते हैं ?' तो मैं ऐसे वक्त सत्य कहकर मेरे पड़ौसी को नुकसान पहुँचाऊं या झूठ बोलकर मेरे मित्र को बचाऊं ? ऐसे तो एक नहीं सौ-सौ उदाहरण दिए जा सकते हैं।

अंत में मैं आपसे इतना ही कहना चाहता हूँ कि, यदि हम एकजुट एकत्रित होकर व्यवहार करेंगे तो कुछ कर सकेंगे। अपने समाज पर हजारों वर्षों से हो रहे जोर-जुल्म और अन्याय के निवारण का कार्य आज की पीढ़ी को स्वखुशी से

अपने सिर पर उठा लेने की जरूरत है। अपने समाज में एकता की बहुत ही जरूर है और एकता के कारण ही हम यह कार्य कर सकेंगे इस बात का मुझे भरोसा है। इस मामले में हम अत्यंत सख्ती से अनुशासन का पालन करेंगे तो कुछ हो सकेगा। नहीं तो सभी जगह अव्यवस्था फैलेगी और उससे समाज का नाश और विघटन भी हो जाएगा। अब से सभी को सावधान होकर व्यवहार करना पड़ेगा। आखिर में हम संगठन, शील तथा अनुशासन बढाएं और समाज की उन्नति में उसका प्रयोग करें इतना कहकर मैं विदाई लेता हूँ।

(अध्ययनकर्ताओं के लाभ के लिए डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के प्रवचनों में से)

"जिस समाज में मैंने जन्म लिया है और उस समाज के पर अमानवीय, अन्यायी, धृणाजनक, गुलामीयुक्त अत्याचारों को दूर करके चैन से बैठूंगा और यदि मैं उस अत्याचारों को दूर करने में निष्फल हुआ तो बन्दूक की गोली से मेरा अंत कर दूंगा।"

– डॉ. भीमराव अंबेडकर

डॉ. अंबेडकर और अस्पृश्यता के जख्म

यदि हमें डॉ. बाबासाहब अंबेडकर को समझना है तो उससे पहले हमें तत्कालीन भारत की सामाजिक दुर्दशा को समझना पड़ेगा; तभी हम अंबेडकर जी की मन:स्थिति और उनके मन के उद्वेग एवं आक्रोश को समझ पाएंगे।

भारत का भव्य इतिहास साक्षी है कि सामाजिक वर्गों की व्यवस्था हमारे समाज में विद्यमान थी और उसको आधार बनाकर समाज के चार हिस्से किए गए थे। समाज में श्रम का विभाजन किया गाया, जो कालक्रम में स्थायी व्यवस्था बन गई, जो आज पर्यंत विद्यमान है; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। सदियाँ गुजर जाने के बाद भी यह व्यवस्था दूर होने के बदले समाज में और ज्यादा घर कर गई और यदि इसमें सबसे ज्यादा खराब हालत अगर किसी समाज की हुई है तो वह समाज है शुद्र समाज। जिसने पूरे समाज को साफ रखने की जिम्मेदारी का स्वीकार किया है। अन्य वर्णों द्वारा इतना समय गुजर जाने के बावजूद भी उसको अस्पृश्य मान उसके साथ अपमानित और क्रूर व्यवहार किया गया।

कालांतर में भारत की भी दुर्दशा हुई और विदेशी हमलाखोरों ने भारतवर्ष पर सदियों तक हमले किए। समग्र भारतीय समाज को पीड़ित किया फिर भी कथित अस्पृश्य समाज के साथ अन्य वर्णों के व्यवहार सुधरने के बजाय बिगड़ते, क्रूर और बद से भी बद्तर बनते गए। एक तरफ से देखें तो हिन्दुस्तान के अंदर एक दूसरा ही हिन्दुस्तान धड़कता था। तीस करोड़ हिन्दुओं में से ६ करोड़ की जनसंख्या कथित अस्पृश्य समाज की थी। मतलब हर पाँचवा हिन्दु अस्पृश्य कहलाता था। करीबन २० प्रतिशत जितने हिन्दुस्तान अस्पृश्य अवस्था में जी रहे थे। प्रत्येक देश में उसका नाम और पहचान अलग-अलग थी, परंतु अन्य समाज का उसके साथ का व्यवहार और उसकी तकलीफें समग्र भारतवर्ष के प्रत्येक कोने में तकरीबन एक जैसी ही थी। सवर्ण समाज को उसकी परछाई से भी तकलीफ थी। अगर हिन्दु समाज का कोई व्यक्ति रास्ते पर चला आ रहा है तो उसे अपना रास्ता बदल देना पड़ता था इतना ही नहीं उसे ऐसे समय में आवाज करने का भी अधिकार नहीं था। पालतू जानवर भी वह

नहीं रख सकता या गहने पहनने पर भी प्रतिबंध था। वे कुछ विशेष प्रकार के ही वस्त्र पहन सकते थे, निश्चित प्रकार के चप्पल उनके लिए आवश्यक थे। उनके निवासस्थान भी गाँव के बाहर थे। जहाँ जीवन जीने की पर्याप्त सुविधाएँ भी न हो, उस तरह की कोलॉनी में रहेते थे। उनके सार्वजिनक कुएं का उपयोग करने पर प्रतिबंध था पीने के लिए पानी तो गंदा ही। उसके बच्चे हिन्दु बच्चों के साथ पढ नहीं सकते। हिन्दुओं के साथ एक ही देवी-देवता की पूजा, हिन्दु के प्रत्येक त्यौहार मनाने के बावजूद भी मंदिरों में प्रवेशबंदी। वे सदियों से अस्पृश्यता के शिकार होने के कारण उनमें शिक्षा का सर्वथा अभाव दिखता और शायद सदियों तक उनकी दुर्दशा का यही सच्चा कारण था। इसलिए दलितोद्धारक के रूप में जाने जाते महात्मा फुले ने कहा था,

"विद्या बिना मति गई, मति बिना नीति गई,
नीति बिना गति गई, गति बिना वित्त गया,
वित्त बिना शुद्र हुआ, बिना विद्या इतने अनर्थ।"

महात्मा फुले कहते हैं विद्या न होने से मति गई अर्थात् कि शिक्षा न होने से बुद्धि गई। बुद्धि न होने से नीति गई अर्थात् कोई नीति-नियम रहे नहीं। समाज अंधकार की गर्त में डूबता गया। मदिरा, जुए आदि कुसंग के रास्ते पर आगे बढ़ता गया। वे आगे लिखते हैं कि नीति बिना गति गई, कोई नीति न होने से समाज की प्रगति रुक गई। समाज इस अंधकार की परिस्थिति के वश में आ गया। गति बिना वित्त गया अर्थात् प्रगति बिना आर्थिक दशा बिगड़ गई। परिणाम स्वरूप गरीबी और उसके साथी दूषणों ने परिवार तथा समाज पर कब्जा कर लिया। पैसे न होने से जो कनिष्ठ काम मिले वो करने पड़े। मतलब पैसे के बिना समाज शुद्र हो गया। बिना विद्या इतने अनर्थ-इंसान के जीवन में सिर्फ शिक्षा नाम का तत्त्व न होने से उसे कितने अनर्थों का सामना करना पड़ा। असाक्षरता के कारण अंग्रेज हुकूमत के समय में पुलिस एवं सेना जैसी सरकारी या अन्य किसी भी प्रकार की नौकरियों में उनका चयन न हो सकता था। इसलिए गुजारा चलाने के लिए कथित निकृष्ट प्रकार के व्यवसाय और परंपरागत व्यवसायों को ही स्वीकारना पड़ता था। काश्तकार के

रूप में एवं खेत-मजदूर के रूप में काम करके श्रम विभाजन के लिए समाजहित के लिए खड़ी की गई व्यवस्था ने समाज को अनेक भागों में विभाजित कर दिया।

हिन्दु समाज इस व्यवस्था के कारण ही कमजोर पड़ा। समय-समय पर इस व्यवस्था को बदलने के प्रयास हुए। जिन महानुभावों ने यह प्रयास किए उनमें भगवान् बुध्द, ग्यारहवीं सदी में रामानुज, चक्रधर, रामानंद, कबीर, चैतन्य महाप्रभु, संत एकनाथ, संत तुकाराम महाराज, संत रोहिदास, संत चोखामेला, महर्षि दयानंद स्वामी जैसे अनेक संतों, कर्नाटक के मंत्री बसवेश्वर, राजा राममोहन राय, वडोदरा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड जैसे राजर्षिओं, महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिबा फुले (जिन्होंने अस्पृश्यता की जड़ को समझकर अस्पृश्यों के लिए देश की प्रथम स्कूल की शुरुआत की), गोपाल बुवा वलंकर, बंगाल में शशिधर बंदोपाध्याय, दक्षिण भारत में कर्नल आल्कोट जैसे समाज सुधारकों द्वारा समय-समय पर अपने-अपने क्षेत्र में इस कलंक को मिटाने और समाज को समरस बनाने के सफल प्रयास किए गए तथा वर्ण-व्यवस्था के परिणाम से समाज में खड़ी दीवार को धराशायी बनाए तोड़ने के प्रयास किए।

एक ओर हिन्दु समाज द्वारा निरंतर तिरस्कार और दूसरी ओर धर्मांतरण द्वारा राष्ट्रांतरण के उद्देश्य के साथ आए इसाईओं द्वारा अस्पृश्य समाज के प्रति प्रेमभाव रखकर धीरे-धीरे धर्मपरिवर्तन के हो रहे प्रयास, इन दोनों के युद्ध में इसाई मिशनरियों के पक्ष स्वीकारा गया और राष्ट्रघातक मिशनरी प्रवृति को गति मिली, जो आखिर में बड़े पैमाने के धर्मांतरण में बदल गया।

डॉ. बाबासाहब का बचपन

जब अंबेडकर दो वर्ष के थे तब पिता रामजी सकपाल लश्कर से निवृत्त हुए थे और दापोली स्थाई हुए, जहाँ पाँच वर्ष की आयु होते बालक भीम का बड़े भाई के साथ स्कूल में दाखिल कराया गया। सूबेदार रामजी सकपाल ने दापोली से भी स्थानांतर किया और मुबंई आकर बसे। उनके चौदह बच्चों में से सिर्फ तीन पुत्र और दो पुत्री ही बचे थे। बच्चों को सुसंस्कार देने में उन्होंने कोई कमी नहीं छोड़ी थी। रोज भजन करना, सुबह-शाम प्रार्थना करना, रामायण, महाभारत के प्रसंग कहना यह उनका नित्यक्रम था। जो उनकी मृत्युपर्यंत क्रम जारी रहा। उस समय अंग्रेजी शिक्षा का शिक्षण अनिवार्य था। रामजी की विशेषता यह थी कि वे बच्चों के पाठ को सरल बनाकर उन्हें पढ़ाते थे, जैसे कि भजन को कारण बच्चों में मराठी बोलने की पकड़ दृढ़ हुई, तो अंग्रेजी का आसानी से प्रभावशाली अनुवाद कैसे करना चाहिए, यह अच्छे से सिखाते और गोपालकृष्ण गोखले रचित अंकगणित सरल बनाने वाली नोंधपोथी उन्होंने खुद ही तैयार की थी। शायद इसलिए ही जब बालक भीमराव डॉ. भीमराव अंबेडकर बने तब उनकी अंग्रेजी भाषा पर पकड़ बहुत ही मजबूत थी।

बालक भीमराव में संघर्ष और विरोध करने की भावना बचपन में कदम-कदम पर उसके द्वारा सहे गए अस्पृश्य समाज के दुर्व्यवहार की वजह से दृढ़ बनी होगी। सतारा में शिक्षा पूर्ण करने के बाद बड़े भाई, उनका बेटा और भीम सतारा से मुंबई गोरेगांव पिता को मिलने निकले। पिता गोरेगांव में केशियर के रूप में कार्यरत थे। पडली नामक स्टेशन से मसूर तक ट्रेन से पहुँचे। पिता को लिखा हुआ पत्र सही समय पर न मिलने के कारण वे वक्त पर स्टेशन लेने नहीं आ सके। तीनों ने घंटों तक स्टेशन पर इंतजार किया। ऐसा लगा कि अब पिताजी नहीं आएंगे, अत: स्टेशन मास्टर को विनती करके जैसे-तैसे बैलगाड़ी की व्यवस्था की, परंतु स्टेशन से बेलगाड़ी थोड़ी आगे पहुँची और गाड़ीवाले को पता चला कि यह तीनों महार जाति

के हैं तो उसने बीच रस्ते में उनको उतार दिया। गाड़ीवाले को दुगुना किराया देने की बातकर जैसे-तैसे समझाकर मनाया। तो उसने शर्त रखी कि, "मैं आपके साथ गाड़ी में नहीं बैठूंगा।" बड़े भैया गाड़ी चलाते और गाड़ीवाला पीछे-पीछे चलता।

शाम से शुरू हुए इस सफर में मध्यरात्री तक कोई भी गाँव या कोई भी व्यक्ति इन लोगों को किसी भी प्रकार का सहयोग देने के लिए तैयार न थे। बच्चों को रास्ते में प्यास लगी तो कोई भी पानी पिलाने के लिए तैयार न थे। और जो पानी बताता, वह गंदा पानी पीने को कहता। बालक भीमराव के मन-मस्तिष्क पर घातकी व्यवहार का यह प्रथम जख्म था, जो ठीक हो उससे पहले तो ऐसे कई प्रसंगों की श्रृंखला ही बनती जाती थी। (आज भी गाँव में अस्पृश्य समाज की स्थिति एवं उसके प्रति अन्य समाज के व्यवहार में कोई ज्यादा फर्क पड़ा हो, ऐसा दिखाई नहीं देता है।)

एक बार प्यास के मारे बैचेन बालक ने सार्वजनिक प्याऊ से पानी पीने का प्रयास किया, तो उन्हें मारा गया। उनके बढ़े हुए बाल काटने के लिए कोई भी नाई तैयार नहीं था। उनकी बहन उनके बाल काट देती। भैंस के शरीर के बाल उतारने वाला भी इस बालक के बाल काटने के लिए तैयार नहीं था। स्कूल में उनको बैठने के लिए बाकी सबसे अलग जगह पसंद करनी पड़ती। उनके इस्तेमाल की हुए बैठक को भी स्कूल का चपरासी हाथ नहीं लगाता। यदि चालू स्कूल में पानी की प्यास लगे तो अन्य विद्यार्थियों को कक्षा में जो शिक्षक होता, उससे मंजूरी लेनी पड़ती थी लेकिन यदि भीमराव को प्यास लगे तो उन्हें कक्षा शिक्षक की मंजूरी लेनी पड़ती थी। वह शिक्षक स्कूल के चपरासी को बुलाता, चपरासी मटके का नल चालू करता और भीमराव को मटके को हाथ लगाए बिना जो पानी गिरता उसके नीचे मुँह रखकर अपनी प्यास बुझानी पड़ती।

मुंबई आने के बाद भी ऐसे अनुभव होते ही रहे। जो बाल मानस में अस्पृश्यता के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए ज्वालामुखी की चिंगारी का काम करती गई। एल्फिन्स्टन्ट हाईस्कूल में प्रवेश लेने के बाद भी अन्य विद्यार्थियों से अलग आखरी बेंच पर बैठना पड़ता था। एक बार शिक्षक ने ब्लेक बोर्ड पर प्रश्न लिखा और

पूछा कि, उत्तर किसे आता हैं ?" जवाब में भीमराव की ऊँगली उठी। शिक्षक ने उन्हें आगे आकर बोर्ड पर जवाब लिखने के लिए कहा। भीमराव आगे बढ़े और कक्षा में शोरगुल मच गया। शिक्षक ने कारण पूछा तो अन्य विद्यार्थियों ने कहा कि, 'उसे बोर्ड पर जवाब मत लिखने दीजिएगा, क्योंकि वह शुद्र है।" शिक्षक ने कहा कि "तो क्या हुआ, वह जवाब तो लिखेगा ही।" सामने अन्य विद्यार्थियों ने जो कहा उससे बालक भीमराव में दिल में शायद कभी न भरने वाला घाव हुआ होगा। अन्य विद्यार्थियों ने उत्तर दिया कि, "इस बोर्ड के पीछे हमारे नाश्ते के डिब्बे रखे हैं, यदि यह विद्यार्थी ब्लेक बोर्ड का स्पर्श करेगा तो हमारे डिब्बे अपवित्र हो जाएँगे। हमारे खाने लायक रहेंगे नहीं।" शिक्षक भी दृढ़ थे। उन्होंने कहा कि, "आप अपने डिब्बे यहाँ से उठा लीजिए, जवाब तो यह विद्यार्थी बोर्ड पर ही लिखेगा।" शंकरराव खरात द्वारा संपादित "बाबासाहबबांची आत्मकथा" नामकी मराठी किताब में बाबासाहब लिखते हैं कि, मैंने ब्लेक बोर्ड पर जवाब तो लिखा, लेकिन मेरे मन पर कभी न मिटने वाला घाव हो गया।"

उनका सरनेम अंबेडकर होने के पीछे भी एक दिलचस्प संबंध की खुशबू है। हाईस्कूल में एक शिक्षक थे जिनका सरनेम अंबेडकर था। इस शिक्षक का बालक भीमराव पर बहुत स्नेह था। दोपहर को रिसेस के समय भी अपने डिब्बे से भीमराव को अचूक रोटी, सब्जी, चावल आदि जो कुछ भी होता वे देते। भीमराव ने अपने गाँव आंबेवाडे पर से सकपाल के बदले आंबवडेकर सरनेम लिखवाया था। लेकिन इस शिक्षक ने उनका सरनेम हाईस्कूल के रजिस्टर में अंबेडकर करा दीया। इस शिक्षक का उनके मन पर गहरा प्रभाव था, डॉ. अंबेडकर पहली बार गोलमेजी परिषद में गए तब इस शिक्षक के द्वारा लिखा गया अभिनंदन का पत्र डॉ. अंबेडकर ने महामूल्यवान खजाने की तरह जीवनपर्यंत गर्व से संभालकर रखा था।

बालमानस पर कब और कौन सी घटना अपना अत्यधिक असर छोड़ जाती है वह कह नहीं सकते हैं। अपने पिता का दूसरा विवाह भीमराव को पसंद न था। उस पर भी अपनी माँ का स्थान कोई ओर ले और अपनी माँ के गहने आदि पहने, यह तो उनको जरा भी पसंद न था। इसलिए उन्होंने फैसला लिया कि घर

से भागकर मुंबई जाकर वहाँ नौकरी कर ली जाए। इसके लिए पैसे इकट्ठे करने के लिए रास्ता ढूंढा कि मीरा बुआ अपना बटवा कमर पर बाँधकर अपने पास सोती है। तीन रात तक यह बटवा चुराने की कोशिश की, किंतु सफल नहीं हुए। चौथे दिन सफलता मिली तो उसमें भी गरीबी ने जैसे बटुवे में अपना स्थान बनाकर बैठी हो वैसे उसमें से निकला सिर्फ आधा आना। इस आधे आने में मुंबई जाना संभव नहीं होने के कारण यह तय किया कि अभ्यास में मन लगाकर ऐसा स्थान हासिल किया जाए कि लोग याद करे और हुआ भी ऐसा ही। उन्होंने अभ्यास इतने मन से किया कि जिन शिक्षक को भीमराव के अभ्यास को लेकर कोई भी आशा न थी। वे पिता रामजी को कहने लगे कि इस बालक को बहुत पढ़ाना।

इस तरह बालक भीमराव अंबेडकर मेट्रिक की परीक्षा में ७५० में से २८२ अंक प्राप्त कर उत्तीर्ण हुए। ज्ञातिजनों ने बहुत उत्साह और गर्व से उत्सव मनाने का आयोजन किया, जिसके अध्यक्ष समाज सुधारक श्री एस.के. बोले थे। इस प्रसंग पर मराठी लेखक एवं समाज सुधारक श्री कृष्णजी अर्जुन केलुसकर भी उपस्थित थे। वे भीमराव से प्रभावित थे और विविध किताबें उनको पढ़ने के लिए देते थे। उन्होंने रामजी को पूछा कि, "यह बालक आगे युनिवर्सिटी से जुड़ेगा या नहीं ?" उन्होंने कहा कि, "मेरी स्थिति के कारण संभव लगता नहीं है, फिर भी मैं उसे उच्च अभ्यास के लिए भेजने के लिए कटिबद्ध हूँ।"

मुंबई की एल्फिन्स्टन्ट कॉलेज में प्रवेश लिया, परंतु स्वास्थ्य ठीक न रहने की वजह से एक साल खराब हुआ। इन्टर आर्ट्स की परीक्षा उत्तीर्ण की तभी आर्थिक संकट मुँह फाड़े सामने आया। उस वक्त मराठी लेखक और समाज सुधारक श्री कृष्णजी अर्जुन केलुसकर सहायता के लिए आगे आए। उन्होंने वड़ोदरा के महाराजा सयाजीराव से संपर्क किया और महाराजा ने एक सार्वजनिक कार्यक्रम में थोड़े समय पहले उनके द्वारा कही हुई बात याद दिलाई। उन्होंने एक सार्वजनिक कार्यक्रम में कहा था कि, "किसी भी अस्पृश्य विद्यार्थी को उच्चाभ्यास के लिए वे खुद सहायक बनेंगे।" महाराजा जो बोलते थे वो करने के लिए प्रसिद्ध थे। उन्होंने अपने वचन का पालन करनेके लिए भीमराव को मिलने बुलाया तथा कुछ

प्रश्न पूछे। संवाद इस बात की साक्षी देते है। सयाजीराव ने पूछा कि, कौन-से विषय का अभ्यास करना चाहते हो और क्यों ?" बाबासाहब ने उत्तर दिया कि, "समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा विशेष रूप से फाइनान्स का अभ्यास करना चाहता हूँ। इससे मुझे मेरे समाज की दारुण अवस्था सुधारने का मार्ग मिलेगा। उस मार्ग से समाज सुधार का कार्य करूँगा।" जिनसे संतुष्ट होकर भीमराव को प्रत्येक माह २५ रूपये की छात्रवृत्ति देने की बात की। कॉलेज में भी प्रोफेसर मूलर उनको किताबें और कपड़ें आदि देकर सहायक होते किंतु अस्पृश्यता ने कहीं भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। कॉलेज का ब्राह्मण बावर्ची उनको चाय या पानी भी नहीं देता।

सयाजीराव गायकवाड की सहायता से बी.ए. जैसी डिग्री तथा विदेश में अभ्यास करने के बाद भी उनको अस्पृश्यता के अनुभवों के भयानक घाव सहन करने ही पड़े। उस समय उनकी स्थिति स्थिर न थी, फिर भी उन्होंने समाज का भला करने का चिंतन शुरू कर दिया था। सयाजीराव द्वारा दी गई छात्रवृत्ति की शर्तों के अनुसार अभ्यास बाद उनको वड़ोदरा में नौकरी करनी थी। जो उन्होंने स्वीकार की और 'लेफ्टिनेन्ट' जैसे अति महत्वपूर्ण पद की उन्होंने शोभा बढ़ाई थी। इस सरकारी पद पर अभी तक सिर्फ और सिर्फ सवर्ण हिन्दुओं को ही नियुक्त किया जाता। आज वह परंपरा टूटी थी, यह पद डॉ. भीमराव अंबेडकर ने प्राप्त किया। उन्होंने इस पद को स्वीकार किया था।

सन १९१७ के सितम्बर महीने के दूसरे सप्ताह में अंबेडकर अपने सबसे बड़े भाई बालाराम के साथ वडोदरा गए। क्योंकि महाराजा के साथ नौकरी के करार थे। महाराजा सयाजीराव ने अंबेडकर को स्टेशन पर मिलकर उनकी सभी प्रकार की व्यवस्था करने के लिए दीवान को सूचना दी थी, लेकिन एक अस्पृश्य के स्वागत के लिए कौन जाए ? अत: रहने-खाने के साथ सभी प्रकार की व्यवस्था उनको स्वयं ही करनी पड़ी थी। रहने के लिए कोई मकान देने के लिए तैयार नहीं था। आखिर में उनको एक पारसी हॉस्टल में रहने की जगह मिली।

इस पद की एक गरिमा होने के बावजूद भी कुछ अधिकारी, नौकर व चापरासी उनके साथ घृणास्पद व्यवहार करते थे। जैसे कि उनका जन्म अस्पृश्य पिता के

घर हुआ है, इस बात का स्मरण उनको लगातार कराते थे। उनको फाइल हाथ में देने के बजाय दूर से ही फेंकी जाती थी। सबके लिए पानी भरा हुआ होता लेकिन उनके लिए पानी नहीं था। इतना ही नहीं जब वे जाने के लिए टेबल से उठते तब कालीन हटा दी जाती थी। वे जिस पारसी भोजनालय में रहते थे वहाँ एक दिन उग्र संताप से होश खोए पारसियों का समूह हाथ में लाठी इत्यादि लेकर आया। उसमें से एक ने पूछा- "आप कौन हो ?" अंबेडकर ने उत्तर दिया, "मैं हिन्दु हूँ।" तो दूसरे ने कहा, "तू कौन है हम अच्छे से जानते हैं, तू अस्पृश्य समाज का होकर हमारी हॉस्टल में रहा, तूने हमारी हॉस्टल भ्रष्ट कर दी।" अंबेडकर ने अपने धैर्य को एकत्र कर उनको कहा, "मैं आठ घंटे बाद यहाँ से चला जाऊंगा।" लेकिन आठ घंटे के बजाय आधी रात को उनका सामान बहार फेंक दिया गया, भूख-प्यास से अधिक इस अपमान ने उनको बहुत ज्यादा द्रवित कर दिया। यह महामानव भूखे-प्यासे हॉस्टल के सामने पेड़ के नीचे "इतने बड़े देश में मेरे लिए एक भी घर नहीं।" ऐसा सोचकर बैठे रोते रहे।

यह प्रसंग दर्शाता है कि अस्पृश्यता का माहौल हिन्दु के अलावा अन्य समाजों में भी कितना व्याप्त था। परंतु यहाँ भी अन्य तरफ से अस्पृश्यता का अपमानजनक व्यवहार उनका पीछा छोड़ने के लिए तैयार न था। उन्होंने महाराजा को इन परिस्थिति से अवगत कराया। प्लेग की महामारी के कारण महाराजा मैसूर जाने की जल्दी में थे। उन्होंने राज्य के दीवान को मिलने को कहा। दीवान को मिलने के बावजूद भी उसने कुछ नहीं किया। महाराजा के बड़े भाई कैलाशवासी होने के कारण वे थोड़े समय वडोदरा आकर रहे। दीवान ने अंबेडकर के लिए कोई व्यवस्था नहीं की। आखिर गुरुवर्य केलुसकर ने एक प्रध्यापक मित्र से विनती की और उसने अपने घर में अतिथि के रूप में रखने की तैयारी बताई, लेकिन पत्नी के आगे उनकी एक न चली। अंबेडकर ने वडोदरा की नौकरी हमेशा के लिए छोड़ दी। अपमान, वेदनाओं के साथ वे पुन: मुंबई आए।

पिताजी की मृत्यु के बाद परिस्थिति बहुत ही ज्यादा खराब हो गई। उनका आर्थिक आधार चला गया। पिताजी का कर्ज तो सिर पर था ही उस पर भी

सवर्ण समाज द्वारा मिला तिरस्कार जीने नहीं देता था। इस तिरस्कार के उत्तर में जीवन में कुछ करने की तमन्ना चिंगारी से ज्वालामुखी बन गई थी। उन्होंने फिर से सयाजीराव गायकवाड़ का संपर्क किया और विदेश पढ़ने जाने के लिए सहायता माँगी। उनके तथा भारत के सौभाग्य से उस समय वड़ोदरा के राजा ने चार विद्यार्थियों को अभ्यास के लिए विदेश भेजने का फैसला किया था। सयाजीराव महाराज ने आवेदन करने के लिए कहा और चार में से एक विद्यार्थी के रूप में अंबेडकरजी को विदेश अभ्यास के लिए भेजा गया।

मुंबई वापिस आने के बाद उच्चाभ्यास करने के बावजूद भी ये कटु अनुभव उनका पीछा नहीं छोड़ रहे थे। वे मुंबई की सिड्नहोम कॉलेज में बतौर प्राध्यापक जुड़े। तो वहाँ पर भी सवर्ण प्राध्यापक यह खयाल रखते थे कि पीने के पानी को अंबेडकर हाथ न लगा दे। तदुपरांत उन्होंने वकालत आरंभ की तो अन्य समाज के वकील कोई भी व्यक्ति अंबेडकर के पास केस लेकर न जाए इस बात का पूरा ध्यान रखते थे। इसी दुर्व्यवहार के कारण डॉ. भीमराव अंबेडकर मजबूत बनते जा रहे थे। चवदार तालाब के सत्याग्रह घटना के वक्त कोर्ट में चल रहे मुकदमे के सिलसिले में उनको महाड जाना था, किंतु रास्ते में किसी गाँव की नदी में आई बाढ़ के कारण उनको वहीं रुकना पड़ा। आसपास कहीं अस्पृश्यों के मकान न थे, इसलिए उनको बरसती बारिश में बाढ़ का पानी न उतरे तब तक भीगते-भीगते हुए उसी गाँव में रुकना पड़ा। सिर्फ अस्पृश्य होने की वजह से आसपास के हिन्दुओं ने उनको न तो पानी के लिए पूछा और न ही खाने के लिए। इस घटना का उनके मन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वापिस लौटकर अपने कमरे में अपने आपको बंद कर रोते रहे। अंत में उनको समझाने के लिए उनके सहयोगी रावबहादुर सी.के. बोले को बुलाना पड़ा। बोलेजी के समझाने से वे अपने आपको बंधनमुक्त कर कमरे से बहार आए। इस तरह, उन्होंने जिंदगीभर अनेक प्रकार की यातनाओं का सामना किया है।

उनकी शिक्षा के प्रति भूख और शिक्षा प्राप्त करने की लगन में मिलने वाली तकलीफों का प्रभाव जिंदगीभर उनके विचारों तथा लेखों में प्रकट होता ही रहा।

उनके भीतर संविधान के रचयिता की मूर्ति तब से ही बनने लगी थी जबसे उन्होंने ब्रिटिशरों की सुधारावर्ती के असर तथा भारतीय जनमानस पर, उनके अधिकारों पर ब्रिटिशरों के झपट्टा मारने की वृत्ति के लिए समयांतर सख्त शब्दों में लेख लिखकर कड़ी निंदा करना शुरु किया था।

सन १९२३ में उन्होंने बेरिस्टर के रूप में प्रेक्टिस शुरू की। आशा थी कि इस काम से अस्पृश्योद्धार के कार्य में सहायता मिलेगी। लेकिन अस्पृश्यता के कारण सॉलिसिटरों ने उनके साथ किसी भी प्रकार की व्यवसायी कार्यवाही करने की महेरबानी भी नहीं दर्शायी। जब तक उन्होंने जिले की उच्च अदालत में प्रथम पंक्ति की बेंच पर स्थान प्राप्त न किया तब तक उनको जो काम मिला उसमें ही संतोष करना पड़ा। इस कालावधि के दौरान एक ऐतिहासिक घटना घटी। काकीनाडा कांग्रेस अधिवेशन में गांधीजी के परम मित्र मौहम्मद अली ने गांधीजी की उपस्थिति में अधिवेशन के अध्यक्षीय स्थान से कहा कि, हिन्दु और मुस्लिम दोनों में दलितों को आधा-आधा बाँट देना चाहिए। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में दिया गया अध्यक्ष का ऐसा निवेदन लोगों को अचंभित करने वाला था। इसी प्रकार की राक्षसी इच्छा दूसरे मुस्लिम याकुब हुसैन ने मद्रास में गांधीजी के सत्कार प्रसंग में खुलेआम व्यक्त की। दुःख की बात यह है कि तब राष्ट्रपिता के मुंह पर दुःख या व्यथा अथवा असम्मति के भाव तक नहीं दिख रहे थे।

१९२९ के जून महीने में मंदिर-प्रवेश विषयक कई अखबारों में चर्चा शुरू हुई। उस समय मुंबई में ठाकुरद्वार में बना मंदिर समग्र हिन्दुओं के लिए खुला है, ऐसी खबर मिली। कुछ पहचान वालों से यह खबर सत्य है या नहीं, इस बात की तसल्ली करने के लिए अंबेडकर ने मंदिर के प्रमुख कार्यकर्ता के साथ फोन पर बात करने को कहा। अंबेडकर ने बात की। मंदिर की मुलाकात लेने का दिन निश्चित किया गया। निश्चित दिन सितारामपंत शिवतरकर के साथ वे मंदिर में गए। उनको देखकर कुछ विध्नसंतोषियों ने हल्ला मचा दिया। अंबेडकर ने उनको जवाब दिया कि, "जिन्होंने हमें आमंत्रित किया है, वे जब तक हमें जाने को नहीं कहते तब तक हम यहाँ से हिलेंगे भी नहीं।" और वे दोनों समूहों का सामना कर शांति

और धीरजपूर्वक मंदिर में बैठ रहे।

२३ अक्टूबर, १९२९ को दिन जब वे स्टार्च कमिटी के कार्य के अंतर्गत सफर कर रहे थे, तब चालीस गाँव के कार्यकर्ताओं ने अधिवेशन का आयोजन किया था। वहाँ भी उनको ऐसा ही अनुभव हुआ। कोई भी टाँगेवाला उनको बिठाने के लिए तैयार न था। अंत में अस्पृश्य समाज के एक कार्यकर्ता ने टाँगा चलाने की तैयारी बताई, किंतु उसको चलाना नहीं आता था। एक स्थान पर घोड़ा भड़क गया और दोनों चट्टान के साथ टकरा गए। चोट तो लगी लेकिन साथ ही साथ पैर की हड्डी टूट गई सो अलग।

वर्ष १९३२-३३ तक अंबेडकर की प्रतिभा और होशियारी से देश तथा दुनिया के लोग अवगत हो चुके थे। उच्च शिक्षा प्राप्त नेताओं में उन्होंने महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। वे ब्रिटिश के प्रधानमंत्री तथा ब्रिटन के राजाधिराज के साथ बैठकर उनके साथ विचार-विमर्ष करने की योग्यता धारण करने वाले प्रतिभाशाली नेता बन चुके थे। वे एक समर्थ अखिल भारतीय नेता के रूप में स्थापित होने के बावजूद अस्पृश्यता उनका पीछा छोड़ने को तैयार ही नहीं थी। १९३३ में महाराजा सयाजीराव गायकवाड ने दलित वर्ग की सेवा के लिए उनका सत्कार करने का एक कार्यक्रम मुंबई में आयोजित किया। इस सत्कार समारोह की कमिटी में अंबेडकर सदस्य थे। उनका नाम उस कार्यक्रम के वक्ताओं की सूची में था, परंतु कार्यक्रम शुरू होने तक तो ऐसा हुआ कि अंबेडकर का नाम वक्ताओं की सूची से निकल गया। यह घटना उनके अस्पृश्य समाज की व्यक्ति होने के कारण बनी थी। मुंबई हाईकोर्ट के वकील उनका सम्मान करना चाहते थे, लेकिन कार्यक्रम के लिए जगह ही नहीं मिली। एक गुजराती धाराशास्त्री उनके पुत्र के विवाह अवसर में अंबेडकर को निमंत्रण देना चाहते थे, वहाँ भी उनकी अस्पृश्यता उनके आड़े आई। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अस्पृश्य समाज में एसी दुर्घटनाएँ होती रहती हैं यह इस बात का प्रमाण है। दिसम्बर, १९३४ में अंबेडकर दौलताबाद की मुलाकात के लिए गए, वे वहाँ पुराना किला देखने गए और एक टंकी से उन्होंने हाथ-पैर धोने के लिए पानी लिया। उसी वक्त एक वृद्ध मुस्लिम जोर से चिल्लाने लगा, "अस्पृश्य

लड़के ने टंकी अपवित्र कर दी।" यह सुनते ही मुस्लिमों का एक झुंड वहाँ एकत्र हो गया। परिस्थिति तंग बन गई। अंबेडकर ने नेता जैसे दिखनेवाले एक व्यक्ति को पूछा कि, "क्या अस्पृश्य आदमी मुस्लिम बन जाए तो आप उसको इस टंकी से पानी लेने दोगे?" परिस्थिति शांत तो हो गई लेकिन वे जब तक किले में रहे तब तक एक सैनिक उनके साथ रहा। सुरक्षा के लिए नहीं, किंतु कहीं दूसरी जगह वे इस प्रकार पानी अपवित्र न कर दे, यह देखने के लिए।

इसी तरह दिसम्बर, १९३४ में कुछ कार्यकर्ताओं के साथ वे सिंहगढ़ से सवेरे एक अस्पृश्यों की परिषद् में हिस्सा लेने जा रहे थे। रास्ते में सिंहगढ़, आराम कर रहे थे। इतनी देर में साठ-सत्तर धर्मांध सवर्ण लोगों का झुंड लाठी इत्यादि लेकर वहाँ आ पहुँचा और 'आपने शिवाजी का गढ़ अपवित्र कर दिया' ऐसा आरोप लगाकर मरने की तैयारी करने लगे लेकिन अंबेडकर ने निर्भीक होकर उनको समझाकर वापस भेज दिया। इस घटना को सुनकर उनकी पत्नी रमाबाई की तबियत खराब हो गई। इस सदमे के कारण वे लंबे समय तक बीमार ही रही।

अंबेडकर बतौर एक नेता सफल थे। उसके पीछे की मुख्य शक्ति उनको बचपन में जिस तरह की परवरिश दी गई, महार होने के कारण जो अत्याचार सहन करने पड़े, उसके कारण मन पर जो असर हुआ था वह थी। इसलिए ही किसी भी परिस्थिति में "युद्ध ही कल्याण" के मंत्र के साथ संघर्ष की पताका उठाना, अत्याचार के खिलाफ लड़ना, लड़ने और जीतने की आदत बनानी पड़ी, उसका ही परिणाम था।

बचपन में जब किसी बच्चे को खिलौने की आशा हो, लाड-प्यार की आशा हो, दोस्तों साथियों के साथ खेलने की आशा हो उस उम्र में जब उसको जात-पात का होश न हो ऐसे समय में कदम-कदम पर समाज द्वारा तिरस्कार, अपमानित होना पड़े उस बालक की मन:स्थिति की कल्पना करना असंभव है। स्कूल में प्रवेश ना मिलना और अगर प्रवेश मिले तो अलग बैठना पड़े, पानी पीने के लिए सवर्ण बच्चों के कक्षा में हाजिर शिक्षक द्वारा बच्चे या चपरासी की सहायता लेनी पडे। ऐसी दारुण स्थिति ने अंबेडकर के अंतर्मन को हथौड़े की तरह पीट-पीटकर उनमें नेता की मूर्ति बनाई थी। वह बनावट आगे चलकर भारत के इतिहास में

सर्वाधिक अन्याय जिन्होंने सहे थे, ऐसे डॉ बाबासाहब अंबेडकर के रूप में तैयार हो गई थी। जो अपने से ज्यादा आखिरी छोर के आदमी, समाज और राष्ट्र की चिंता जिंदगीभर करते रहे। कदम-कदम पर उनको तिस्कार के अनुभव हुए, लेकिन उन्होंने हिम्मत हारे बिना अपना संघर्ष जारी रखा। कभी परिणाम आया कभी न आया, लेकिन अंबेडकर के प्रयासों में कोई कमी नहीं आई।

अन्य समाज दलित समाज के प्रति बहुत ही संवेदनहीन था। शायद इसलिए ही अंबेडकर को प्रतिज्ञा लेनी पड़ी कि, "बतौर हिन्दु जन्म लेना मेरे हाथ की बात नहीं परंतु मैं हिन्दु के रूप में मरुंगा नहीं।"

अंबेडकर का परिवार धार्मिक वृति वाला था। पिता रामजी सकपाल द्वारा अपने बच्चों को पढ़ाने में, संस्कार देने में कोई कमी नहीं रखने के बावजूद भी कदम-कदम पर हिन्दु समाज ने अंबेडकर के परिवार पर अत्याचार किए। सिर्फ अंबेडकर का परिवार ही नहीं, वरन् समग्र अस्पृश्य समाज पर क्रूर अत्याचार किए। ऐसा नहीं है कि अंबेडकर की मौजूदगी के दौरान जो परिस्थिति थी, उसमें आज कोई बदलाव आया हैं ! शायद उसकी तीव्रता की मात्रा में फर्क पड़ा है, लेकिन परिस्थिति वैसी की वैसी ही है !

आजादी के दशक के बाद आज भी रणवीर सेना द्वारा दलित समाज के बंधुओं के खुले आम जाहिर में कत्ल होते हैं, दलित समाज के लोगों को हिजरत करनी पड़ती है, ऐसी अनेकों घटनाएँ नजर के समक्ष आती हैं। तब आंसू नहीं बल्कि आँख से खून की बूंदें गिरने से अंगारें ही निकलते हैं। डॉ. अंबेडकर की देश के समस्त वर्गों को समान न्याय की परिभाषा को, आजादी के इतने वर्षों बाद भी पूर्ण करने में शासनकर्ता नाकामयाब हुए है। अत: गुजरात में साबरडा में दलितों पर अत्याचार हुए उसके परिणाम स्वरूप सामूहिक हिजरत की जो घटनाएँ दशकों पूर्व बनी थी, वैसे ही घटनाएँ आज भी घटित हो रही हैं। तो दूसरी तरफ थान में युवानों को मौत के घात उतारकर एक चादर में लपेटकर इस धरती को रौंद रहे हैं। वर्तमान समय की एक घटना है गुजरात के एक इलाके में अनुसूचित जाति की युवा लड़की का विद्या सहायक की नौकरी के लिए चयन हुआ जिसके चलते

वह भरूच से कच्छ के गाँव में जाती है। वह स्थल उसके घर से ५०० से ५५० कि.मी. जितना दूर है। लड़की अनुसूचित जाति की होने के कारण उसको रहने के लिए कोई घर नहीं देता था। उसने शिक्षण विभाग के अधिकारी को बिनती की, लेकिन कोई उत्तर या सहयोग नहीं मिलने पर वह त्यागपत्र दे देती है। आज भी राजकीय पक्ष जहाँ में आरक्षित बैठक के अलावा सामान्य विभाग की जगह होती है वहाँ शिक्षित, सक्षम, दलित का चयन किया जाता है ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं। आज निजी या सार्वजनिक संस्था, संगठन, सामाजिक संगठन में आरक्षित कोटा के अलावा सक्षम व्यक्ति है तो भी उसको कोई जिम्मेदारी या फिर किसी उच्च पद पर बैठाया नहीं जाता। जिस दिन इस सोच में परिवर्तन आएगा उस दिन अस्पृश्य समाज के लिए समरसता का दिन होगा।

विकसित राष्ट्र अमरीका जैसे देश की बात करें तो वहाँ सदियों से काले और गोरे के बीच में खाई थी। बिल क्लिंटन के अमरीकन प्रेसिडेंट बनने के पश्चात् उन्होंने इस भेदरेखा को दूर किया। जिससे विश्व की महासत्ता आर्थिक रूप से संसार के बाकी देशों से अधिक प्रगति कर सका है। क्या ऐसी विचारधारा के लिए भारतीय समाज आज तैयार है भी ? एसी विचारधारा के अनुसार राष्ट्र निर्माण के लिए सही समय आ गया है।

अमेरिकन प्रेसिडेंट ओबामा जैसे एक अश्वेत व्यक्ति को अमरीका जैसी गोरी प्रजा स्वीकार करती है। इतना ही नहीं दो-दो बार अमेरीकन प्रमुख बनाती है। अमरीका की प्रजा विकास को समर्थन देती हैं ना कि यह देखकर कि वह किस कुल का है ? किस जाति का है ? विश्व के जिन देशों ने विकास किया हैं वैसे देशों के विकास मॉडल का यदि अध्ययन किया जाए तो पता चलता है कि वहाँ ज्ञाति नहीं, जाति नहीं बल्कि बौद्धिकता, ज्ञान तथा शिक्षा के मापदंड पर व्यक्ति का मूल्यांकन किया जाता है। विश्व की आर्थिक महासत्ता के संपूर्ण गुणों को लेकर घूमने वाला अमरीका जैसा देश या फिर चीन, जापान, केनेडा और रशिया जैसे देशों में ज्ञाति, सम्प्रदाय को नहीं बल्कि कर्म को महत्त्व दिया जाता हैं। भारतीय समाज आज भी कुएं के मेंढक जैसी मानसिकता से सोचता है। आज नहीं तो कल इस तरह की सोच

छोड़कर, जात-पाँत छोड़ खुले मन से विचार करने के मार्ग पर आने के अलावा भारतीय समाज के पास ओर कोई चारा नहीं है। आज भी अन्य समाज के लोग अनुसूचित जाति को अंबेडकर के द्वारा दी गई अपनी वोटबैंक का पोषण देने के अलावा कुछ सोचते हैं ? तो उत्तर है नहीं। अंबेडकरजी के पंचमहाभूत में विलीन हो जाने के सदियों बाद भी यह हालात है। एसी परिस्थिति से सहज विचार स्फुरित होती है कि डॉ. बाबासाहब अंबेडकर होते तो। इस स्थिति को रोक सके होते।

भारत के 132 करोड़ भारतीय में भ्रातृ भावना का निर्माण मनमें लाये बिना भारत का संपूर्ण विकास असंभव लगता है । सभी देशवासीओं को जातिवाद से उपर उठकर मातृभाव और भ्रातृभाव की भावना से ही भारत आगे बढ़ सकता है ।

"अस्पृश्यता निवारण के लिए शिक्षा पर भार देते डॉ. अंबेडकर ने कई शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना की हैं। जिनमें से एक मिलिंद कॉलेज, मुंबई था। मिलिंद कॉलेज के शिलान्यास अवसर पर भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, डॉ. अंबेडकर और अन्य प्रतिनिधि दिखाई दे रहे हैं।"

डॉ. अंबेडकर द्वारा अस्पृश्यता निवारण के लिए किए गए प्रयास

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर द्वारा अस्पृश्यता निवारण के लिए १९२० के मई महीने के आखरी सप्ताह में नागपुर में परिषद का आयोजन किया गया था। जिसमें डी. सी. मिशन के स्थान पर कर्मवीर शिंदे ने थोड़े दिन पूर्व सरकार के समक्ष ऐसा निवेदन किया था कि, विधानसभा में अस्पृश्यों के प्रतिनिधि की नियुक्ति चुने हुए सदस्यों द्वारा होनी चाहिए। विचार समिति की बैठक में शिंदे के भेजे दो नेता गणेश गवई और बेळगाँव के तापन्ना के साथ इस निवेदन के विषय में अंबेडकर की उग्र चर्चा हुई। गवई प्रपंच रचकर अंबेडकर को इस समिति के अध्यक्ष बनाकर बदनाम करना चाहते थे, परंतु अंबेडकर ने अपने बजाय तापन्ना को अध्यक्ष बनाकर उनके षड़यंत्र को निष्फल बना दिया। साथ ही अध्यक्ष की अनुमति से उग्र दलील करता हुआ व्याख्यान देकर प्रस्ताव पारित कराया कि, "शिंदे के मतानुसार सरकार को फैसला नहीं लेना चाहिए।" इस अस्पृश्यता के विरुद्ध शायद यह उनकी प्रथम जीत थी।

इस परिषद के पश्चात् उन्होंने महारों की १८ उपज्ञातिओं को समूहभोजन के माध्यम से एक साथ लाने का प्रयास किये। क्योंकि कुछ अस्पृश्य जातियाँ भी अन्य अस्पृश्य जातियों को अस्पृश्य मानकर साथ बैठकर भोजन नहीं लेती थी। अंतत: समय-समय पर डॉ. बाबासाहब अंबेडकर समाज को मार्गदर्शन दिया करते थे। विद्याभ्यास के लिए हिन्दुस्तान के बाहर विदेश में रहकर भी उनका ध्यान भारत में हो रहे अस्पृश्योद्धार के कार्य पर ही था। वे इस विषय में चिंता करते और दोस्तों, स्नेही कार्यकर्ताओं को मार्गदर्शन देते। वे कहते, "एकता में जय, भेद (फूट) में क्षय।"

आजादी प्राप्त करने की चिंता भारतवर्ष के कोने-कोने में चिंगारी से ज्वाला बनती जा रही थी। लोकमान्य तिलक ऐसे नेता थे, जिनके लिए समग्र देश के लोगों के मन में सम्मान की भावना थी। इसे समय में ही तिलकजी की मृत्यु हुई। उनकी

मृत्यु के बाद गाँधीयुग का उदय हुआ। जिसको अंबेडकर ने आगे चलकर तमोयुग की संज्ञा दी थी। राष्ट्रीय सभा ने तिलक स्वराज्य निधि एकत्र की थी। जिसका उद्देश्य था अस्पृश्यता निवारण, किंतु यह काम हिन्दु महासभा का है; उसके साथ राष्ट्रीय सभा को कोई लेना-देना नहीं, ऐसा प्रस्ताव राष्ट्रीय सभा के कार्यकारिणी ने किया। अंबेडकर अस्पृश्य समाज के हित के लिए भारतीय मसले में ब्रिटिश मंत्री मोंटेग्यु और विठ्ठलभाई पटेल को मिले तथा भारत में अस्पृश्यों के प्रश्नों और समस्याओं के विषय में उनके साथ विशद चर्चा की थी। १९२४ में भारत के इतिहास पटल पर तीन महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुई, जो अस्पृश्यता निवारण के क्षेत्र में महत्त्व की थी। प्रथम ६ जनवरी, १९२४ के दिन स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी की मुक्ति। १२ वर्ष के कठिन कारावास की दिल दहला देने वाली यातना बाद सावरकर को यरवदा जेल में रखा गया था। वहाँ से मुक्त करके नजरकैद करके रत्नागिरी में रखे गए। उनके समक्ष शर्तों के तहत राजनैतिक आंदोलन में हिस्सा न लेने की शर्त थी। इसलिए उन्होंने संकल्प लिया कि अस्पृश्यता निवारण तथा परधर्म में गए हुए हिन्दुओं को परिवर्तित करवाने के कार्यक्षेत्र में वे काम करेंगे। इसलिए उन्होंने आंदोलन जीवनभर चलाया था।

दूसरी घटना घटी ११ फरवरी, १९२४ के दिन। खिलाफत आंदोलन की विफलता से जेल में रहे गाँधीजी को मुक्त किया गया। उन्होंने भी अस्पृश्यता निवारण के आंदोलन की शुरुआत की।

तीसरी घटना अर्थात् बाबासाहब के अस्पृश्योद्धार के लिए किए गए आंदोलन की तैयारी। इस वर्ग की सामाजिक तथा राजकीय मुसीबतों को दूर करने के लिए सरकार समक्ष उचित प्रतिनिधि को पेश करने के लिए ९ मार्च, १९२४ के दिन मुंबई के परेल में दामोदर ठाकरशी सभागृह में एक मीटिंग बुलाई गई। उसमें पारित प्रस्ताव के अनुसार २० जुलाई, १९२४ के दिन "बहिष्कृत हितकारिणी सभा" की स्थापना हुई। इस सभा के उद्देश्य थे कि, छात्रालयों द्वारा या फिर अन्य साधनों के द्वारा बहिष्कृत समाज में शिक्षा का प्रसार किया जाए।

इस समाज में संस्कार के संवर्धन के लिए जगह-जगह पर पुस्तकालय, शैक्षणिक

वर्ग तथा स्वाध्याय मंडलों की स्थापना करनी चाहिए।

इस समाज की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए औद्योगिक और कृषिविषयक स्कूल चलानी चाहिए।

इस सभा के कार्य में उन्होंने बहुत प्रतिष्ठित नागरिकों को जोड़ा। प्रमुख के रूप में चिमनलाल हरिलाल सेतलवाड, मेयर निस्सिम, जे. पी. सोलिसिटर रुस्तमजी जिनवाला, श्री बी. जी. खेर इत्यादि थे। तो व्यवस्थापक समिति के प्रमुख के रूप में स्वयं बाबासाहब जिम्मेदारी निभाते थे। मंत्री के तौर पर एन. एस. शिवरतकर और कोषाध्यक्ष के रूप में एन. टी. जाधव थे। यह मध्यस्थ संस्था दलित वर्गों को उनकी खराब परिस्थिति में अन्य समाज के लोगों के साथ सामाजिक, राजकीय समानता के स्तर पर लाने के लिए और आर्थिक प्रगति के लिए काम कर रही थी। इस सभा के कार्य में भी बाबासाहब की दीर्घदृष्टि तथा सामाजिक समरसता एवं सामाजिक एक्य की भावना स्पष्ट झलकती थी। इस सभा ने अपनी विभिन्न समितियों में और दलित समाज के व्यक्तिओं को बड़े पैमाने में शामिल किया गया। उसका उत्तर प्रथम वार्षिक रिपोर्ट में दिया गया।

प्रथम रिपोर्ट में बताया गया कि, "जो वर्ग की उन्नति के लिए संस्था की स्थापना करनी है और उस संस्था में उस वर्ग के या फिर ऐसे हालात को भुगत रहे लोगों के कार्यकर्ता संस्था में न हो तो संस्था अपने उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकती हैं। सही प्रगति नहीं कर सकती है। रिपोर्ट में बताया कि, 'संस्था की सफलता का आधार उसके सदस्यों की सन्निष्ठा, उसके ध्येय और कार्यक्रम के प्रति उनकी लगन पर रहता है। दलित वर्गों के कार्यकर्ताओं को संस्था में पूरा मौका दिया जाता है इसके बावजूद भी संस्था के स्थापकों के मत से उच्च वर्णों की सहानुभूति और सहारे के बिना इसका भागीरथ कार्यक्रम पूरा हो सकता नहीं है। अत: यह (उच्च) वर्णों की ओर से मिलने वाले फंड का अस्वीकार दलित वर्गों के लिए घातक साबित हो सकता है।'

उस समय कई महापुरुष और संस्थाएँ अस्पृश्यता निवारण के कार्य में लगे थे। लेकिन वे सभी अपनी-अपनी आवश्यकताओं की मर्यादाओं के बीच एक समस्या

के समाधान के लिए ही कार्य करते थे। जबकि अंबेडकर का स्पष्ट मानना था कि जब तक हिन्दु समाज की समानता पर आधारित समाज रचना के आधार पर पुन:रचना नहीं होती तब तक अस्पृश्यता के राक्षस का संहार संभव नहीं। जबकि इन सबसे अलग कांग्रेस के नेता राष्ट्रघातक विचारधारा में फंसे थे। मुस्लिमों की एकता के लिए कोई भी कीमत चुकाने के लिए तैयार कांग्रेस के नेताओं की मानसिकता भारतीय इतिहास, राजनीति, सामाजिक जीवन, राष्ट्रवाद के मूल्य की उनकी कसौटी तथा धर्मांध मुस्लिमों के सम्प्रदायवाद को प्रोत्साहित करने वाली माँगों को पूरा करने की थी। गाँधीजी के कांग्रेस प्रवेश से पूर्व ४० अधिवेशन हुए लेकिन कथित अस्पृश्य भारतीयों को उनकी जन्मभूमि में पीने के लिए पानी मिलता हैं कि नहीं ? उनको जबरदस्ती से या लोभ-लालच से मुस्लिम या फिर इसाई धर्मप्रचारक कैसे फुसलाते हैं, उसका कभी भी कांग्रेस के एक भी नेता ने विचार या विरोध नहीं किया था। मुस्लिमों की बाहर की दुनिया के लिए चिंतित कांग्रेसियों को हिन्दुओं के सुलगते प्रश्नों के लिए कोई चिंता नहीं थी।

उस समय अस्पृश्यता निवारण के विषय में सोचने वाले या कार्य करने वाले को महापुरुष थे : महात्मा गाँधीजी और डॉ. बाबासाहब अंबेडकर।

गाँधीजी के अस्पृश्यता निवारण में मानवतावाद का निर्देश दिखाई देता था। वे विशेष रूप से अस्पृश्यता निवारण को सामाजिक दृष्टिकोण से देखने बजाय सनातन सुधारक की मानवतावादी दृष्टि से देखते थे। उनकी दृष्टि में संत की समानता एवं माँ की ममता थी। (पृष्ठ – 44) किंतु अस्पृश्यों को परधर्म में फुसलाकर धर्म परिवर्तन करवाकर हिन्दु समाज को नुकसान पहुँचाने वाले इसाई या मुसलमानों का उन्होंने कभी भी विरोध नहीं किया। वे अपने पूंजीवादी रूढीवादी प्रशंसकों की भावनाओं को ठेस न लगे उसका हमेशा ध्यान रखते थे। हिन्दु समाज की पुन:रचना का उनका इरादा नहीं था। उसमें भी गाँधीजी द्वारा किए गए कांग्रेस के कार्य असरकारक से ज्यादा प्रचारकारक अधिक थे।

अंबेडकर का अभिगम महात्मा गांधी से भिन्न था। वे खुद अस्पृश्य समाज में जन्मे थे। अस्पृश्य होने से क्या-क्या सहना पड़ता है, वह सब उन्होंने भोगा था।

शास्त्र, शस्त्र और संपत्ति से अलिप्त रखने में अस्पृश्यों के दुःख और तकलीफ को उन्होंने भोगा, जाना और समझा थे। इस अनुभवों के आधार पर उनको परिवर्तन लाना था। उन्होंने इस परिस्थिति के सामने संघर्ष करके जीत प्राप्त करने का स्वप्न देखा था। उन्होंने अपने समाज को मंत्र दिया –"अपना आत्मोद्धार खुद ही करना है।" वे कहते हैं, **"गुलाम जब तक गुलामी के विरुद्ध आवाज नहीं उठाएगा तब तक उसका उद्धार होने वाला नहीं है, गुलाम को उसकी गुलामी का एहसास करा दो फिर वह खुद अपने आप लड़ेगा।"** इसलिए वे संदश देते थे कि, 'आत्मोद्धार के लिए लड़ाई लड़ते रहो।' उनके तीन सूत्र थे : स्वाभिमान, स्वावलंबन और आत्मोद्धार।

डॉ. अंबेडकर ने 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना द्वारा भारत के पददलितों को स्वावलंबन, स्वाभिमान और आत्मोद्धार की शिक्षा देकर देश में महापरिवर्तन करने वाले युग का प्रारंभ किया था। सिर्फ बाह्य आंदोलन करते रहने से अस्पृश्य वर्ग का ध्येय परिपूर्ण होने वाला नहीं। जब तक अस्पृश्य समाज में ज्ञान के महत्त्व का स्वीकारा नहीं जाएगा तब तक उनकी तकलीफों का अंत नहीं आएगा। इस उद्देश्य को मद्देनजर रखकर उन्होंने सभा ने ज्ञानप्रसार को अग्रिमता दी। सभा ने दलित विद्यार्थियों के लिए सोलापुर में ४ जनवरी, १९२५ में एक छात्रावास शुरू किया। छात्रों के कपड़े, खाने-पीने और शिक्षा का खर्च सभा ही उठाती थी। विद्यार्थियों में ज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ समाजसेवा के गुणों का विकास हो एवं वह समाजसेवा के मार्ग पर चलने के लिए तैयार हो, इसलिए एक संस्था शुरू की थी। इस संस्था के बेनर तले विद्यार्थी "सरस्वती विलास" नामक हस्तलिखित मासिक पत्रिका प्रकाशित करते। तदुपरांत मुंबई में एक पुस्तकालय शुरू किया गया था। जिससे जुए के अड्डे, शराब के बाजार और अन्य बुराइयों की तरफ अस्पृश्य युवा पीढ़ी मुंह फेरने लगी थी। साथ ही अंबेडकर का ज्वालामुखी के समान नेतृत्व अस्पृश्यता निवारण के यज्ञ में मुख्य यजमान बनकर आहुति दे रहा था।

बाबासाहब ने जिंदगीभर भारतीय समाज को किसी न किसी विचारों द्वारा दीक्षा दी थी। डॉ. बाबासाहब के वकील बन जाने के बाद भी वकालत में उनको बहुत

कुछ सहना करना पड़ा था। लेकिन उनके सामर्थ्य को रोकने की क्षमता किसी में भी नहीं थी। सन १९२५ के अक्टूबर में पुणे में एक घटना घटी। जिसने उनकी कीर्ति को समग्र महाराष्ट्र में बढ़ाने के साथ प्रस्थापित भी की। पुणे के तीन व्यक्तियों सर्वश्री बागडे, जेधे और जवळकर नाम के ब्राह्मणेतर नेताओं में से जेधे और बगड़े ने "देशना दुश्मन" नाम की किताब लिखी। जिसमें उन्होंने ब्राह्मणों ने भारत का नाश किया है, ऐसा प्रतिपादित किया। जिसके खिलाफ कुछ ब्राह्मणों ने इन तीनों के विरुद्ध ब्राह्मण जाति का अपमान किया होने के मामले में कोर्ट में दावा किया। उनके वकील थे पुणे के प्रख्यात धाराशास्त्री श्री लक्ष्मण बलवंत भोपटकर और अभियुक्त की तरफ से मोर्चा संभाला था स्वयं डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने और उनकी दलीलों को कोर्ट ने मान्य रखी। डॉ. अंबेडकर इस मुकदमे को जीत गए थे। अत: उनको एक वकील के रूप में बहुत बड़ी प्रसिद्धि मिलने से गरीबों के आस्था स्थान के रूप में वे लोगों में प्रस्थापित होते जाते थे। गरीबों और दलितों के दु:ख और गरीबी उनको अस्वस्थ कर देती थी। बाबासाहब उनके घर आए गरीबों के काम ज्यादातर मुफ्त में करते थे।

सन १९२७ में ब्रिटिश सरकार द्वारा महार जाति में जन्म लेने वाले युवाओं को सेना में भर्ती करने पर प्रतिबंध लगाया गया। उसके विरुद्ध, कोरेगांव युद्ध स्मारक के आगे सभा का आयोजन करके ब्रिटिश सरकार को अपना फैसला बदलने के माँग की गई। साथ ही यह चेतावनी दी गई कि यदि सरकार यह प्रतिबंध वापस नहीं लेगी तो ब्रिटिश सरकार विरुद्ध उग्र आंदोलन किया जाए। इस तरह वे ब्रिटिश सरकार विरुद्ध समय-समय पर आंदोलन किया ही करते थे। अब डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने "बहिष्कृत भारत" नामक पाक्षिक द्वारा अपने पर हो रही टिका-टिप्पणी और शाब्दिक हमलों का जवाब देने की शुरुआत की। इस पाक्षिक द्वारा वे समाजबंधुओं को मार्गदर्शन देते। उन्होंने इस पाक्षिक के माध्यम से संदेश दिया कि, "जब तक हम अपने आपको हिन्दु कहते हैं और जब तक आप हमें हिन्दु समझते हो तब तक मंदिर में जाकर देवदर्शन करना हमारा अधिकार है, ऐसा हम समझते हैं। मुझे अलग-अलग मंदिर नहीं चाहिए, मंदिरों के बिना हमारा कुछ रुका

हुआ नहीं है। जिनको देव की भक्ति करनी हैं उनको देव की आवश्यकता है ऐसा नहीं हैं। सामाजिक उपासना और सामाजिक सम्मेलन एवं एकता के लिए मंदिर आवश्यक होते हैं। हमारे समाज में समान अधिकार चाहिए। हो सका तो हम वे अधिकार हिन्दु समाज में रहकर व जरूरत पड़ी तो मूल्य गँवा चुके हिंदुत्व को लात मारकर भी प्राप्त करेंगे। हिंदुत्व का त्याग करने का समय आया तो स्वाभाविक रूप से ही हम मंदिरों के झमेले में नहीं पड़ेंगे, यह कहने की आवश्यकता नहीं हैं। उस वक्त उन्होंने एसा सिंहनाद किया था।

महाड के चवदार तालाब सत्याग्रह के पश्चात् हिन्दुओं ने तालाब को शुद्ध किया इस बात को जानकर उनको बहुत गुस्सा आया और उन्होंने पुन: सत्याग्रह कर अस्पृश्यों को तालाब से पानी भरने का अधिकार पुन:स्थापित करने का अपना फैसला घोषित किया। इस सत्याग्रह का परिणाम अत्याधिक भयंकर आएगा यह अहसास कुछ लोगों को हुआ। "रोग से ज्यादा उसका इलाज अधिक खतरनाक निकलेगा।" ऐसा मत व्यक्त करने के साथ अंबेडकर सवर्णों की परंपरागत भावनाओं को बेध्यान करते हैं तथा वे कुछ वर्षों से रची गई रूढ़ियों की दीवार में सुरंग बनाना चाहते है। उनका कृत्य २०० किलोमीटर के हनुमानकूद जैसा है ऐसा मत व्यक्त किया है। उसके विरुद्ध अंबेडकर ने अपनी ही भाषा में उत्तर दिया कि, "आपके इस शाब्दिक विवाद से या फिर ज्ञान के आडंबर से अस्पृश्यता दूर होने की आशा रखी होती तो यह बुद्धिवाद शायद मान्य होता। शस्त्र के उपयोग के अलावा या फिर ज्ञान की मरहमपट्टी से यह रोग मिटेगा नहीं। इस मामले में अनुभव सिद्ध होने के बावजूद शस्त्र का उपयोग करने की मन की निष्ठुरता ना बताना यह सच्ची कार्यक्षमता नहीं, यह तो मन की दुर्बलता है।"

सन १९२८ के जून में उन्होंने दो छात्रावास शुरू किए। "बहिष्कृत हितकारिणी सभा" के विसर्जन का प्रस्ताव १४ जून, १९२८ के दिन बहिष्कृत हितकारिणी सभा की कारोबारी में रखा और बहिष्कृत समाज में शिक्षा के प्रसार के लिए 'भारतीय बहिष्कृत समाज शिक्षण प्रसारक मंडल' की स्थापना की। धार्मिक, राजकीय आंदोलन करने के लिए 'भारतीय बहिष्कृत समाज सेवा समिति' शुरू की। दलितों

की स्कूल की शिक्षा मजबूत नींव पर खड़ी करने तथा लोग अपनी शिक्षा का खर्च उठा सकने में सक्षम नहीं होने के चलते उनके बच्चों के लिए योग्य सुविधा खड़ी करने के लिए दलित वर्ग शिक्षा संस्था ने छात्रावासों की स्थापना करने का कार्य हाथ में लिया।

८ अक्टूबर, १९२८ के दिन मुंबई के राज्यपाल ने माध्यमिक शिक्षा लेने वाले अस्पृश्य बच्चों के लिए पाँच छात्रावास की योजना को मंजूरी दी थी। अंबेडकर द्वारा स्थापित शिक्षा संस्था को १८६२ के चेरिटेबल सोसायटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट तहत मान्यता मिली। जिसमें १९ सभ्यों का मार्गदर्शन मंडल था और प्रमुख के रूप में डॉ. अंबेडकर थे। सरकार ने जिनके लिए वार्षिक ९ हजार रूपये अनुदान के रूप में मंजूर किए थे ऐसे पाँच छात्रावासों की व्यवस्था अंबेडकर के नेतृत्व तहत मंडल को सौंपी गई। यह खर्च भी अपर्याप्त था इसलिए अंबेडकर ने समाज से विशिष्ट माँग की, नगरपालिका के अध्यक्ष ने भी अस्पृश्य विद्यार्थियों की फीस में छूट दी। छात्रावास बनाने के लिए बिना मूल्य जगह दी।

सन १९२९ में वह स्टार्च कमिटी के सभ्य बनाए गए। यह कमिटी मुंबई सरकार द्वारा बनाई गई थी। उसका उद्देश्य था मुंबई प्रांत के अस्पृश्य और आदिवासी जातियों की शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति की जांच कर उस विषय में सुधार के लिए क्या-क्या प्रयास करने चाहिए। (इस कमिटी के चालीसगाँव प्रवास के वक्त टांगा से बनी दुर्घटना से उनके पैर की हड्डी टूट गई। उनको कुछ समय के लिए बिस्तर पर रहना पड़ा।) उन्होंने कमिटी को १९३० में दिए रिपोर्ट में बताया कि, "अस्पृश्य जनता हिन्दुओं के धर्मकृत्य, नियमों, व्रत मानते व करते हैं। फिर भी उनको बहिष्कृत स्थिति में दूर और अलग रहना पड़ता है। प्रतिबंधों के कारण वे समाज में बेझिझक घूम-फिर नहीं सकते हैं। इस तरह वे गुलामी की स्थिति में जी रहे हैं।" उन्होंने कुछ हिदायतें दी, सवर्ण हिन्दुओं की स्कूल में अस्पृश्य बच्चों को सहज आसानी से शिक्षा मिले एसी व्यवस्था की जाए। अस्पृश्य विद्यार्थी के लिए छात्रावास, छात्रावृत्ति को बढ़ाया जाए। मिल, रेलवे, कारखानों में औद्योगिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों को लेने की और विदेश में यांत्रिक शिक्षा प्राप्त

करने के लिए अस्पृश्य विद्यार्थियों को छात्रावृत्ति देने तथा इसकी जांच करने के लिए एक स्वतंत्र अधिकारी को नियुक्त किया जाए एवं गाँव में सहकारी संस्थाओं में अस्पृश्यों के प्रतिनिधित्व, नगरपालिका में सफाई कर्मचारियों की 'शाहुकारों के कायदे और प्रोविडेंट फंड' चालू किया जाए एवं संरक्षण दिया जाए। पुलिस और सैन्य विभाग में अस्पृश्यों की भर्ती, जंगल की प्राप्त की गई तथा बिना फसल उगाई गई जमीन दलित वर्ग को दी जाए इत्यादि हिदायतें शामिल थी।

अंबेडकर जब दूसरी गोलमेजी परिषद से भारत वापस आए तब उनके साथ जहाज में थे शौकतअली; जो ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त मताधिकार समिति के सदस्य थे तथा मुस्लिम नेता थे। उनका मुस्लिमों ने और अंबेडकर का उनके अनुयायियों ने स्वागत किया। अंबेडकर के लिए एकत्र हुए अस्पृश्य तथा मुस्लिमों का संबोधन करते हुए शौकतअली ने कहा कि, "प्रत्येक धर्म और जाति की व्यक्ति को अपने कार्य में अटूट श्रद्धा और हिम्मत दिखानी चाहिए। अस्पृश्य समाज के हित की दृष्टि में अंबेडकर ने गोलमेजी परिषद् में जो हिम्मत दिखाई वो वास्तव में प्रशंसनीय थी। अंबेडकर मेरे छोटे भाई हैं।"

ऐतिहासिक पुणे करार के पश्चात् मुंबई के वरली में २८ सितंबर, १९३२ के दिन सार्वजनिक सभा में उन्होंने कहा कि, "आज जहाँ देखो वहाँ आपके लिए मंदिरों के द्वार खुलने के प्रयास चल रहे हैं। इस प्रयास के उद्देश्य के विषय में कोई आशंका नहीं है। लेकिन मंदिरों में जाने से आपका उद्धार हो जाएगा, ऐसा नहीं हैं। यह बात एकदम गलत है। खाने के लिए पर्याप्त अनाज नहीं, बदन पर कपड़े नहीं। शिक्षा की व्यवस्था नहीं। पैसे की कमी की वजह से इलाज नहीं कर सकते हैं। ऐसी दयनीय अवस्था में अपना समाज जूझ रहा है अत: आपको अपने राजकीय अधिकार प्राप्त कर उनका उपयोग जिंदगी की सुख-सुविधाओं को भुगतने के लिए करना चाहिए। वे हक प्राप्त करने के लिए आपको शक्ति प्राप्त करनी पड़ेगी।" इसी सभा में दलित वर्ग के समग्र आंदोलन के मुख्यालय के रूप में मकान बनाने के लिए अंबेडकर ने दो लाख रूपए का फंड एकत्र करने का संकल्प किया।

सत्याग्रह के दौरान जनता को सम्बोधित करते डॉ. बाबासाहब अंबेडकर

"जो शासनपद्धति रक्तपात किए बिना आर्थिक और सामाजिक जीवन में समता लाकर क्रांतिकारक परिणाम ला सके, वही शासनपद्धति अर्थात् लोकशाही।"

– डॉ. भीमराव अंबेडकर

डॉ. अंबेडकर और सत्याग्रह

महाड नगरपालिका ने अपने इलाके के आया चवदार तालाब महाराष्ट्र विधानसभा द्वारा सीताराम केशव बोले के प्रस्ताव अनुसार खुला रखा। यह तालाब अस्पृश्य समाज के लिए खुला रखा गया है यह घोषणा भी की गई, परंतु वहाँ के स्पृश्य हिन्दुओं के डर से वहाँ के अस्पृश्य हिन्दु इस तालाब के पानी का इस्तेमाल नहीं कर सकते थे। अत: अंबेडकर तथा साथियों ने कोलाबा में १९ और २० मार्च के दिन जिला स्तर की बहिष्कृत परिषद का आयोजन करने का तय किया। इस परिषद का सुव्यवस्थित प्रचार-प्रसार भी किया गया था। नतीजन १५ वर्ष के युवक से लेकर ७५ वर्ष के वृद्ध तक और मुंबई से लेकर नागपुर तक के लोग वहाँ उमड़ पड़े। उपस्थित रहने वालों की संख्या करीबन दस हजार जितनी थी। परिषद में हिस्सा लेने वाले लोगों के लिए पानी उस जमाने में ४० रुपया खर्च करके खरीदकर लेना पड़ता था। उन्होंने इस परिषद में जोरदार प्रवचन द्वारा अस्पृश्यों को उनके मन पर पुराने, भोले तथा अनिष्ट विचारों पर जो जंग लगी है उसे धोकर आचार-विचार से शुद्ध होने के लिए विनंती की। आगे उन्होंने बताया कि एक बच्चा बी.ए. स्नातक होता है उससे समाज को जितना फायदा होगा उतना फायदा समग्र समाज के एक हजार बच्चे कक्षा ४ तक पढेंगे तो भी नहीं होगा। अत: प्राथमिक शिक्षा पर दुर्लक्ष्य न करके उच्च शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। साथ ही उनको सरकारी नौकरियों में अधिकतर प्रवेश मिले उसके लिए आग्रह रखना चाहिए। इस परिषद में १० प्रस्ताव पारित किए गए। जिसमें गाँव में पीने के पानी की परेशानी दूर करने, सरकारी शिक्षा और शराबबंदी का अमल अनिवार्य, एस. के. बोले द्वारा महाराष्ट्र विधानसभा में रखे गए प्रस्ताव का अमल करना इत्यादि था।

उस रात विषय विचारिणी समिति की बैठक में महाड नगरपालिका के प्रस्ताव पर चर्चा हुई। अस्पृश्यों को चवदार तालाब पर पानी पीने का अधिकार प्रस्थापित

करने के लिए परिषद् में उपस्थित सभी प्रतिनिधि तालाब पर जाकर पानी पीने का निश्चित किया गया। दूसरे दिन शाम को इस योजना पर अमल करने की योजना भी बनाई गई।

अंबेडकर एवं अन्य नेता दोपहर को परिषद् में गए, व्याख्यान हुए, जिसमें चार प्रस्ताव पारित किए गए। स्वामी श्रद्धानंदजी के दुखद अवसान पर शोक का प्रस्ताव पारित किया गया। धन्यवाद ज्ञापन हुआ और परिषद् की कार्यवाही पूर्ण होने की घोषणा की गई। पूर्व योजनानुसार अनंतराव चित्र ने खडे होकर कहा कि, "हम महाड नगरनिगम द्वारा किए गए प्रस्ताव का अमल करेंगे।" जैसे पूरे परिषद् में उत्साह व बिजली की चमक फैल गई। यह सुनकर स्पृश्य नेताओं में से अधिकतर बड़े-बड़े व्याख्यान देने वाले पीछे के दरवाजे से पंडाल छोड़कर चले गए। उनको अंबेडकर ने सुना दिया जो हमारे विचार है वहीं हमारे आचरण में हैं। आप अपने मार्ग पर चलिए।

इस तरह तुरंत सत्याग्रही चार-चार की टुकड़ी में विभाजित होकर एक के पीछे एक अनुशासित होकर चलने लगे। डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने नेतृत्व लिया। चवदार तालाब का पानी पशु-पक्षी, हिन्दु धर्म का अपमान करने वाले और गौहत्या को अपना अधिकार समझने वाले मुसलमानों तथा बाइबल का जिसे आधार नहीं ऐसे सभी धर्म अधर्म है। ऐसी डींगें हाकने वाले (पृष्ठ-51) इसाईयों को पानी पीने का अधिकार था, परंतु अस्पृश्य परिवार में जन्म लेने के कारण राम-कृष्ण, पांडुरंग को अपना आराध्य मानकर जीवन व्यतीत करने वाले अस्पृश्य हिन्दुओं को नहीं था। अब इस कलंक को मिटाने का समय नजदीक आ रहा था। भविष्य में कुछ नया निर्माण करने के लिए हजारों कदम एक साथ एक मन से उठकर कूच कर रहे थे। जैसे भगीरथ अपने पितृों के उद्धार के लिए स्वर्ग से गंगा अवतरण करके लाए हो वैसे अंबेडकर के नेतृत्व में हजारों अनुगामियों के साथ चवदार तालाब के पास आ पहुँचे। वे अब चवदार तालाब के किनारे खड़े थे। इतिहास का कलंक हमेशा के लिए मिटाने की पगडंडी पर जैसे अंगद लंका में पैर जमाकर खड़ा हो वैसे अंबेडकर चवदार तालाब के सीढ़ियाँ उतरकर नीचे गए, पानी पीया। उनके हजारों

अनुगामियों ने अनुशासित तरीके से उनका अनुसरण कर इतिहास की तवारीख में एक नया पृष्ठ जोड़ दिया।

यह कार्य पूर्ण हुआ, परंतु हिन्दुओं में रोष फैलाने के लिए कुछ लोगों के अफवाह फैला दी कि अस्पृश्य मंदिर में प्रवेश करने वाले हैं। यदि वे मंदिर में प्रवेश करेंगे तो मंदिर अपवित्र हो जाएगा। यह सुनकर हिन्दुओं ने जो हाथ में आया वो हथियार लेकर परिषद् के स्थान पर हमला किया। उन्होंने स्त्री, पुरुष, वृद्ध, बच्चे सभी को घायल करने के साथ रसोई के बरतन पर भी अपना गुस्सा उतारा। कुछ सपरिवार गाँव में खरीदी के लिए गए थे। कई लोगों ने मुसलमानों के घर में शरण लेकर अपनी जान बचाई। अंबेडकर डाक बँगले में रुके थे। उनको यह समाचार मिलते ही वे परिषद् स्थल पर आने के लिए निकले तो रास्ते में उनको घेर लिया गया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि हमारा मंदिर में प्रवेश करने का कोई विचार है ही नहीं। परिषद् स्थल पर जो घायल थे उनके प्राथमिक इलाज के लिए उनको डॉक्टर के पास ले जाया गया। डॉक्टर ने मरहमपट्टी करते हुए व्यंग्य किया कि लीजिए पानी पीना है ? तहसीलदार और पुलिस ने स्थल की मुलाकात ली। उनको अंबेडकर ने कहा, आप अन्य को काबू में लीजिए। मेरे लोगों को मैं संभाल लूँगा। परिषद् में हिस्सा लेने वाले अधिकतर पूर्व सैनिक के तौर पर कार्य करके चुके वैसे लोग थे। यदि वे चाहते तो आक्रमणकारियों को अच्छे से सबक सिखा सकते थे, परंतु उनको बाबासाहब ने शांत रहने के लिए कहा था। उन्होंने अपने एक मात्र नेता की बात का स्वीकार किया था। खुद ने दो दिन गाँव में ही सुरबा टिपणीस के घर रहकर सभी लोगों की जानकारी प्राप्त की। पुलिस ने ८ लोगों को गिरफ्तार किया और उनमें से पाशवी कृत्य करने वाले ७ लोगों को ६ जून, १९२७ के दिन ४ महीने की कड़ी कैद की सजा की गई। अंबेडकर ने स्वीकार किया कि, यदि न्यायालय के मुख्य अधिकारी सवर्ण हिन्दु होते तो शायद हमें न्याय नहीं मिला होता।" अंबेडकर के चवदार तालाब के महाड के संघर्ष का भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि सदियों से चली आ रही अस्पृश्यता की जंजीरों की पहली कड़ी तोड़ने का काम इस चवदार तालाब ने महाड के संघर्ष ने किया

है। इस संघर्ष से दूसरे एक बड़े परिवर्तन की शुरुआत हुई। सवर्ण के घर रोटी माँगने जैसी आदत का अस्पृश्य समाज ने त्याग करने की शुरुआत की। सार्वजनिक पाऊ पर पानी पीना यह गुनाह नहीं ऐसा भी वे लोग समझने लगे। साथ ही जीवनयापन के लिए जो मौका मिला, जो काम मिला वे करने लगे। इस तरह सत्याग्रह के दूरगामी परिणाम हिन्दुस्तान को मिले। उनके मन मस्तिष्क पर स्वावलंबन और संगठन सिद्धांत का गहरा प्रभाव हुआ। अर्थात् अस्पृश्यता निवारण के आंदोलन के इस सत्याग्रह से ५० वर्ष जितनी प्रगति अस्पृश्य समाज को हुई थी।

ब्रिटेन में हिन्दी विद्यार्थियों के साथ तथा दक्षिण आफ्रिका में हिन्दु लोगों के साथ अपमानजनक व्यवहार किया जाता था इसलिए ब्रिटेन तथा दक्षिण आफ्रिका के राज्यकर्ताओं का हिन्दु नेता विरोध करते थे। हिन्दी लोग अस्पृश्यों के साथ भारत में कैसा व्यवहार करते हैं, यह बात डॉ. बाबासाहब उनके ध्यान में लाते। उनकी विसंवादी पद्धति, स्वार्थवृत्ति, ढोंगीपन और निर्लज्जता को खुला करके उग्र भाषा में उनको धिक्कारते हुए कहते हैं कि, यह आपको सोचना चाहिए कि यह अत्याचार आप हमारे पर कितनी पीढ़ियों से करते आ रहे हैं।

महाड चवदार तालाब को सत्याग्रह के अंत में सवर्णों द्वारा तालाब के पानी को शुद्ध किया गया। उसके विरुद्ध घोषित किए गए दूसरे सत्याग्रह में कोई भी जुड़ सकता है ऐसी घोषणा की गई। साथ ही स्पष्टता भी की गई कि बिना ब्राह्मणत्व वाला ब्राह्मण इस सत्याग्रह में जुड़ सकता है। इसके लिए बहिष्कृत हितकारिणी सभा, दामोदर सभागृह, परेल, मुंबई के कार्यालय में अस्पृश्येतर जाति के लोग भी सत्याग्रह में जुड़ने के लिए नाम दर्ज करा सकें, एसी व्यवस्था खड़ी की गई थी।

४ अगस्त, १९२४ के दिन महाड नगरनिगम ने चवदार तालाब आम जनता के लिए खुला रखने का प्रस्ताव वापस ले लिया। जिसने अंबेडकर के निश्चय को और दृढ़ बना दिया। उन्होंने सार्वजनिक सभा बुलाकर सत्याग्रह की योजना बनाने के लिए एक समिति की घोषणा की। १५ सितंबर के दिन कार्यालय में हुई मीटिंग में २९ दिसम्बर १९२७ का दिन तय किया गया। इस तरह महाड सत्याग्रह का दिन जैसे-जैसे करीब आता गाया, वैसे-वैसे महाड के वातावरण में गर्मी आने लगी। जैसे

सत्याग्रह को सफल बनाने के प्रयास होने लगे वैसे ही उसे निष्फल बनाने के भी प्रयास होने लगे। परंतु वहाँ के युवा इस प्रयास को सफल होने नहीं देते थे। दोनों तरफ से वातावरण उग्र होने से जिलाधिकारी ने मध्यस्थता की। उन्होंने महाड की मुलाकात लेकर दोनों पक्षों को शांति से समाधान करने के लिए मिलने बुलाया। सत्याग्रह बंद रखने की स्पृश्य नेताओं की बात उन्होंने नहीं मानी। १२ दिसम्बर को स्पृश्य लोगों ने अंबेडकर सहित अन्य तीन लोगों पर कोर्ट में शिकायत दर्ज कराई। उनका कहना था कि अस्पृश्य लोगों को चवदार तालाब से पानी नहीं भरना चाहिए। ऐसी उनको हमेश के लिए चेतावनी दी। इन्हीं स्पृश्य समाज के नौ लोगों ने दूसरे दिन अस्पृश्यों के चवदार तालाब से पानी भरने के लिए मनाही हुकम प्राप्त करने के लिए दूसरा मुकद्दमा महाड के क्लास टू के न्यायलय में दाखिल किया। इस मुकद्दमा का फैसला १४ दिसम्बर, १९२७ के दिन वैद्य नामक न्यायाधीश ने दिया। फैसला ऐसा था कि जब तक दूसरा आदेश नहीं आता तब तक अस्पृश्य लोगों चवदार तालाब पर नहीं जाएँगे और वहाँ से पानी भी नहीं भरेंगे। अब अंबेडकर को दो मोर्चे पर लड़ना था। एक तरफ अस्पृश्यों के प्रश्न पर सरकार का मनाही हुकम तथा दूसरे मोर्चे पर सनातनी ब्राह्मणों का सामना करना था।

महाड सत्याग्रह में कोई भी हिन्दु पंडाल के लिए अपनी जमीन देने के लिए तैयार नहीं था। ऐसी परिस्थिति में मुस्लिम की जमीन किराए पर ली गई। व्यापारियों ने सत्याग्रह का बहिष्कार किया था। अत: दस दिन की सभी चीज-वस्तुओं को बाहर से लाना पड़ा। करीबन उस समय के एक हजार रूपये के तो चने मुरमुरे खरीदे। सरकार तथा सनातनी महाड में अड्डा जमाकर बैठ गए थे। १९ दिसम्बर को तो जिला के मुख्य अधिकारी भी महाड में ही आ गए। पुलिस ने चवदार तालाब को चारों तरफ से घेर लिया था। चवदार तालाब जैसे पुलिस शिविर बन गया था। २४ दिसम्बर को कुछ नेताओं के साथ डॉ. अंबेडकर मुंबई से बोट द्वारा परिषद् में हिस्सा लेने महाड जाने के लिए निकले। परिषद् में जाने के लिए निकलने से पहले अंबेडकर ने सार्वजानिक निवेदन किया कि "सत्याग्रह में हिस्सा लेकर अपने ऊपर लगे अस्पृश्यता के कलंक को धो डालो। संभव हो इस कार्य

के लिए उनको धन और अनाज देने चाहिए। जो अपने आपको कुलवान मानते हैं उनको सत्याग्रह में तुरंत उपस्थित हो जाना चाहिए।"

प्रत्येक बंदरगाह में सत्याग्रहियों व अंबेडकर की जयजयकार होती थी। उन्होंने बोट के द्वारा जल मार्ग से महाड पहुँचने का निश्चय किया। क्योंकि यदि जमीन मार्ग से जाते है तो मोटरवाले चक्काजाम करके उनको रोकने को तैयार थे। कोलमाड गाँव में रुककर दूसरे दिन सुबह ८ बजे सत्याग्रही सेना अपने सेनापति के मार्गदर्शन से फिर पुन: बोट में बैठी। २५ दिसम्बर, १९२७ के दिन दोपहर १२:३० बजे सेना दासगाँव पहुँची। वहाँ तीन हजार सत्याग्रही अपने सेनापति के दर्शन और उसके नेतृत्व में नया इतिहास बनाने के यज्ञ में आहुति देने के लिए तैयार थे। प्रचंड नारों के साथ सत्याग्रहियों का स्वागत किया गया। पुलिस सुपरिंटेंडेंट फेरंट और उनके अन्य अधिकारियों ने अंबेडकर को मिलकर जिलाधिकारी की चेतावनी का संदेश दिया। जिसके अनुसार अंबेडकर जिलाधिकारी को मिलने निकले। उन्होंने सत्यग्रहियों को पाँच-पाँच की पंक्ति में शांति से अनुशासित तरीके से महाड जाने के लिए कहा। दासगाँव से महाड की पाँच मिल का सफर जैसे प्रत्येक सत्याग्रही के लिए अपने जीवन को धन्य करने का मौका बन गया था। वे प्रचंड नारे लगा रहे थे। 'हर हर महादेव, महाड सत्याग्रह की जय, बाबासाहब अंबेडकर की जय' बोलते-बोलते परिषद् स्थल पर पहुँचे। उन सबका उत्साह और जोश से स्वागत किया गया। अनंतराय चित्रे ने रायगढ़ की तरफ निर्देश करके, सत्याग्रहियों के पास शिवाजी तथा जीजाबाई की जयजयकार करवाई। परिषद् के स्थल को, प्रत्येक स्तंभ को संतों महंतों के वाक्यों, सुभाषितों, कहावतों और सूत्रों से सजाये गए थे। पूरे पंडाल में सिर्फ एक तस्वीर महात्मा गाँधी की थी। अत: गाँधीजी को अंबेडकर तथा अस्पृश्य समाज मानसम्मान देते थे। जबकि इतिहास गवाह है कि डॉ. अंबेडकर द्वारा दूसरी गोलमेजी परिषद् में रखी गई, अस्पृश्य समाज की अलग मताधिकार की बात को हो या फिर अस्पृश्य समाज के लिए कुछ सोचने की बात हो तो उसमें गाँधीजी का वर्तन अस्पृश्य समाज की विरुद्ध ही रहा था।

दूसरी तरफ सेनापति अंबेडकर जिलाधिकारी को मिले। उनको विनती की गई

कि सरकार द्वारा रखे गए प्रतिबंध को सत्याग्रही तोड़े नहीं। अंबेडकर ने बहुमत से सत्याग्रह करने का निश्चित होता है तो जिलाधिकारी को परिषद में अपने मंतव्य देने का मौका देने का स्वीकार किया। वे परिषद् के पंडाल में गए। सबके साथ बैठकर भोजन किया। युद्ध मैदान में तब्दील चवदार तालाब पर कलम १४४ लागू थी और पुलिस का बंदोबस्त बढ़ा दिया गया। साढे चार बजे परिषद् की कार्यवाही शुरू हुई, शुभ संदेश का पठन किया गया। आठ से दस हजार श्रोताओं के सूत्रोच्चार और तालियों की प्रचंड गडगडाहट के बीच सेनापति अंबेडकर ने अध्यक्षस्थान से अपना प्रवचन शुरू किया। अंबेडकर ने अपना हाथ ऊपर किया और जैसे समग्र श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो गया हो वैसे शांत हो गया। उन्होंने कहा कि, "महाड का तालाब सार्वजनिक है। महाड के स्पृश्य इतने समझदार हैं कि वे खुद इस तालाब से पानी भरते हैं इसलिए किसी भी धर्म के लोगों को इस तालाब से पानी भरने की अनुमति देते हैं। उसके अनुसार मुसलमान, परधर्मी लोग भी इस तालाब से पानी भर सकते हैं। इंसान से भी जिसकी कीमत कम आंकी जाती हैं ऐसे पशु-पक्षी और जीवजंतु इस तालाब से पानी पीते हैं वे लोग उसका विरोध नहीं करते हैं। महाड के स्पृश्य लोग अस्पृश्यों को चवदार तालाब से पानी पीने नहीं देते हैं। उसका कारण है यदि अस्पृश्य पानी का स्पर्श करते हैं तो पानी में दुर्गंध आएगी या फिर वह पानी भाप बनकर उड़ जाएगा ऐसा नहीं परंतु इसका कारण यह है कि शास्त्रों द्वारा असमान बताई हुई जातियों को तालाब से पानी पीने की अनुमति देकर उनकी जाति बाकी अन्य जाति के समकक्ष हैं यह बात उनको मान्य रखने की इच्छा नहीं हैं। चवदार तालाब से पानी पीकर हम, अमर हो जायेंगे ऐसा भी नहीं हैं। आज तक हमने चवदार तालाब का पानी नहीं पीया है फिर भी आप या मैं मर नहीं गए हैं। अन्य इंसान की तरह हम भी इंसान ही हैं यह सिद्ध करने के लिए हमें तालाब पर जाना हैं मित्रों।"

सिर्फ रोटीबेटी या फिर बेटीबंदी दूर होती है तो अस्पृश्यता दूर हो जायेगी यह मानने की बेवकूफी मत कीजिएगा, बेटीबंदी को नष्ट करना ही हकीकत में समानता प्रस्थापित करने का मार्ग है। हम लोगों को कोर्ट-कचहरी या पुलिस में कहनेभर

को भी प्रवेश मिलता नहीं हैं। इसका कारण इसके लिए कानून में प्रतिबंध है एसा नहीं है। हिन्दु हमें अस्पृश्य मानते हैं, निम्न समझते हैं। इसलिए सरकार नौकरी में हमें प्रवेश दे नहीं सकती है। उसी तरह अस्पृश्यता की कारण अपने हाथों कोई माल-सामान खरीदेगा नहीं। अत: हम खुलकर व्यापार कर नहीं सकते हैं। यदि हिन्दु समाज को सामर्थ्यशाली बनाना है तो असमानता नष्ट करके हिन्दु समाज की रचना एक वर्ण और समानता के तत्वों की नींव पर करनी चाहिए। अस्पृश्यता निवारण का मार्ग ही हिन्दु समाज को सामर्थ्यशाली बनाने के मार्ग से भिन्न नहीं। अत: मैं कहता हूँ कि "अपना कार्य जितना स्वहित का है, उतना ही राष्ट्रहित का भी हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।"

दूसरे दिन बाबासाहब ने सत्याग्रह का प्रस्ताव पेश किया। उस प्रस्ताव को पेश करते वक्त उन्होंने कहा कि, "अपने स्वत्व के लिए और जन्मसिद्ध अधिकारों के लिए आप लड़ाई लड़ने को तैयार हो यह देखकर मुझे खुशी होती है। इस लड़ाई में एक ही बात ध्यान रखने जैसी है कि, कोई भी स्थायी हित सिद्ध करना हो तो मुसीबतों को सहन करना पड़ेगा। बिना तपश्चर्या किसी को भी वरदान प्राप्त होने की गवाही पुराण या इतिहास तक सिमित नहीं। सुख हमेशा दु:ख के अंत में ही प्राप्त होता है। अत: निषेधाज्ञा का भंग करने के लिए कारावास में जाने का वक्त आए तो उसमें आपको पीठ नहीं दिखानी चाहिए। कैद में रखने के बाद किसी को भी क्षमायाचना करनी नहीं चाहिए। अपना मार्ग न्याय का है ऐसा आपको लगता हैं और यदि यातनाओं को सहने के लिए तैयार हों तो ही सत्याग्रह के लिए सहमति दीजिए।"

बारह लोगों ने प्रस्ताव को समर्थन दिया तो आठ लोगों ने विरोध किया। आखिर में बहुमत से प्रस्ताव पारित किया। इसलिए अंबेडकर ने पुन: कहा कि, "मैं कहता हूँ इसलिए कैद में जाकर फँसने वालों की मुझे जरूरत नहीं है। कैद में जाकर भी मेरी अस्पृश्यता दूर करूँगा ऐसा कहने वाले लोगों की मुझे जरूरत है। इस तरह स्व को अर्पण करने के लिए कितने लोग तैयार हैं, यह निश्चित होना चाहिए। जिलाधिकारी के प्रवचन को सुनने के बाद आपका संकल्प कायम रहे

तो सत्याग्रह करेंगे।"

दोपहर की कार्यवाही पूर्ण होने तब तक ब्राह्मणेतर नेता भी पंडाल में आए और सत्याग्रह को समर्थन दिया था। सत्याग्रह में हिस्सा लेने वालों में तकरीबन चार हजार लोगों ने अपने नाम दर्ज कराए। कुछ लोगों ने तो अपना गाँव छोड़ने से पहले घोषणा की थी कि, "चवदार तालाब जाएँगे, नहीं तो जेल में जाएँगे, ऐसा नहीं हुआ तो गाँव में वापस आकार अपना मुँह नहीं दिखाएंगे।"

जिलाधिकारी सभा पंडाल में आए। उन्होंने परिषद् को संबोधित करते हुए कहा, "सरकार आपकी माँ-बाप है। जब तक न्यायालय में मुकद्दमे का फैसला नहीं आता तब तक कोई झगड़ा मत कीजिएगा।" कुछक ने समर्थन दिया और कुछक ने विरोध करते हुए प्रतिनिधियों को नीचे बिठा दिया। माहौल गरम हो रहा था। इसी बीच अंबेडकर ने प्रस्ताव पर चर्चा स्थगित रखी। दूसरे दिन वह चर्चा करने की घोषणा की।

रात को नेताओं की बैठक में जब तक न्यायालय के मुकद्दमे का अंत नहीं आता तब तक सत्याग्रह स्थगित रखने का फैसला लेने के बावजूद चवदार तालाब के पास जुलूस निकालकर परिषद् समेट लेने का फैसला लिया गया। सुबह जिलाधिकारी को जानकारी देते हुए यह प्रस्ताव अंबेडकर ने स्वयं पेश किया। परिषद् में फैले असंतोष को दूर करने के लिए अंबेडकर ने बताया, "हमारे में निश्चयात्मक स्थिति नहीं थी। इस कमी को आप लोगों ने दूर किया है। जो समाज समर्पण करने को तैयार होता है उसकी प्रगति हुए बिना नहीं रहती है। आप सरकार का कानून तोड़ने को तैयार हो इसलिए तो आप बहादुर हो। इससे बेहतर और क्या बात हो सकती है ? लेकिन आज हमें इस शक्ति का उपयोग नहीं करना है। अपना सत्याग्रह सरकार विरुद्ध होगा। सरकार सहायता देने का दिलासा देती है, तो हमारा सरकार विरुद्ध सत्याग्रह करना योग्य नहीं है। दूसरा यह है कि महात्मा गाँधी का सत्याग्रह विदेशी सत्ता के खिलाफ था, इसलिए अस्पृश्य हिन्दुओं ने उनको बहुत सहयोग दिया। हम स्पृश्य हिन्दुओं के विरुद्ध होने की वजह से स्पृश्य हिन्दुओं का साथ-सहयोग मिलेगा नहीं।" यह भी याद रखना पड़ेगा।

"आप सत्याग्रह स्थगित करोगे तो आपकी मानहानि होगी, ऐसा मानिएगा नहीं। मैं सरकार से नहीं डरता हूँ। मुझे तो तीन प्रकार की सजा होगी – कानून तोड़ने के लिए, प्रतिबंध का भंग करने के लिए और वकील के व्यवसाय के नियमों के विरुद्ध व्यवहार करने की। इससे मुझे एतराज नहीं है। हम आज यह सत्याग्रह स्थगित करे, यह मैं कहता हूँ ! फिर भी तालाब कब्जे में लिए बिना नहीं रहना चाहिए जैसा आपका संकल्प है वैसे मेरा भी है। यह संकल्प सिद्ध किए बिना मैं शांति से बैठूंगा नहीं, यह भी ध्यान में रखिएगा।

कुछ लोगों को फैसला पसंद नहीं आया। इसलिए उदासीनता की लहर फैल गई। नेताओं ने कदम पीछे खींच लिए हैं ऐसी छवि बन गई। लेकिन सबके पास फैसला स्वीकारने के अलावा और कोई चारा नहीं था।

साढ़े दस बजे सभी प्रतिनिधिओं का एक जुलूस निकला। झंडे, ढोल नगारे, सूत्रोच्चार और जयजयकार की प्रचंड आवाजों से वातावरण गरम बना दिया गया। जुलूस ने तालाब की चारों ओर चक्कर लगाया, डेढ़ घंटे में जुलूस वापस आया और परिषद् के पंडाल में आकर खत्म हुआ। आखिर में सत्यग्रहियों की जीत हुई। कोर्ट द्वारा सत्याग्रहियों के पक्ष में फैसला आया। सनातनियों के लिए यह एक बहुत बड़ी हार थी। डॉ. बाबासाहब की समझदारीभरी योजनाओं की जीत हो रही थी।

सार्वजनिक गणेशोत्सव में गणेशपूजा

सन १९२८ में मुंबई के सार्वजनिक गणेशोत्सव में अस्पृश्य भी पूजा कर सके एसा समझौता हुआ था। लेकिन १९२९ में अस्पृश्यों को गणेश मूर्ति की पूजा की लड़ाई फिर से नए तरीके से आरंभ करनी पड़ी। क्योंकि दादर गणेशोत्सव के अध्यक्ष ने सोशल सर्विस लीग को बताया कि, "हमने पिछले साल लिए हुए फैसले को रद्द कर दिया है इसलिए किसी भी अस्पृश्य को मूर्ति के स्थापना स्थान पर, उस खंड में या फिर खंड के पास नहीं जाने दिया जाएगा।" इस तरह के फैसले से गणेशचतुर्थी के दिन माहौल तंग बन गया। बाबासाहब, बोले, प्रबोधकर ठाकरे, अन्य स्थानिक नेता एकत्र हुए और बातचीत द्वारा प्रश्न का समाधान लाने के प्रयास

कर रहे थे। सनातनी नेता जावले उनके साथ समझौते के लिए बातचीत कर रहे थे। अंबेडकर ने अस्पृश्यों के लिए सिर्फ मानवीय अधिकारों को प्राप्त करने की बिनती की थी। इस समझौते की बातचीत का कोई परिणाम आएगा ऐसा किसी भी तरह से दिखाई नहीं दे रहा था। परिस्थिति विस्फोटक बनती जा रही थी। पंडाल के बाहर प्रवेश लेने के लिए अस्पृश्यों की संख्या बढ़ती जा रही थी। जब सनातनी नेताओं ने देखा कि अब परिस्थिति अपने पक्ष में नहीं है तब गणेश पूजा के लिए दोपहर तीन बजे अस्पृश्यों को मंजूरी दी गई थी।

नासिक सत्यागह

२ मार्च, १९३० के दिन अंबेडकर ने दलित हिन्दुओं के सामाजिक स्वातंत्र्य के लिए मंदिर-प्रवेश की लड़ाई सवर्ण हिन्दुओं की इज्जत समान नासिक में आरंभ की। यह लड़ाई धर्मांधता के विरुद्ध थी। नासिक के लोकप्रिय पंचवटी के प्रसिद्ध कालाराम मंदिर के व्यवस्थापकों को थोडे समय के अंदर कथित अस्पृश्य हिन्दुओं के लिए मंदिर के दरवाजे खोल देने हैं, अन्यथा वे मंदिर-प्रवेश के लिए सत्याग्रह करेंगे। परिषद् का स्थल निश्चित हुआ और २ मार्च, १९३० के दिन बहुत बड़ी परिषद् का आयोजन हुआ। जिसमें सत्याग्रह की कार्य पद्धति को लेकर चर्चा हुई। समग्र गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक से करीबन १५ हजार सत्याग्रही एकत्र हुए। दोपहर ३ बजे १५ हजार सत्याग्रहियों का एक मील लंबा जुलूस राममंदिर की ओर अनुशासित तरीके से पंक्ति में कूच करने के लिए सज्ज हुआ। आरंभ में बैण्ड, बासुँरी, शरणाई, रणसिंघा की जयघोष में सत्याग्रही अपने जयघोष के सुर मिलाते थे। वादकों के पीछे बालवीरों ने, उनके पीछे मातृशक्ति ने मोर्चा संभाला था। उनके बाद वैरागी साधु तथा वारकरी समाज के कार्यकर्ता, श्री राम जय राम जय जय राम की धुन लगा रहे थे। जुलूस कालाराम मंदिर के पास पहुँचा। नेताओं को जिलाधिकारी तथा पुलिस ने बताया कि मंदिर के सभी दरवाजे बंद हैं। जुलूस शिस्तबद्ध गोदावरी घाट की ओर घूमा और बहुत बड़ी सभा में तबदील हो गया।

रात को ११ बजे कार्यकर्ताओं और नेताओं की पुन: बैठक हुई। जिसमें निश्चित

किया गया कि मंदिर के समग्र दरवाजों पर सत्याग्रह किया जाए। दिनांक ३ मार्च, १९३० के दिन सुबह प्रथम सत्याग्रही टीम १२५ पुरुषों एवं २५ महिलाओं के साथ मंदिर के चारों दरवाजों के सामने बैठक बनाकर बैठी थी। ८ हजार सत्याग्रही हिस्सा लेने के लिए आदेश का इंतजार कर रहे थे; तो पास में ३ हजार सत्याग्रही खडे थे। हजारों सैनिकों, बंदूकधारी, जिलाधिकारी श्री गार्डन और दो फर्स्ट क्लास मैजिस्ट्रेट सच्चे मन से परिस्थिति काबू बाहर न चली जाए और नियंत्रण रहे इसके लिए फर्ज अदा कर रहे थे। पुलिस सुपरीटेंडेंट रेनोल्ड्स ने अपना तंबू मंदिर के पास बना दिया था।

वातावरण तंग बनता जा रहा था। रात को शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि के नेतृत्व में परिस्थिति के संबंध में विचारविमर्श करने के लिए सभा बुलाई थी। तो सनातनियों ने पत्थर मारकर इस सभा को मिलने से पूर्व ही बर्खास्त कर दिया। ९ अप्रेल तक सत्याग्रह जारी रहा। रामनवमी के दिन प्रभु रामचंद्र का रथ निकलने वाला था। सवर्ण नेता और सत्याग्रही ने बीच दोनों पक्षों के मजबूत व्यक्ति प्रभु राम का रथ खींचे, ऐसा समाधान किया। अंबेडकर अपने साथ चुनिंदा सत्याग्रहियों को लेकर मंदिर के पास आए, परंतु पूर्व आयोजन के अनुसार सवर्ण हिन्दुओं ने रथ को दूसरी दिशा में घुमा दिया। वो रास्ता सँकरा और चारों तरफ कंटीला था। इसलिए पुलिस द्वारा रथ को मार्ग में ही रोका गया। सत्याग्रही रथ के पीछे दौड़े तो उनको पत्थर मारे गए। अंबेडकर को इस पत्थर की मार से बचाने के लिए कार्यकर्ताओं को बहुत तकलीफ उठानी पडी। अनेक लोग घायल हुए थे। समग्र शहर का वातावरण बहुत तंग बन गया। मंदिर-प्रवेश सत्याग्रह के कारण अस्पृश्यों को बहुत कुछ सहन करना पड़ा। बच्चों को स्कूल से निकाल दिया गया, अनेक रास्ते बंद हो गए। आवश्यक चीज-वस्तुएँ देने के लिए व्यापारी मना करने लगे, परंतु समग्र अस्पृश्य वर्ग को अपने नेता पर पूरा विश्वास था कि अंबेडकर के नेतृत्व में लड़ाई सफल होने ही वाली है। आशा की किरण सभी का जोश सहेजकर बढ़ा रहा था। बहुत कुछ सहन किया, त्याग किया लेकिन अंबेडकर के नेतृत्व में रही आस्था और सत्याग्रह को नहीं छोड़ा। कितनों ने थक-हारकर इस्लाम धर्म स्वीकार करने की

बात की तब अंबेडकर ने उनको ऐसा न करने का आदेश दिया। "सनातनी हिन्दुओं का हृदय परिवर्तन करने का उनको मौका दीजिए।" ऐसी विनती की गई। नवकोट नारायण बिरला ने मुंबई में अंबेडकर के साथ मुलाकात की। नासिक के अस्पृश्यों ने सभी की बिनती को मान देकर सत्याग्रह स्थगित किया। डॉ. मुंजे आए परंतु मंदिर-प्रवेश का मामला अभी तक वैसा का वैसा ही था। इसलिए मंदिर-प्रवेश की लड़ाई पुन: शुरू हो गई थी जो अक्टूबर, १९३५ तक चलती रही।

"किसी एक आदमी का सत्याग्रह है या दुराग्रह वह इस निश्चय की सिद्धि के लिए उपयोग में लिए गए साधनों पर अवलंबित हैं। वह संपूर्ण कार्य की नैतिकता पर अवलंबित है। वह कार्य यदि सत्कार्य है तो इस प्रकार के निश्चय को सत्याग्रह ही कहना चाहिए, यदि वह असत्य है तो उसको दुराग्रह कहना चाहिए।"

– डॉ. भीमराव अंबेडकर

डॉ. अंबेडकर, सी. के. बोले, डॉ. सविता अंबेडकर, बाबू जगजीवनराम और अन्य

डॉ. अंबेडकर और आजादी का संग्राम

सायमन कमीशन ३ फरवरी, सन १९२८ और १९१९ के सुधार किए गए कानूनों के अनुसार भारतीयों के प्रश्नों पर पुन: विचार करने के लिए सायमन कमीशन की रचना की गई थी। सर जॉन सायमन इस मंडल के अध्यक्ष थे। जिसमें उमराव सभा के दो और लोकसभा के चार सभासद थे। इस कमीशन का मुख्य उद्देश्य भारतीयों की ब्रिटिश शासन के विरुद्ध की धार को कुंद करना था। ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की थी कि सायमन कमीशन की सिफारिश के अनुसार एक योजना बनेगी, यह योजना दोनों सभागृहों की संयुक्त समिति समक्ष विचारणा हेतु रखी जाएगी जिसमें भारतीय नेता साक्षी के रूप में उपस्थित रहेंगे।

परंतु सायमन कमीशन में कोई भारतीय सदस्य न होने के कारण इस कमीशन का समग्र देश में उग्र विरोध हुआ और सायमन कमीशन ने जहाँ-जहाँ यात्रा की वहाँ-वहाँ उनको काला झंडा दिखाकर 'सायमन गो बेक' के पोस्टर दिखाए गए। परिणाम स्वरूप भारतीयों का विरोध जानकार सायमन कमीशन वापस चला गया। १९२८-२९ में सायमन कमीशन पुन: भारत आया तब भी उसको फिर विरोध का सामना करना पड़ा। ब्रिटिश अधिकारी द्वारा लाहौर में हो रहे लाठीचार्ज में लाल, पाल, बाल की त्रिपुटी से देशभक्त लाला लजपतराय घायल हुए थे और फिर कुछ दिनों बाद वे शहीद हो गए। जब अंबेडकर लंदन थे तब उनका और लालाजी का संपर्क हुआ था। उनको लालाजी के व्यक्तित्व, त्याग और देशभक्ति के लिए बहुत मान-सम्मान था। उन्होंने लाला लाजपतराय को श्रद्धांजलि अर्पण करने लिए एक सभा बुलाई। बहुत श्रद्धा, आदर व प्रेमसहित श्रद्धांजलि अर्पित की।

सन १९२८ के फरवरी में मोतीलाल नेहरु के नेतृत्व में कांग्रेस द्वारा सर्वपक्षीय बैठक बुलाई गई। भारतीय राज्य संविधान की रचना के लिए एक समिति बनाई गई थी। जिसमें दलित समाज के प्रतिनिधित्व विषयक स्वतंत्र आरक्षण मतदार संघ अथवा सदस्यों की नियुक्ति के लिए कहा गया था। यह दोनों मार्ग दोषपूर्ण

हैं। इसलिए मुलभूत अधिकारों का घोषणापत्र दलितों के लिए सर्व श्रेष्ठ रास्ता है। दुःख की बात तो यह है कि कांग्रेस कार्यकारी मंडल भी अस्पृश्यता के चश्मे से ही बहिष्कृत समाज को देखती थी। अत: सर्वपक्षीय परिषद् में अंबेडकर के नेतृत्व की बहिष्कृत समाज की किसी भी संस्था को निमंत्रण नहीं दिया गया था। इसके अलावा सभी धर्म, संप्रदाय की संस्थाओं को निमंत्रण दिया गया था। अंबेडकर के विचार नेहरू समिति के लिए स्पष्ट थे। उन्होंने कहा था कि, नेहरु समिति की सिफारिश "हिन्दुओं के लिए भय एवं हिन्दुस्तान के लिए संकट है।" उनका स्पष्ट अभिप्राय था कि मोतीलाल नेहरु मुसलमानों को लाड़-प्यार करते हैं जबकि अस्पृश्य समाज के प्रति उनका जरा भी प्यार नजर नहीं आता था।

सायमन कमीशन के साथ काम करने के लिए केंद्र सरकार ने एक अखिल भारतीय समिति की रचना की थी। प्रत्येक प्रांतीय कानून अनुसार हर एक प्रांतीय कानून आयोग ने अपनी एक समिति बनाई थी। मुंबई प्रांतीय समिति में ३ अगस्त, १९२८ के दिन अन्य सभ्यों के साथ अंबेडकर की भी नियुक्ति हुई। यह उनके अपने विचारों को पेश करने का एक मौका था। उन्होंने यह भूमिका बखूबी निभाई। सायमन कमीशन के साथ सहयोग बनाने से कांग्रेस के कलेजे पर साँप लौट गए और उसने अंबेडकर जैसे बड़े देशभक्त पर अंग्रेजों के पिठ्ठू होने के, विश्वासघाती जैसे आधारहीन और गलत आरोप लगाए थे।

दलित वर्ग की १८ संस्थाओं ने सायमन कमीशन समक्ष प्रतिनिधित्व करके दलितों की बातों को पेश किया। जिसमें १६ संस्थाओं ने अलग तथा स्वतंत्र मतदाता संघ की माँग की। यह माँग उन्होंने बहिष्कृत हितकारिणी सभा के बैनर तले पेश की। जिसमें संयुक्त मतदार संघ तथा दलितों के लिए आरक्षण की माँग थी। उन्होंने बहिष्कृत हितकारिणी सभा की ओर मुंबई कानून समिति की १४० में से २८ जगह की माँग की। साथ ही मंत्रिमंडल में भी अस्पृश्यों को शामिल करना चाहिए, देश के भावी संविधान में दो कलमों को शामिल करने की माँग की। प्रथम कलम में प्रांत की कमाई पर दलित वर्ग का अग्रिम अधिकार होना चाहिए एवं दूसरी कलम के अनुसार पायदल (भूमिसेना), नौकादल (नौसेना), हवाईदल में

दलितों को चयन करने का अधिकार होना चाहिए। अंबेडकर ने सायमन कमीशन को ऐसी चेतावनी दी कि बहुसंख्य हिन्दु समाज से कुछ सज्जन हिन्दुओं को ध्यान में रखकर सर्व हिन्दु समाज के विषय में किसी भी तरह अभिप्राय नहीं बनाना चाहिए।

७ मई, १९२९ के दिन सायमन कमीशन ने सिफारिश की थी कि दलित वर्ग के लिए अलग मतदार संघ न बनाकर सीटें आरक्षित रखनी चाहिए। अंबेडकर ने समिति के रिपोर्ट पर हस्ताक्षर न करके अपने मंतव्यों और सिफारिश का एक अलग आवेदनपत्र १७ मई, १९२९ के दिन पेश किया। उन्होंने अपने आवेदनपत्र में कुछ मामलों की बहुत ही सूक्ष्मता से स्पष्टता की। उन्होंने प्रादेशिक मतदार संघ और स्वतंत्र मतदाता संघ दोनों का विरोध किया। उनके मत से ये दोनों परस्पर विरोधी सीमा हैं उन्होंने लिखा हैं कि लोकशाही राज्य पद्धति को स्वावलंबी बनाने के लिए जिन योजनाओं का अवलम्बन किया जाएगा उन सभी में से यह दो वस्तुएँ को बाकी रखनी चाहिए। इसके अलावा भी मार्ग नहीं निकलता है तो मध्यवर्ती मार्ग के रूप में आरक्षित बैठकों वाली संयुक्त मतदाता पद्धति हो सकेगी। उनके द्वारा पेश किए गए मुद्दों में मंत्रिमंडल के विषय में भी स्पष्टता की गई है। जिसका अस्वीकार करने के कारण आज भी भारत अनेक समस्याओं का सामना कर रहा है। मसलन उन्होंने कहा था कि, "प्रांतीय कार्यकारी मंडल के पास संपूर्ण सत्ता होनी चाहिए। मंत्रिमंडल में जातिगत प्रतिनिधित्व नहीं होना चाहिए, गैरजिम्मेदार कार्य के लिए मंत्री न्यायालय की जांच समिति की निगरानी में होना चाहिए, मंत्रियों की कानून आयोग समक्ष अधिकृत तहकीकात की व्यवस्था होनी, कार्यकारी मंडल का प्रमुख मंत्री होना चाहिए, वह राज्यपाल न होना चाहिए। प्रौढ़ मतदान पद्धति का स्वीकार, कानून आयोग का सदस्य-पद चुनाव के तत्व आधारित, जातिगत और पक्षीय मतदाता संघ को दूर करना, मुसलमान, अपृश्य और एंग्लोइंडियन के लिए आरक्षण, मुंबई कानून पंच के सदस्यों की संख्या १४० होनी चाहिए, जिसमें १५ प्रतिशत दलितों के लिए होनी चाहिए आदि।

प्रथम गोलमेजी परिषद्

सन १९३० के मई महीने में सायमन कमीशन की रिपोर्ट घोषित हुई। उसमें भारतीय राष्ट्रवाद के ध्येय को नजरअंदाज किया गया। कमीशन ने भारतीय नेताओं द्वारा की गई मांगों की अवज्ञा की। भारत के चुनाव में जातिगत मतदाता संघ चालु रखकर नेहरु समिति की रिपोर्ट सर्वसमंत न होने का बहाना निकाला। हिन्दुओं की मध्यवर्ती विधिमंडल में २५० में से १५० बैठक दी गई। अंग्रेज चालबाजी कर गए। अस्पृश्यों को आरक्षण बैठक दी गई, लेकिन उम्मीदवारी दर्ज करने के विषय में अंग्रेजों ने सत्ता राज्यपाल के हाथ में रखी थी।

सन १९३० के मई महीने में सायमन कमीशन का अहवाल आया। जिसके अंतर्गत उसके द्वारा की गई शिफारिशों के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने लंदन में गोलमेजी परिषद् बुलाई। जिसमें ब्रिटिश लोकसभा के अलग-अलग पक्षों के प्रतिनिधियों के साथ भारत के संविधान के विषय में विचार-विमर्श होने वाला था। जिसमें उपस्थित रहने के लिए मिले हुए निमंत्रणों में एक ऐतिहासिक घटना घटी थी। ब्रिटिश सरकार भारत के नेताओं को लंदन में हो रही गोलमेजी परिषद् में उपस्थित रहने के लिए निमंत्रण देते हैं। परंतु जिस अस्पृश्य समाज को भारतीय राजनीति और समाजनीति के नक्शे भी में कोई महत्त्व नहीं था उस अस्पृश्य समाज के डॉ. अंबेडकर तथा मद्रास के रावबहादुर श्रीनिवास को सरकार सामने चलकर उपस्थित रहने का निमंत्रण देती है। ६ सितम्बर, १९३० के दिन अंबेडकर को गवर्नर जनरल की तरफ से भेजा गया निमंत्रण मिला। दिनांक ४ अक्टूबर, १९३० के दिन अंबेडकर ने लंदन पहुँचकर अस्पृश्यों के प्रश्नों के विषय में इंग्लैंड में सभी पक्ष के नेताओं के साथ चर्चा की।

१२ नवम्बर, १९३० के दिन गोलमेजी परिषद् का प्रारंभ हुआ। यह परिषद् भारतीय संविधान तैयार करने की संविधान समिति नहीं थी, लेकिन भारतीय नेताओं और भारतीय संस्थानिकों को विदेश जाकर ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के साथ विचार विनिमय करने के लिए बुलाई गई परिषद् थी। १७ से २१ नवम्बर के दौरान सेंट जेम्स रजवाडा में आयोजित परिषद् में जिस नेताओं ने प्रभावी व्याख्यान करके अपने पक्ष को रखा था, उसमें से एक अंबेडकर थे। सभी राजा, बड़े नेता, ब्रिटेन

के प्रसिद्ध व्यक्तियों के बीच अंबेडकर बोलने के लिए खड़े हुए। उन्होंने सभा पर नजर घुमाई तो सभा में दिग्गज बैठे थे। जिसमें वडोदरा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड, जिन्होंने उनको आर्थिक सहयोग दिया था; उनके गुरु के समान श्री जोशी, भारत के अन्य रजवाड़ों के राजर्षि बैठे थे। उन्होंने कहा कि, "जिस लोगों की परिस्थिति गुलामों से भी बदतर है और जिनकी जनख्या फ्रांस देश की जनसंख्या जितनी है, ऐसे भारत के एक पंचमांश लोगों की शिकायतें मैं परिषद् के समक्ष पेश करता हूँ। दलितों की माँग है कि "भारत सरकार लोगों से, लोगों के लिए चलाई गई और लोगों की होनी चाहिए। लोगों का राज होना चाहिए।" परिषद् इस वाक्य को सुनकर चकित रह गई। सभी आश्चर्य चकित हो गए। उन्होंने आगे कहा कि, "अस्पृश्य वर्गों में आए इस आश्चर्यजनक बदलाव के लिए ब्रिटिश शासन की नीति जिम्मेदार है। ब्रिटिश राज्य आने से पूर्व हमारी जो दयनीय स्थिति थी, उसमें जरा भी फर्क पड़ा नहीं है। हम सिर्फ मौके का इंतजार कर रहे हैं। ब्रिटिश शासन से पूर्व हमें कुएं से पानी भरने नहीं दिया जाता था। ब्रिटिश सरकार ने क्या हमें यह न्याय दिलाया ? ब्रिटिश शासन के पूर्व हमें पुलिस दल में प्रवेश नहीं मिलता था। ब्रिटिश सरकार क्या आज भी हमें प्रवेश देती है ? ब्रिटिश सरकार पूर्व हमें सेना में नौकरी नहीं मिलती थी। क्या आज ब्रिटिश सरकार हमें सेना में प्रवेश देती है ? इन सभी प्रश्नों के उत्तर नकारात्मक हैं। हमारे दुःख बहते जख्म जैसे हैं। ब्रिटिश शासन आरंभ होने के सवा सौ वर्ष बीत, फिर भी हमारे दुःख दूर नहीं हुए हैं। वह जैसे थे वैसे ही हैं। हमारे प्रश्न वैसे के वैसे ही पड़े हैं।"

"ऐसी सरकार किस काम की ?" यह मुँहतोड सवाल पूछते ही जैसे किसी शेर ने दहाड़ दी हो एसे शोरगुल मच गया। उनका व्याख्यान अभी पूरा नहीं हुआ था। उन्होंने आगे कहा कि, "भारत के पूँजीवादी लोग मजदूर को लघुत्तम वेतन नहीं देते हैं। जमीनदार किसान वर्ग का शोषण करते हैं। इस बात की सरकार को जानकारी है। यह सामाजिक दुष्कृत्यों को सरकार नष्ट नहीं करती है। सामाजिक और आर्थिक जीवन में चल रहे इस शोषण के कानून में सुधार लाकर नष्ट हो सके एसा है। नष्ट करने का अधिकार और शक्ति सरकार के हाथ में होने के बावजूद,

सिर्फ "यदि हम हस्तक्षेप करेंगे तो प्रतिकार होगा।" इस भय से सरकार उसमें सुधार नहीं करती है। हमको एसी सरकार चाहिए जो देश का हित निष्ठापूर्वक करे और न्याय तथा महत्त्व के एसे सामाजिक और आर्थिक प्रश्न किसी की भी शर्म किए बिना हल करे।"

उन्होंने कहा कि, "संविधान बनाते समय परिषद् को एक बात ध्यान रखनी चाहिए। भारतीय समाज में मान-सम्मान की ऊपर चढने वाली सीढ़ी और तिरस्कार की नीचे उतरने वाली सीडी-जातियों के चढ़ते स्तर यह सभी समता और बंधुभाव के लिए कोई गुंजाइश नहीं रखते हैं। उच्च वर्ग से राजकीय आंदोलन में हिस्सा लेने वाला बुद्धिशाली नेताओं ने अपनी जातिगत और संकुचितवृत्ति का त्याग नहीं किया है। इसलिए हमारे दुःख हमारे अलावा कोई नहीं दूर कर सकेगा। हमारे हाथ में राजकीय सत्ता नहीं आती तब तक यह संभव नहीं है। इस चमत्कार की प्रतीक्षा करते-करते दलित थक गए हैं।" भारतीय राजनीति के तत्कालीन प्रवाह पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने परिषद् में चेतावनी दी कि, "वर्तमान देश के विस्फोटक वातावरण के कारण बहुसंख्यक लोगों को जिस प्रकार का संविधान स्वीकार्य हो सकता है, ऐसा संविधान बनाने का कोई अर्थ नहीं है। यह बात परिषद् में बैठे कई सभ्यों के ध्यान में आई हो ऐसा लगता नहीं है, इस बात का मुझे दुःख होता है, आप तय कीजिए और भारतीय यह मान जाएंगे ऐसा यह समय नहीं है। यदि संविधान अमल में रखना हो तो लोगों की सहमति ही नए राज्य संविधान की कसौटी है। तर्कशास्त्र का संयोग नहीं हैं।

प्रथम गोलमेजी परिषद् में अंबेडकर के व्याख्यान के कारण उनको दुगनी प्रसिद्धि मिली। वे अंतरराष्ट्रीय फलक पर ब्रिटेन में भी प्रसिद्ध हुए। उनकी सफलता का थर्मोमीटर यह है कि गोलमेजी परिषद् में व्याख्यान सुनने के पश्चात् श्रीमंत महाराज सयाजीराव गायकवाड ने (अपनी पत्नी के साथ बात करते हुए) कहा कि, "अपने सभी प्रयास और पैसे सार्थक हुए। आज एक महान कार्य में मिली सफलता देखकर मुझे खुशी हुई है।"

जुलाई, १९३१ में सरकार द्वारा दूसरी गोलमेजी परिषद् में हिस्सा लेने वाले

नामों की घोषणा हुई। जिसमें अंबेडकर के साथ शास्त्री, सप्रू, जयकर, सेतलवाड, मालविया, सरोजिनी नायडू, मिर्जा इस्माइल, महम्मद अली जीना, रामास्वामी मुदलियार इत्यादि थे। प्रथम गोलमेजी परिषद् में अंबेडकर का चयन संविधान समिति में नहीं किया गया था। लेकिन इस समय ब्रिटिश लोगों के विरोध होने के बावजूद उनका चयन संविधान समिति में हुआ। नतीजन समग्र भारत में वे अभिनंदन के पात्र बने थे। यह उनके व्यक्तित्व की ब्रिटेन द्वारा एक प्रकार से स्वीकृति थी, अत: उनके विरोधी अखबारों को भी इस बात की सुध लेनी पड़ी। इतना ही नहीं भारत में पहली तथा दूसरी गोलमेजी परिषद् के बीच के समय में उनके द्वारा लड़े गए मुकद्दमे, लिखे गए लेख आदि के माध्यम से अंबेडकर की बहुत वाह-वाही हुई। शायद एक अस्पृश्य व्यक्ति का समाज द्वारा इतने बड़े पैमाने पर हुई प्रशंसा का भारत में यह प्रथम प्रसंग था।

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने अपने समाज को मंत्र दिया – "स्वयं का आत्मोद्धार खुद ही करना है।" वे कहते थे कि, गुलाम गुलामगीरी विरुद्ध जब तक बगावत नहीं करेंगे तब तक उनका उद्धार होने वाला नहीं हैं, गुलाम को गुलामगीरी का एहसास करा दो तो वो खुद ब खुद बगावत करेगा। इसलिए वे संदेश देते थे कि, 'आत्मोद्धार के लिए लड़ते रहो।' उनके तीन सूत्र थे "स्वाभिमान, स्वावलंबन और आत्मोद्धार।

डॉ. अंबेडकर और कांग्रेस

४ अक्टूबर, १९३० को अंबेडकर लंदन गोलमेजी परिषद् में जाने के लिए निकले। उस समय की स्थिति का चित्र देखें तो ज्ञात होता है कि, भारत में असहयोग आंदोलन पूरे जोश के साथ चल रहा था। कांग्रेस को एक तरफ रखकर इतर भारतीय नेता राजकीय प्रश्न हल करने के लिए ब्रिटिशरों को साथ दे रहे थे। जो कांग्रेस को पसंद नहीं था। यह देखकर कांग्रेस के नेता भड़क उठे थे। आजादी प्राप्त करने के उद्देश्य के साथ लड़ने वाले कांग्रेसेतर लोग कांग्रेस से डरते थे। अंबेडकर ने एडन से अपने निजी विश्वासपात्र और संस्था के मंत्री श्री शिवतरकर को दिए हुए सुझाव काफी कुछ कह जाते हैं।

कोई भी नेता आजादी के आंदोलन में कांग्रेस पक्ष के लोगों से भी ज्यादा तन, मन धन से संघर्षरत हो लेकिन कांग्रेस के साथ सहमत नहीं है इसलिए उसके लिए यह समय बहुत प्रतिकूल था। कांग्रेस के नेता और कार्यकर्ता प्रगतिशील पक्ष के नेताओं से द्वेष करते थे। इतना ही नहीं देशाभिनामी लोग सिर्फ और सिर्फ कांग्रेस में ही है अन्य संगठनों या पार्टी में नहीं है। ऐसा सर्वसाधारण अहंभाव कांग्रेस में व्याप्त था। जिस नेताओं को गोलमेजी परिषद् में उपस्थित रहने के लिए निमंत्रण दिए वे कांग्रेस के अलावा सभी नेता ब्रिटिश सरकार के पिठ्ठू हैं, ब्रिटिश सरकार के खुशामदखोर हैं और देशद्रोही है, ऐसा प्रचार किया गया था। जिसमें अंबेडकर के विरुद्ध भी इसी तरह का प्रचार किया गया। सुभाषचंद्र बोस को भी जैसे अंबेडकर को मिला गोलमेजी परिषद् का निमंत्रण नापसंद था। उन्होंने 'दि इन्डियन स्ट्रगल' नामक पुस्तक में पृष्ठ ४१ पर लिखा हैं कि, "माँ-बाप ब्रिटिश सरकार ने अंबेडकर पर कृपादृष्टि करके नेतृत्व दिया, क्योंकि राष्ट्रीय नेताओं को कठिन स्थिति में रखने के लिए उनको उनकी सहायता चाहिए थी।" यह भी कांग्रेस की विचारधारा का ही उदाहरण है। जब-जब ब्रिटिश सरकार की बात आती है तब कांग्रेस के नेता अहिंसा से आचरण करते, यदि मुसलमान नेता ब्रिटिश सरकार को सहायता और सहयोग देते तो भी वे चुप हो जाते।

मुसलमान के डंडे के भय से वे चुप हो जाते और वे कुछ भी बोलने की हिम्मत नहीं कर सकते थे। लेकिन हिन्दु अथवा हिन्दुत्ववादी नेता है तो उसकी निंदा करके उसके विरुद्ध बहुत चर्चा करने की नीति रही थी। कांग्रेस तरफी झुकाव वाले समाचारपत्र गोलमेजी परिषद् में गए मुसलमान नेता विरुद्ध कदाचित् ही टीका-टिप्पणी करते थे।

सत्य और सहिष्णुता रखकर दूसरों के साथ, मुसलामानों के साथ ढील रखकर व्यवहार करना तथा अन्य भारतीय दलों के नेताओं के साथ सिर्फ असहिष्णुता का व्यवहार करना एसी कांग्रेस की मनोवृत्ति का पुन: एक बार उनको अनुभव हुआ। एक बार डॉ. अंबेडकर अस्पृश्य विद्यार्थियों के लिए चलाए जा रहे एक छात्रावास की मुलाकात लेने अंबेडकर गए। जो अहमदाबाद के खानपुर में चलाया जा रहा था। तब कांग्रेसी मजदूर महाजन के कार्यकर्ताओं ने रेलवे स्टेशन पर उनको काला झंडा दिखाने का निष्फल प्रयास किया था।

महात्मा गाँधी दूसरी गोलमेजी परिषद् में हिस्सा लेंगे या नहीं यह अभी तक निश्चित न था। गाँधीजी ने भी इस प्रश्न से गूढ़ वातावरण बना दिया था। गाँधीजी को लगा कि इस मुद्दे पर अंबेडकर के विचारों को भी जान लेना चाहिए। इसलिए उन्होंने ९ अगस्त, १९३१ के दिन अंबेडकर को पत्र लिखकर उसी दिन रात को ८ बजे मिलने के बारे में अनुकूलता है कि नहीं ? साथ ही यदि अंबेडकर को अनुकूल न हो तो वे खुद अंबेडकर के घर जाएंगे ऐसा भी बताया। यह घटना राष्ट्रीय संग्राम में और राष्ट्रीय राजनीति में अंबेडकर की बढ़ती जा रही ताकत की बांग पुकार रही थी। ये वहीं गाँधीजी हैं जो एक वर्ष पहले सायमन कमीशन को सहयोग देने वाले अस्पृश्य समाज के नेताओं की अस्पृश्य समाज में कोई कीमत नहीं हैं, ऐसा कहते थे वहीं गाँधीजी उनके विचारों को जानने के लिए सामने से मिलना चाहते थे।

गाँधीजी का दर्जा इतना बड़ा था कि यदि वे अंबेडकर के घर मिलने आते है तो लोग अंबेडकर को अहंकारी समझेंगे ऐसा लगता था। अत: अंबेडकर ने बताया कि वे खुद ही रात को ८ बजे गाँधीजी को मिलने आएँगे। किंतु शाम

को अंबेडकर को १०६ डिग्री तब बुखार आया। अत: उन्होंने "मुझे बुखार उतर जाएगा कि तुरंत ही मैं आपको मिलूँगा।" ऐसा संदेश गाँधीजी को भिजवाया।

अत: पूर्व आयोजित दूसरे दिन अंबेडकर उनके साथी कार्यकारों के साथ गाँधीजी को मिलने मणिनगर गए। तब तीसरे मंजिल पर गाँधीजी उनके साथियों के साथ गए। अंबेडकर और साथियों ने उनको प्रणाम कर अपना स्थान लिया। गाँधीजी की अंग्रेजों और मुसलमानों एवं भारतीयों के साथ बात करने की तथा व्यवहार करने की पद्धति अलग ही थी। अंग्रेज या मुसलमान हो तो उसको तुरंत महत्त्व मिलता। जैसा व्यवहार भारतीय के साथ करते वैसा ही अंबेडकर और मित्रों के साथ व्यवहार किया। पहले तो उन्होंने देखा अनदेखा किया और अन्य नेताओं के साथ बातों में मशगूल हो गए। अंबेडकर के मित्रों को लगा, गाँधीजी ने अंबेडकर को मिलने बुलाया, लेकिन यदि कुछ देर ओर उनकी तरफ ध्यान नहीं दिया तो पक्का तकरार होगी। यह एक तरह से अंबेडकर का अपमान ही था। इसलिए वे अस्वस्थ थे। थोड़ी देर के बाद गाँधीजी ने अपनी दृष्टि अंबेडकर की ओर घुमाई।

लेखक नाथालाल गोहिल लिखते है कि, "गाँधीजी और अंबेडकर के बीच हुए वार्तालाप के कुछ अंशों का नीचे उल्लेख किया गया। इस वार्तालाप में गाँधीजी का अन्य नेताओं प्रति अभिगम, बुजुर्गपन और तिरस्कार झलकता है। तो साथ ही साथ अंबेडकर के जैसे प्रश्न वैसे उत्तर देखने को मिलते हैं।"

गाँधीजी : डॉक्टर आपको क्या कहना है ?

अंबेडकर : आप क्या कहना चाहते हो, यह सुनने के लिए आपने मुझे बुलाया, इसलिए मैं आया हूँ। तो आप ही कहिए अथवा उचित लगे तो कुछ प्रश्न कीजिए। जिसका उत्तर दे सकूं।

गाँधीजी : मेरी और कांग्रेस के विरुद्ध में आपकी कुछ शिकायतें है ऐसा मैंने सुना है। मैं मेरे बचपन से अस्पृश्यता के बारे में विचार करता आया हूँ। आपका जन्म भी तब नहीं हुआ था। कांग्रेस के कार्यक्रम में इस अस्पृश्यता के प्रश्न को स्थान देने में मुझे काफी तकलीफ हुई है। यह सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं का प्रश्न होने की वजह

से राजकीय पक्ष के कार्यक्रम में उसको स्थान नहीं देना चाहिए। यह मान्यता कांग्रेसी कार्यकर्ताओं में थी उस समय मेरी समक्ष भी विरोध का बवंडर उठा था। इसके बावजूद भी अस्पृश्यता निवारण के प्रश्न को लेकर मैं आज भी संवेदनशील हूँ। अस्पृश्यों के लिए कांग्रेस ने आज तक बीस लाख रूपये खर्च किए हैं। ऐसी वस्तु स्थिति होने के बावजूद भी मेरी एवं कांग्रेस विरुद्ध आपकी शिकायत क्यों है यह मुझे समझ में नहीं आता।

अंबेडकर : मेरा जन्म नहीं हुआ था तब से आप यह कार्य करते आए हो यह निर्विवाद सत्य है। आपके जैसे बुजुर्ग और वृद्ध इंसान इस तरह बुजुर्गपन का मुद्दा कभी-कभी आगे करते हैं। आप मुझ से उम्र में बड़े हैं। इस वस्तु स्थिति मैं कैसे इन्कार कर सकता हूँ ? आपके आग्रह से ही कांग्रेस ने अस्पृश्यता निवारण के कार्य को मान्यता दी यह बात सत्य है। लेकिन औपचारिक मान्यता देने के सिवाय कांग्रेस ने विशेष कुछ नहीं किया है। यह मेरी मुख्य शिकायत है। कांग्रेस ने अस्पृश्यों के लिए बीस लाख रुपया खर्च किया, ऐसा आप कहते हैं। मैं मानता हूँ। लेकिन मैं आपसे दृढ़तापूर्वक कहता हूँ कि, आपके ये सारे पैसे पानी में गए हैं। यदि इतनी बड़ी रकम मेरे जैसे के हाथ में आई होती तो उसका योग्य तरीके से विनियोग करके अस्पृश्य समाज की प्रगति को मैंने प्रचंड वेग दिया होता। ऐसा हुआ होता तो इससे पहले ही मैं स्वयं स्फूर्ति से आपको मिलने के लिए परिस्थिति का निर्माण कर सका होता। आप कह रहे हैं, उस अनुसार यदि कांग्रेस को यह प्रश्न महत्त्व का लगा होता, जैसे आपने कांग्रेस के सदस्य होने के लिए खादी की और अन्य शर्तें ऐसी एक भी अस्पृश्यता निवारण के लिए शर्त आपको कांग्रेस का सदस्य बनाने के लिए रखनी चाहिए थी। अस्पृश्य के बच्चों को विद्यार्थी के रूप में रखूंगा अथवा अपने घर में सप्ताह में एक बार खाना खाने के लिए बुलाऊंगा या फिर अपने घर के काम के लिए

अस्पृश्य गरीब महिला को कामवाली के तौर पर रखेंगे ऐसा वचन देंगे, वहीं कांग्रेस के सदस्य हो सकेंगे। एसी शर्त कांग्रेस को रखनी चाहिए थी। यदि ऐसा हुआ होता किसी जिला कांग्रेस अध्यक्ष की तरफ से सनातनी भिक्षुकों की तरफदारी लेकर अस्पृश्यों के मंदिर प्रवेश का विरोध वो लोग करें, ऐसा विसंगत और तुच्छ दृश्य देखा नहीं गया होता। कांग्रेस को संख्याबल और द्रव्यबल की आवश्यकता होने की वजह से अस्पृश्य निवारण के विषय में एसी एक दो कर्तव्यप्रधान शर्त कांग्रेस के सदस्यपद के लिए रखी नहीं जा सकती ऐसा आप कहेंगे। इस मामले में हमारा कहना है कि तत्वनिष्ठा के ज्यादा कांग्रेस पक्ष संख्याबल और द्रव्यबल को अधिक महत्त्व देता है। जब तक अंग्रेज सरकार का हृदयपरिवर्तन और चित्तशुद्धि नहीं होती तब तक हम कांग्रेस या स्पृश्य हिन्दुओं पर विश्वास करेंगे नहीं। स्वावलंबन और आत्मविश्वास से अपना मार्ग निकालेंगे। आपके जैसे महात्माओं पर भी हम अवलंबित रहेंगे नहीं।

आज तक का इतिहास गवाही देता हैं महात्माएँ दौड़ती परछाई जैसे होते हैं। उनकी दौड़-धूप से बहुत धूल उड़ती है। लेकिन वे समाज का स्तर ऊँचा ला सकते नहीं हैं। कांग्रेस मेरा और मेरे कार्य का विरोध करती हैं। मुझे देशद्रोही के रूप संबोधित हिन्दुओं के मन में मेरे कार्य को लेकर घृणा क्यों फैलाती है ?

उत्तर देते वक्त अंबेडकर जैसे सोने को आग में तपाकर लाल बनाया गया हो ऐसे हो गए थे। गाँधीजी के समक्ष अपने तीखे प्रश्न के ऐसे उग्र उत्तर से थोड़ी देर के लिए वातावरण तंग बन गया था।

अंबेडकर : आप कहते हो कि यह मेरी जन्मभूमि है। मैं पुन: कहता हूँ कि मेरी कोई जन्मभूमि नहीं हैं। जिस देश में कुत्ते की तरह भी हम जी नहीं सकते। कुत्ते और बिल्ली को जितनी सुविधाएँ मिलती हैं उतनी

भी सुविधाएँ हमको इस देश में आसानी से नहीं मिलती हैं। मैं तो क्या, लेकिन जिनमें इंसानियत है और जिनमें स्वाभिमान की भावना है ऐसा कोई भी अस्पृश्य एसी भूमि को अपनी जन्मभूमि और उस भूमि के धर्म को अपना धर्म कहने के लिए तैयार नहीं होगा। इस देश ने हमारे मामले में इतने अक्षम्य गुनाह किए हैं इसलिए हम उसके साथ कोई भी भयंकर गुनाह करेंगे तो उसके पाप की जिम्मेदारी हमारे सिर पर नहीं रहेगी। अत: मुझे देशद्रोही कहकर कोई कितनी भी गलियाँ दे तो भी मुझे दुःख नहीं होने वाला। क्योंकि मेरे कथित राष्ट्र विरोधीपन की जिम्मेदारी मेरी नहीं वह तो मुझे राष्ट्र विरोधी कहने वाले लोगों की और राष्ट्र की है। इस पाप के लिए मैं नहीं लेकिन वे जिम्मेदार हैं। मेरे लिए मातृभूमि नहीं है, परंतु मुझ में अच्छा-बुरा सोचने की विवेकबुद्धि है। मैं इस राष्ट्र का, राष्ट्रधर्म का उपासक नहीं, किंतु मेरे अंदर जो अच्छा-बुरा सोचने की बुद्धि है उसका उपासक हूँ। मेरे हाथों आप कहते हो उसके अनुसार यदि सच में कोई राष्ट्रसेवा हो गई है, तो उसका श्रेय मेरे में रही राष्ट्रभक्ति को नहीं है। वह तो मेरे में जो अच्छे-बुरे को समझने की विवेकबुद्धि है, उसकी भक्ति है। जिस राष्ट्र में मेरे अस्पृश्य बंधुओं की इंसानियत को धूल में रगड़ी जाती है, इंसानियत प्राप्त करने के लिए उस राष्ट्र का मैं कितना भी नुकसान करूं तो वह पाप नहीं है वह तो पुण्य ही माना जाएगा। यदि मैंने उस राष्ट्र का नुकसान नहीं किया है तो अथवा मेरी तरफ से कोई नुकसान नहीं किया जाता है तो वह पाप नहीं है पुण्य ही माना जाएगा। उसका श्रेय मुझ में रही विवेकबुद्धि को है। उसकी प्रेरणा से इस राष्ट्र का अकल्याण न करके मैं मेरे अस्पृश्य बंधुओं को कैसे उनके इंसानियत के अधिकार को प्राप्त करा सकूं उसकी चिंता करता हूँ और उसके लिए मैं इस देश में तथा विदेश में प्रयत्न कर रहा हूँ।

(यह प्रसंग अपनी आजादी की जंग में नेतृत्व करने वाले एक-दूसरे के प्रति

कितनी जानकारी रखते हैं वह भी जानने जैसा है। गाँधीजी दूसरी गोलमेजी परिषद् तक अंबेडकर को अस्पृश्यों के लिए संघर्ष करने वाले किसी ब्राह्मण परिवार के समझते थे। लोकमान्य तिलक गाँधीजी को जैन समझते थे। जबकि दूसरी तरफ एलफिस्टन जैसे धृत अंग्रेज मुत्सद्दी के पास हमारे प्रयेक नेताओं की पूरी जानकारी थी।)

अंबेडकर के उग्र विचारों से गाँधीजी बहुत भयभीत हो रहे थे। इतने में अंबेडकर ने फिर से एक प्रश्न पूछा।

अंबेडकर : मुसलमान, सिख इत्यादि अल्पसंख्यक समाजों की परिस्थिति अस्पृश्य समाज की तुलना में काफी अच्छी है। अस्पृश्य समाज सभी तरीके से पिछड़े तथा पीड़ित है। अन्य समाजों का राजकीय दृष्टि से स्वतंत्र अस्तित्व गोलमेजी परिषद् ने स्वीकार किया हैं और कांग्रेस ने भी उनको मान्यता दी है। गोलमेजी परिषद् के प्रथम अधिवेशन में अस्पृश्यों को अल्पसंख्यक लोगों में शामिल किया गया हैं। राजकीय दृष्टि से उनको मुसलमान, सिख इत्यादि समाजों के अनुसार स्वतंत्र इकाई माना गया है। उनको सुविधाएँ और प्रचुर प्रतिनिधित्व देने की सिफारिश की है। हमारे मन से यह हमारे हित का है। आपको क्या लगता है ?

गाँधीजी : अस्पृश्य समाज हिन्दु समाज का एक अविभाज्य अंग होने की वजह से मैं उसको हिन्दुओं से अलग करने के विरुद्ध हूँ। उनको आरक्षित बैठक देने के लिए मैं हकीकत में खुश नहीं हूँ।

अंबेडकर : आपका यह अभिप्राय प्रत्यक्ष आपके मुख से जानने को मिला यह तो अच्छा ही हुआ। मैं आपसे रुखसत होता हूँ।

ऐसा कह कर अंबेडकर उठे। गाँधीजी को प्रणाम कर बाहर निकल गए। एक तरह से यह मुलाकात गाँधीजी और अंबेडकर के बीच के युद्ध की पहली चिंगारी थी क्योंकि गाँधीजी अर्थात् उस समय के सर्वमान्य राष्ट्रीय नेतृत्व था। उसको चेतावनीभरी भाषा में उग्र तरीके से जवाब देना और सामने सवाल करना यह उनके

क्रोध को मोल लेना जैसा था। परंतु जमदग्नि (दुर्वासा ऋषि) के अवतार समान अंबेडकर को उस विषय में कोई चिंता न थी।

शनिवार १५ अगस्त के दिन दूसरी गोलमेजी परिषद् के लिए अधिकांश प्रतिनिधि एम. एस. मुलतान नामके जहाज के झरोखे पर खड़े थे। राजा से गरीब तक की स्थिति सुधारने वाले नेता को विदाई देने के लिए जनसैलाब उमड पड़ा था। सबको अपेक्षा थी कि जब ये लोग वापस आएंगे तब वे लंबी गुलामी की जंजीरों से मुक्त होने का कोई मार्ग लेकर आएंगे। वहीं एक कार आकर खड़ी हुई और एक नेता उतरे। उनके उतरने के साथ ही दोनों तरफ खड़े हजारों कार्यकर्ताओं ने प्रचंड नारे 'अंबेडकर जिंदाबाद' से वातावरण गूंजता कर दिया।

जहाज पर उनकी मुलाकात सर प्रभाशंकर पट्टणी के साथ हुई। जो गुजरात के भावनगर राज्य के दीवान थे। सर पट्टणी अगले दिन हुई गाँधीजी के साथ की मुलाकात में शुरुआत में हाजिर थे। उन्होंने व्यंग्य से पूछा कि कल बापू के साथ की मुलाकात का क्या निष्कर्ष निकला ? अंबेडकर प्रश्न पूछने के पीछे का इरादा समझ गए। उन्होंने सामने पूछा, "कल आप वहाँ बैठे तो थे।" पट्टणी ने कहा, "ना, मैं बीच में ही उठ गया था।" मुझे कल ही गाँधीजी ने पूछा "हमारी बातचीत चल रही थी तब आप बीच में से उठकर क्यों गए ?" मैंने गाँधीजी को कहा, "हिन्दु धर्मशास्त्र की आज्ञा ऐसी है कि जब कोई निंदक, महान व्यक्ति के बारे में अनादर से बोलता है तब उसकी जबान उसी स्थान पर काट देना। असंभव हो तो ऐसा बोला हुआ सुनने वाले व्यक्ति को स्थल पर क्षणभर भी नहीं बैठना चाहिए। और वह संभव हो तो अपने कान बंद कर देने चाहिए।" यह सुनकर अंबेडकर ने गुस्सा करने के बजाय हँसते-हँसते व्यंग्यभरे शब्दों में प्रश्न पूछा, "क्यों, रे, सर प्रभाशंकर, आपके धर्मशास्त्रों ने ढोंगियों, खुशामदखोरों का क्या तोड़ देने का कहा हैं ?" अंबेडकर का यह व्यंग्ययुक्त तीर सर प्रभाशंकर के हृदय के आर-पार उतर गया। उन्होंने कहा कि, "आपके इस कठोर हमले का अर्थ क्या ?" अंबेडकर ने उतनी ही स्वस्थता से प्रत्युत्तर दिया "मैं क्या कहना चाहता हूँ वह आपकी समझ में संपूर्णरूप से आ गया है। अब मुझे इसका भरोसा हो गया है कि महात्माजी

अनेक ढोंगी और मृत जैसे व्यक्तियों से घिरे हुए हैं। उनके शिकंजे में से महात्माजी जल्द से जल्द मुक्त हो यह जरूरी है।"

जब ७ सितम्बर के दिन दूसरी गोलमेजी परिषद् आरंभ हुई तब गाँधीजी के व्यक्तित्व का एक अलग प्रभाव पड़ रहा था। उन्होंने १५ सितम्बर के अपने पहले व्याख्यान में कहा कि, "कांग्रेस संस्था किसी एक जाति, धर्म या वर्ग के लोगों की प्रतिनिधि नहीं है। वह सभी धर्मों और जाति के लोगों की एकमेव प्रतिनिधि है। कांग्रेस ने अस्पृश्यता निवारण और हिन्दु-मुस्लिम एकता यह दो मुख्य ध्येय को निश्चित किए हैं। एसी संस्था ने मुझे उसके एकमेव प्रतिनिधि के रूप में मांग (सवाल, प्रार्थना) करने भेजा है। कांग्रेस के प्रमुख मुसलमान थे, इसलिए वह मुसलमानों के प्रतिनिधि है। डॉ. ऐनी बीसेंट और सरोजिनी नायडू प्रमुख थे इसलिए स्त्रियों के प्रतिनिधि हैं।" उन्होंने आगे कहा कि, "कांग्रेस सिर्फ ८५ से ९५ प्रतिशत लोगों की प्रतिनिधि नहीं है। ऐसा दावा मैं आपकी समक्ष करता हूँ।" उसके उत्तर में बाबासाहब ने तुरंत ही पूछा "जिन ५ प्रतिशत लोगों का प्रतिनिधित्व कांग्रेस नहीं करती है वे लोग कौन हैं ?" तब गाँधीजी ने कहा कि, "कांग्रेस अस्पृश्यों का भी प्रतिनिधित्व करती है।"

अंबेडकर ने अपने व्याख्यान में जमींदारों को स्वतंत्रता और विशेष अधिकारों देने का विरोध करके रजवाड़ों की प्रजा के अधिकारों का समर्थन किया। परिणाम स्वरूप उसके बाद खड़े हुए प्रत्येक वक्ता को अंबेडकर के विचारों के विषय में अपने विचार व्यक्त करने पड़े। जिसमें गाँधीजी ने दूसरे दिन अपने व्याख्यान के आरंभ में ही विवाद के द्वारा मधुमक्खी के छत्ते को छेड़ने का प्रयास करके प्रतिनिधिओं का अपमान करने का प्रयास किया। उन्होंने कहा, "इस परिषद् में हिस्सा लेने वाले नेता लोक नियुक्त नहीं हैं, लेकिन सरकार नियुक्त है।" उसके बाद संघ राज्य निर्माण को समर्थन देते राजाओं को क्या करना चाहिए। इस मामले में मुझे अभिप्राय देने का कोई अधिकार नहीं है ऐसी भावना व्यक्त की। साथ ही साथ सबसे महत्त्वपूर्ण अलग-अलग जातियों ने अपने लिए माँगे प्रतिनिधित्व के प्रश्न के बारे में कहा कि, "हिन्दु, मुस्लिम और सिखों के स्वतंत्र प्रतिनिधित्व का विचार करके उसके लिए

मान्यता दी गई है। ऐतिहासिक कारणों को ध्यान में रखकर अस्पृश्यों की माँगों के विषय में अंबेडकर क्या कहना चाहते, वह मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। फिर भी अस्पृश्य वर्गों के हित के कार्यों करने की जिम्मेदारी निभाने में कांग्रेस अंबेडकर को सहयोग देगी।"

इस तरह परोक्ष रूप से उन्होंने अस्पृश्य वर्ग को प्रतिनिधित्व देने के प्रयासों का खंडन करके उनको अमल और विशेष प्रतिनिधित्व दिया जाने पर वे खुद विरोध करेंगे ऐसा भी अघोषित शब्दों में बता दिया था।

अंबेडकर ने दूसरे दिन गाँधीजी को प्रश्न किया, "संघराज्य विधि मंडल का तथा उसके कारोबारी मंडल का स्वरूप कैसा होना चाहिए ? इस बारे में गाँधीजी द्वारा पेश किए गए विचार गाँधीजी के थे या कांग्रेस के थे ? अर्थात् दीवान बहादुर रामस्वामी मुदलियार ने कहा, "भारत के राजकीय विभाग के कर्मचारी जितने विवेकबुद्धि के और न्यायप्रिय होते हैं, उतने ही विवेकबुद्धि शील और न्यायप्रिय हैं।" अंबेडकर ने तुरंत ही सवाल किया, "यदि एसी परिस्थिति होती तो आपने जिम्मेदार सरकार की माँग क्यों की ?" पंडित मदनमोहन मालवियाजी ने अपने व्याख्यान में कहा, "यदि सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रचुर मात्रा में पैसा खर्च किया होता तो अभी अस्पृश्यता सिर्फ इतिहास की घटना ही रही होती।" अंबेडकर ने अपना उदाहरण देते हुए पूछा कि, "तो फिर मैं शिक्षित हुआ तो भी अभी तक मुझे अस्पृश्य क्यों माना जाता है। ?"

इस दूसरी गोलमेजी परिषद् में वास्तविक रूप में अंबेडकर के व्यक्तित्व की सही पहचान देश, दुनिया और अंग्रेजों को हुई ऐसा कहे तो गलत नहीं है। क्योंकि इस परिषद् में उनके व्याख्यानों से राजकीय नेता, संविधान के विशेषज्ञ, अर्थशास्त्र के प्राध्यापक, दलितों के मुक्तिदाता, सामान्य प्रजा के सच्चे हमदर्द ऐसे सर्वांग व्यक्तित्व तथा अपनी प्रखर विद्वता से अंबेडकर ने इस परिषद् में अपना डंका बजा दिया और इससे उनके नेतृत्व का अलग प्रभाव पड़ा था।

अल्पसंख्यक समिति को २८ सितम्बर से अपना कार्य आरंभ करना था। उससे पहले गाँधीजी के पुत्र देवदास गांधी ने श्रीमती सरोजिनी नायडू के घर गाँधीजी

और अंबेडकर की मुलाकात रखी। खुद को जो कहना था उसको स्पष्ट तरीके से अंबेडकर ने कह दिया। गाँधीजी ने कहा कि यदि दूसरे सभ्य आपकी माँग को मान्य रखते हैं तो वे भी रखेंगे।

दिनांक २८ को बैठक आरंभ हुई। परिषद् के अध्यक्ष ने कहा कि, अल्पसंख्यक के विषय में प्रतिनिधि एकमत न होने से इस विषय में पंच की नियुक्ति करनी चाहिए ऐसी सबकी माँग है, किंतु आयोग की कल्पना सभी प्रतिनिधि मान्य रखेंगे नहीं। आगाखान ने कहा कि, "आज रात को गाँधीजी मुसलमान नेताओं को मिलने वाले हैं। इसलिए आज की बैठक स्थगित रखी जानी चाहिए।" पंडित मदनमोहन मालविया ने उनको समर्थन दिया। मुसलमान नेता और गाँधीजी के बीच चल रही चर्चा की भनक अंबेडकर को थी। अत: उन्होंने कहा कि, "जब तक अस्पृश्य वर्ग का सवाल है, हमने हमारी माँग अल्पसंख्यक उपसमिति में रखी है। हम अब समिति समक्ष एक ही बात रखने वाले हैं कि प्रत्येक प्रांत में हमारे प्रतिनिधित्व का कितना प्रमाण होना चाहिए ? जाति विषयक प्रश्न के मामले में समाधान करने के लिए अभी चर्चा होने वाली है यह जान कर हमें खुशी होती है।" इसके साथ उन्होंने कहा कि, "इसके बावजूद भी मैं आरंभ में इस मामले में स्पष्टरूप से कहना चाहता हूँ कि जो प्रतिनिधि इस प्रश्न पर विचार-विमर्श करते हैं, उनको यह ध्यान रखना चाहिए कि वे इस मामले में संपूर्ण अधिकार रखते नहीं हैं। गाँधीजी अथवा कांग्रेस का प्रतिनिधित्व किसी भी प्रकार हो, उनका कहना और उनके द्वारा किए गए करार हमें बंधनकारक नहीं हैं। विशेष सुविधा की माँग करने वालों और ज्यादा सुविधाएँ देने वालों को हमारे हिस्से में से कुछ भी नहीं देना चाहिए।" इस तरह जैसे अंबेडकर ने परोक्ष रूप से गाँधीजी का मुस्लिम प्रेम और गाँधीजी के नेतृत्व दोनों के सामने अपना उग्र विरोध दिखा दिया।

१ अक्टूबर को गाँधीजी ने मुसलमान नेताओं के साथ बातचीत के लिए पुन: समय माँगा। संविधान समिति ने जानकारी दी कि गाँधीजी मुसलमान नेता के साथ समाधान के लिए बातचीत चला रहे हैं। उसके विरुद्ध अंबेडकर ने सवाल किया कि, "एसे समाधान होता है तो उसमें मैं विध्न डालना चाहता नहीं हूँ। इसके बावजूद

मुझे इतना पूछना है कि, इस समाधान के मामले में कोई अस्पृश्य प्रतिनिधि होगा क्या ?'' गांधीजी ने उसका उत्तर ''हां'' में दिया था।

अंबेडकर ने एक तरह से कहा कि, ''प्रथम गोलमेजी परिषद में समिति ने जिस प्रकार से भावी राज्य संविधान में अस्पृश्यों का स्थान मान्य रखा था, उसी प्रकार इस वक्त भी अस्पृश्य वर्ग को भावी राज्य संविधान में मान्यता नहीं मिली तो वे खुद समिति में हिस्सा नहीं लेंगे अथवा गाँधीजी के सभा स्थगन के प्रस्ताव को अंत:करणपूर्वक समर्थन नहीं देंगे।''

गाँधीजी और मुसलमान नेताओं की चर्चा एक हप्ते तक चली मुसलमानों के द्वारा की गई १४ माँगें गाँधीजी ने मान्य की, ऐसी अफवाह उड़ी। मुसलमानों ने पंजाब और बंगाल में बहुसंख्यक प्रतिनिधित्व देने की माँग मंजूर की गई थी; किंतु सिख-मुसलमान के सवाल पर बातचीत टूट गई थी।

गाँधीजी ने ८ अक्टूबर की बैठक में उपस्थित होकर साम्प्रदायिक प्रश्नों का समाधान करने में निष्फल रहे हैं ऐसा इकरार किया। इसलिए उन्होंने भारतीय प्रतिनिधि के चयन को जिम्मेदार ठहराया। उन्होंने कहा कि, ''उपस्थित हुए प्रतिनिधि उनके पक्ष में अथवा समूह के सच्चे प्रतिनिधि नहीं हैं। इसलिए समिति को अपना काम अनिश्चित समय के लिए स्थगित रखना चाहिए।'' एक तरह से गाँधीजी ने अपनी निष्फलता अन्यों के सिर पर डाल दिया। जबकि वास्तविकता यह थी कि वे सफलतापूर्वक बातचीत चला रहे हैं ऐसा उन्होंने समिति समक्ष निवेदन किया था।

इस प्रश्न पर अंबेडकर ने गाँधीजी के सामने उग्र अभिगम अपनाकर जवाब दिया कि, ''गांधीजी ने करार का भंग किया है। किसी भी प्रतिनिधि को किसी के भी मन में प्रक्षोभ हो, ऐसा कुछ भी बोलना नहीं है ऐसा निश्चित होने के बावजूद भी सिर्फ सभा स्थगन की दरखास्त पेश करने के बदले गाँधीजी ने प्रतिनिधियों पर उंगली उठानी आरंभ की। हम सरकार नियुक्त हैं। इस बात का हम इनकार नहीं कर रहे हैं। किंतु यदि मुझे मुझ तब सिमित होकर बोलना हो तो मैं ऐसा कहूँगा कि भारत के अस्पृश्यों को अपने प्रतिनिधि का चुनाव करने को कहा जाएगा, तो भी मेरा स्थान उसमें सबसे ऊपर ही रहेगा। मेरी नियुक्ति सरकार ने की हो या न की हो। मैं मेरे

अस्पृश्य वर्ग का प्रतिनिधि हूँ ही और इस विषय में किसी को भी आशंका रखने की जरूरत नहीं है। मैं इस बारे में इतना ही कहना चाहता हूँ कि गैरजिम्मेदार लोग कई बार गलत दावे करते हैं। जिसके संदर्भ में वे दावे करते हैं कि, उनको ही वह मान्य होता नहीं हैं।" एक तरह से गाँधीजी विरुद्ध उन्होंने मोर्चा ही शुरू कर दिया।

उन्होंने आगे कहा कि, "जिस गाँव के लोगों ने मेरा चेहरा भी देखा नहीं है ऐसे गाँव की अस्पृश्य जनता ने भारत के कोने-कोने से मेरी भूमिका का सर्मथन देते हुए तार भेजे हैं। यह बात मैं आपके ध्यान में लाना चाहता हूँ।"

आखिर में ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने व्याख्यान दिया। जो थोड़ा तीखा था। कुछ लोगों के अभिप्राय से यह प्रहार गाँधीजी को संबोधित करते हुए ही किए गए थे।

अंबेडकर इतने से ही नहीं रुके। गाँधीजी के दोहरे व्यवहार को देश के समक्ष लाने के लिए उन्होंने गाँधीजी के साथ हुई तकरार का विदेश के मुख्य अखबार में और भारत के 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में इस विषय में स्पष्टीकरण किया। इस संदर्भ में १२ अक्टूबर के दिन प्रसिद्ध हुए पत्र में उन्होंने बताया कि, "मुसलमानों से साथ बातचीत करते समय उनके द्वारा दी गई १४ माँगों के बारे में गाँधीजी ने जो शर्त रखी थी, उसमें से एक शर्त यह थी कि, अस्पृश्य वर्गों की और छोटे-छोटे अल्पसंख्यक समूहों की माँगों का मुसलमानों को विरोध करना है। उनको यह बात विश्वसनीय सूत्रों से पता चली। आपकी माँगों को दूसरों के द्वारा मान्य किए जाने के बाद ही मैं (गाँधीजी) उसको मंजूरी दूंगा। ऐसा खुल्ले आम कहना तथा दूसरे उस माँग को मान्य न करें, उसके लिए वे अंदरूनी रूप से प्रयत्न करेंगे, इतना ही नहीं उन माँगों को मान्य रखने के लिए तैयार हुए लोगों को खरीदा जाएगा। यह नीति मेरे मंतव्य के अनुसार महात्माजी को शोभा नहीं देती है। अस्पृश्यों के कट्टर दुश्मन ही इस तरह का व्यवहार कर सकते हैं। अस्पृश्यों के बारे में गाँधीजी की ऐसी भूमिका मित्रता की तो हैं ही नहीं अपितु स्पष्ट रूप से शत्रु जैसी भी नहीं है!" अंबेडकर के इस प्रचार से गाँधीजी की दोहरी नीति खुल गई और वे अल्पसंख्यकों के प्रश्नों को हल करने में निष्फल हुए ऐसा साबित हो गया। साथ ही साथ उनका एक कौम को दूसरी कौम के विरुद्ध भड़काने का मलिन उद्देश्य भी प्रकाश में आ

गया। नतीजन विठ्ठलभाई पटेल जैसे नेता एसी बात करने लगे कि, "गांधीजी परिस्थिति को व्यवस्थित नहीं कर सके। (संभाल नहीं सके।)"

अंबेडकर द्वारा की गई माँगों का गांधीजी ने विरोध किया। उसके भारत में प्रत्याघात होने आरंभ हो चुके थे। अखिल भारतीय अस्पृश्य परिषद् के अधिवेशन में अंबेडकर को समर्थन दिया गया तथा गाँधीजी के नेतृत्व को अस्वीकार करने का प्रस्ताव पारित किया गया। इस प्रस्ताव का सारांश अंबेडकर को तार के द्वारा भेजा गया। अंबेडकर के पास इस तरह के तार की समग्र भारत से जैसे वर्षा होने लगी। आखिर में परिस्थिति एसी आई कि अस्पृश्यों के प्रतिनिधि के रूप में गाँधीजी का दावा खोखला निकला।

इसी समय में अंबेडकर को सही साबित करती एक ओर घटना भारत में घटी। नासिक में मंदिर-प्रवेश सत्याग्रह वेग पकड़ रहा था। पाँच हजार सत्याग्रही एकत्र हुए थे। हिन्दु महासभा के नेता स्वातंत्र्यवीर विनायक सावरकर के साथ अन्य लोगों ने भी अस्पृश्यों के मंदिर प्रवेश के अधिकार को नहीं नकारना चाहिए, ऐसी विनती स्पृश्य हिन्दु नेताओं ने की। गाँधीजी को मंदिर प्रवेश आंदोलन अन्यायी लग रहा था। इसलिए उन्होंने मौन धारण कर लिया। दक्षिण विभाग के पुलिस कमिश्नर ने सत्याग्रह स्थगित रखने के लिए पत्र लिखा। उसके विरुद्ध में अंबेडकर ने सत्याग्रह के संचालकों को बताया कि, "अपने ऊपर लगे अस्पृश्यता के कलंक को हम ही अपने बहादुरी से धो डालेंगे। जिस सरकार ने अभी तक अस्पृश्यता नष्ट करने के लिए कुछ किया ही नहीं है उस सरकार की आज्ञा मानने के लिए हम बंधनकारक नहीं हैं। इस विषय में उनका परवाह करने की कोई कारण नहीं है !" नासिक सत्याग्रह के समाचार 'लंदन टाइम्स' में प्रकट हुए। इसलिए अंबेडकर के हाथ मजबूत बनते जा रहे थे। तो अस्पृश्यों को हिन्दु समाज से अलग करने की मेरी इच्छा नहीं हैं। ऐसा कहने वाले गाँधीजी इससे निराश होते जा रहे थे !

तत्पश्चात् अंबेडकर ने भारत के संघ राज्य का आर्थिक ढाँचा कैसा होना चाहिए इस बारे में हुई चर्चा में हिस्सा लिया। संयुक्त न्यायालय के स्थापन के विषय में उनके विचार प्रवर्तक व्याख्यान किए। उसके बावजूद भी विरोधियों, ब्रिटन के

राजनीतिज्ञों, विशेषज्ञों, नामंकित संस्थाओं के सदस्यों तथा इस प्रकार के लोगों को मिलना, अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय प्रश्नों के बारे में परामर्श करना इत्यादि काम इन सभी कवायद में से समय निकालकर अंबेडकर बहुत ही व्यवस्थित और होशियारीपूर्वक से करते जा रहे थे। उनका दर्जा तथा विस्तार बढ़ता जा रहा था। गाँधीजी के विचार उनके सामने फीके दिख रहे थे। गाँधीजी का विरोध करने वाले अंबेडकर आखिरकार क्या कहना चाहते हैं वह जानने के लिए राजनीतिज्ञ, पत्रकारों, पंडितों अंबेडकर का सम्पर्क करने लगे। म्युरायल लेस्टर नामक फ्रेंच महिला गाँधीजी के यहाँ रहती थी। उसने भी अंबेडकर का संपर्क करके कुछ प्रश्न पूछे। दोनों के करीब के मित्र के यहाँ दोनों की मीटिंग रखी गई। ताकि कोई समाधान हो सके, लेकिन सभी प्रयत्न व्यर्थ गए। क्योंकि दोनों की मूलभूत विचारधारा में ही फर्क था। चूँकि गाँधीजी एक ऐसे व्यक्तित्व थे कि उनको जैसे इन सबकी कोई असर ही नहीं होती थी। उनके मनमें सामने वाली व्यक्ति के लिए कोई द्वेष को भी स्थान नहीं रहता था।

गाँधीजी पर अंबेडकर द्वारा किए कठोर शब्दप्रयोग के हमले का भारतभर में गहरे प्रत्याघात पड़ने लगे। लोग अंबेडकर को असभ्य, उद्धत, भावनाशून्य, शैतान मानने लगे। देशद्रोही और हिन्दु धर्म के शत्रु ऐसी निंदा होने लगी। चूँकि अंबेडकर गाँधीजी के पर एसे हमले करते कि अब उस प्रकार के व्यवहार को लोग उद्धतता की कक्षा में रखते और ज्यादा से ज्यादा निंदा करते। जैसे-जैसे निंदा करते वैसे-वैसे अंबेडकर अधिक उग्रता से उसका जवाब देते। गोलमेजी परिषद् में गाँधीजी के द्वारा किए गए कार्यों का वर्णन करते हुए अंबेडकर ने कहा था कि, "कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में गाँधीजी का चयन हुआ है यह दुर्भाग्य की बात है। राष्ट्र के भावी के लिए मार्गदर्शन देने के लिए गाँधीजी से ज्यादा अयोग्य व्यक्ति का चयन नहीं हो सकता है। प्रतिनिधियों में एकता की स्थापना करने की दृष्टि से गाँधीजी संपूर्णता निष्फल रहे। इसके बावजूद भी जीत के नशे में गाँधीजी क्षुद्र बुद्धि का व्यवहार कर सकते हैं यह उनके द्वारा परिषद् में किए गए व्यवहार से दिखाई देता है। विदेश आने से पहले गवर्नर जनरल के साथ किए गए सफल समाधान के

लिए परिषद् में उपस्थित हुए प्रतिनिधियों के साथ गाँधीजी ने असभ्य बर्ताव करते और उनकी मानहानि करने का कोई भी मौका छोड़ते नहीं थे। उलटा परिषद् में वे कहते कि इन प्रतिनिधियों की कीमत कौड़ी की है, उनका देश में कोई स्थान नहीं है। कांग्रेस के प्रतिनिधि होने के नाते देश का सच्चा प्रतिनिधि मैं ही हूँ। गोलमेजी परिषद् में आए प्रतिनिधिओं के बीच हुए मतभेद को दूर करने के बदले गाँधीजी ने उसमें बढ़ोतरी की थी। ज्ञान की दृष्टि से देखते हैं तो गाँधीजी इस परिषद् में बदनाम हुए थे। जब परिषद् में संवैधानिक अथवा जातिगत एसे कई प्रश्नों को लेकर कार्य रुक गया तब गाँधीजी ने प्रतिकूल उत्तर देकर समय गुजारते रहते। गाँधीजी के पास रचनात्मक सुझाव और मंतव्य का अभाव था।"

गाँधीजी के गुरु गोपालकृष्ण गोखले ने इससे पहले ही भविष्यवाणी की थी कि, "जब-जब राजकीय समझौते की बातचीत का इतिहास लिखा जाएगा तब गाँधीजी को इस मामले में संपूर्ण अपयश मिला ऐसा लिखा जाएगा।"

ऐसा नहीं था कि अंबेडकर सिर्फ अस्पृश्यों के ही बारे में सोचते थे। सवर्ण हिन्दुओं के विरुद्ध खुद ने किए हुए व्याख्यानों का मुसलमान नेता अपने साम्प्रदायिक स्वार्थ के लिए उपयोग करते हैं। वे व्याख्यानों का अनुचित लाभ उठाते हैं और सवर्ण हिन्दुओं के प्रतिनिधि हिन्दुओं की सही बाते पेश करते नहीं हैं यह देखकर मुसलमानों के संदर्भ में हिन्दुओं का पक्ष कैसा न्यायी है वह सिद्ध करने के लिए अनेक प्रकार की जानकारी देने का निवेदन अंबेडकर ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री रामसे मेक्डोनाल्ड समक्ष गुप्त रूप से पेश किया।

अंबेडकर अस्पृश्यों के उद्धारक, संरक्षक और अभिभावक के रूप में अपनी समग्र शक्ति लगाकर धैर्य से लड़ने के लिए प्रेरणा देते थे। यह उनकी मुक्ति का अरुणोदय साबित हुआ था। ऐसे मूक तथा पददलित समाज के नेता का राजकीय प्रश्न के मामले इतना प्रभुत्व दिखाना और संविधानशास्त्र पर प्रभावशाली विवरण देना यह अत्याधिक महत्त्व की बात थी। अंबेडकर के द्वारा किए गए प्रयत्न अस्पृश्यों के हित में ही थे, किंतु संपूर्ण हिन्दु समाज के हित की दृष्टि से वह प्रयास उपकारक थे। जो लोग समानता, बंधुत्व एवं स्वातंत्र्य में विश्वास रखते थे। उन्होंने अंबेडकर

की माँगों को और अस्पृश्य वर्गों के लिए आरक्षित बैठकों तथा संयुक्त मतदार संघ को समर्थन देने के कार्य को पवित्र माना। लेकिन कांग्रेस के प्रवक्ताओं ने इन माँगों को समर्थन देने के बदले विरोध किया। इतना ही नहीं मुसलमानों की अन्यायी और दुष्ट बुद्धि से की गई माँगों के सामने नाक रगड़ा था।

अल्पसंख्यक समिति के समक्ष मुसलमान, इसाई, एंग्लोइन्डियन और यूरोपियनों ने एक निवेदन दिया, जिसमें माँग की गई की, किसी भी व्यक्ति को नौकरी, अधिकार-पद, नागरिक अधिकारों, धंधा या फिर व्यापार करने के अधिकार के आड़े उसका जन्मकुल, धर्म, जाति अथवा पंथ आने नहीं चाहिए। अस्पृश्यों को सरकारी नौकरी, सैनिकदल, पुलिसदल में नौकरी देनी चाहिए। पंजाब भूमि विभाजन के कानून का लाभ अस्पृश्यों को मिलना चाहिए। अंबेडकर और श्रीनिवासन ने एक निवेदन दिया कि अस्पृश्यों को उनकी जनसंख्या के प्रमाण में प्रांतीय तथा केन्द्रीय मंडल में विशेष प्रतिनिधित्व देना चाहिए, स्वतंत्र मतदाता संघ देना चाहिए तथा यदि सयुंक्त मतदाता संघ और आरक्षित बैठक रखनी हो तो बीस वर्ष बाद अस्पृश्य वर्गों का अवर्ण हिन्दु, प्रोटेस्टेंट हिन्दु अथवा नॉन कन्फर्मिस्ट हिन्दु के रूप में संबोधन किया जाए।

दूसरी तरफ अस्पृश्यों को स्वतंत्र मतदार संघ देना ऐसा उल्लेख अल्पसंख्यकों के करार में किया था। यह देखकर गाँधीजी क्रोधित हो गए। उन्होंने अल्पसंख्यक समिति को बताया कि, "हिन्दु, मुसलमान, सिख के बीच जो फैसला होगा वह कांग्रेस को स्वीकार्य होगा लेकिन अन्य अल्पसंख्यकों को विशेष प्रतिनिधित्व अथवा अलग मताधिकार देने में कांग्रेस का विरोध है। अस्पृश्यों के लिए पेश की गई माँग बहुत अयोग्य है और वह हमेश के लिए हानिकारक होगी। अंबेडकर की कार्यशक्ति के लिए मेरे मन में आदर है। किंतु उनके जीवन में जो कटु अनुभव हुए हैं उनसे उनका मन कलुषित हो गया है।"

उन्होंने तो जैसे अंबेडकर पर व्यंग्य की बारिश कर दी। "स्वयं को भारत के समग्र अस्पृश्यों के स्थान पर बोलने का अधिकार है, ऐसा कहना उचित नहीं है। इसके कारण हिन्दु समाज में जो बँटवारा होगा उसे देखते हुए मुझे यह बिलकुल उचित नहीं लग रहा है। इससे तो अस्पृश्य मुसलमान या इसाई बने तो भी मैं

उसकी परवाह नहीं करूँगा। मैं यह सहन कर लूँगा। परंतु प्रत्येक गाँव में, हिन्दुओं के दो समूह खड़े होते हैं तो हिन्दु समाज के नसीब में जो कुछ भी आएगा वह मैं देख नहीं पाऊंगा। जो लोग अस्पृश्यों के अधिकारों की बातें करते हैं उनको भारत का परिचय नहीं हुआ है तथा वे भारतीय समाज रचना के विषय में किसी भी प्रकार का ज्ञान नहीं रखते हैं। इसलिए मैं मेरी सर्वशक्ति एक करके कहता हूँ कि इस बात का विरोध करने का प्रसंग मुझ अकेले पर आएगा तो मैं अपनी जान पर खेलकर भी उसका विरोध करूँगा।"

यह एक प्रकार से गाँधी-अंबेडकर संघर्ष की चरमसीमा थी। अंबेडकर ने गाँधीजी के प्रत्युत्तर को टाल दिया, किंतु अंबेडकर का अस्पृश्य समाज में अपना वर्चस्व और राष्ट्रीय फलक पर अपना स्थान-इन दोनों की तुलना में उनको किसी कोने से अस्पृश्य समाज के अंबेडकर पर आए हुए संदेश तथा सभाओं, परिषदों में गाँधीजी विरुद्ध उठे विरोध देखकर अन्य नेता घबरा गए, लेकिन गाँधीजी अपनी जिद छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। एक व्यक्ति के विरुद्ध उनके विरोध को एक तरफ रखकर सर्व हिन्दु समाज का हित सिद्ध कर सकते थे, लेकिन ऐसा करने के बजाय वे समग्र हिन्दु समाज के बँटवारे को स्वीकार करने के लिए तैयार हो गए थे। यह थी उनकी एकता, अखंडितता के खोखले गुल-गपाड़े। आरक्षित बैठक और संयुक्त मतदान संघ देकर इस प्रश्न पर गाँधीजी पर्दा गिरा सकते थे और शायद राष्ट्रीय नेता के रूप में अस्पृश्य समाज में अंबेडकर के साथ समर्थन में हिस्सा ले सकते थे, लेकिन वे अंबेडकर के साथ समाधान करना चाहते ही नहीं थे। उन्होंने मुसलमानों को स्वतंत्र मतदाता संघ और स्वतंत्र प्रांत देने की शिफारिश की। यदि गाँधीजी ने इस समाज के विभाजन करने के फैसले के स्थान पर अंबेडकर को साथ दिया होता तो उनकी शक्ति दुगनी हो जाती और उस शक्ति का उपयोग मुसलामानों द्वारा की गए साम्प्रदायिक माँग का निकंदन करने में कर सकते थे।

इस प्रश्न का समाधान हो सकता था लेकिन गाँधीजी की इसके लिए कोई इच्छा ही नहीं थी यह गाँधीजी के निवेदन से साबित हो जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य एक घटना है, जो इस मामले को अधिक स्पष्ट करती है। अल्पसंख्यकों के प्रश्नों

के मामले में एक मत न होने की वजह से ब्रिटन के प्रधानमंत्री ने अपने सर्वानुमति से आयोग बनाने की लिखित सहमति देता हुआ प्रस्ताव परिषद् में पेश करने का सुझाव दिया।

१ दिसम्बर को परिषद् बर्खास्त की गई। उससे पूर्व गाँधीजी और अंबेडकर के बीच समाधान के लिए सर मिर्जा इस्माइल के निवासस्थान पर मीटिंग हुई। इसमें गाँधीजी ने नई और हास्यास्पद योजना रखी जो शायद भारत का कोई भी नागरिक स्वीकार करेगा नहीं। उन्होंने कहा कि, "संयुक्त मतदाता पद्धति अनुसार सार्वत्रिक चुनाव में खड़ा उम्मीदवार सवर्ण के सामने हार जाता है तो उसको कोर्ट में दावा करके यह साबित करना पड़ेगा कि, मैं मेरे विरुद्ध जीते हुए उम्मीदवार जैसी सभी प्रकार की योग्यता रखता हूँ, किंतु मैं सिर्फ अस्पृश्य समाज में से आता हूँ इसलिए चुनाव नहीं जीत पाया हूँ और सवर्ण समाज में से आने वाला प्रतिस्पर्धी उम्मीदवार चुनाव जीत गया है। यदि वो ऐसा सिद्ध करके देता है और न्यायालय उसके पक्ष में फैसला सुनाती है तो जीते हुआ उम्मीदवार का चुनाव रद्द करके अस्पृश्य उम्मीदवार को चुनाव जीता हुआ घोषित किया जाएगा।" ऐसे हास्यास्पद निवेदन और समाधान की योजना रखकर गाँधीजी ने समाधान की रही सही संभावनाओं पर पानी फेर दिया। ऐसा कथन देने के पीछे गाँधीजी का इरादा क्या था यह कहने की आवश्यकता नहीं है। साथ ही साथ यह कथन इस बात की भी पुष्टि करता है कि गाँधीजी के मस्तिष्क में अस्पृश्य समाज के प्रति किस प्रकार के विचार हैं। उपरोक्त वाक्य से साबित होता है कि अस्पृश्य समाज अस्पृश्य ही रहना चाहिए एसी उनकी विचारधारा थी।

गाँधीजी द्वारा परिषद में अस्पृश्य समाज के हित विरुद्ध के निवेदनों से भारत के अस्पृश्य समाज में रोष फैल गया। नतीजा यह आया कि भारत में आते ही उनका काले झंडे से विरोध करने का यहाँ के अस्पृश्य समाज ने तय किया था। दूसरी ओर कांग्रेस के कार्यकर्ता भी गाँधीजी का स्वागत करने के लिए तैयार थे। तकरीबन आठ हजार अस्पृश्य स्त्री-पुरुष मुंबई के बंदरगाह पर गाँधीजी के मार्ग पर बैठ गए थे। २८ दिसम्बर को गाँधीजी मुंबई बंदरगाह उतरे उनका स्वागत

काले झंडे दिखाकर किया गया। दूसरी ओर कांग्रेस के कार्यकर्ताओं के द्वारा भी स्वागत करने का कार्यक्रम था। दोनों पक्ष में अहिंसा के पुजारी का स्वागत और विरोध के प्रश्न पर बड़े पैमाने पर हिंसा हुई। इस घटना ने भी कांग्रेस के अन्य बड़े नेताओं की मानसिकता को खुला कर दिया, क्योंकि इन्हीं कांग्रेसियों द्वारा अंबेडकर को अहमदाबाद प्रवास के वक्त काले झंडे दिखाए गए थे तब अंबेडकर समर्थक कार्यकर्ताओं द्वारा उसको सामान्य घटना माना गया था। लेकिन आज जब गाँधीजी को काले झंडे दिखाए गए तब कांग्रेस के नेता द्वारा हिंसा से जवाब दिया जा रहा था।

अहमदाबाद में सफाई कर्मचारियों का संगठन बनाया गया था। उसके परिणाम स्वरूप सफाई कर्मचारियों द्वारा उन पर हो रहे शोषण विरुद्ध उनके हक और अधिकार के लिए दो दिन का सत्याग्रह किया गया। किसी भी आंदोलन में सत्याग्रह का शस्त्र देश को देने वाले गाँधीजी ही थे। कर्मचारियों की माँग थी कि लोगों के घर का मैला उठाने वाले वाल्मीकि समाज के भाई-बहनों को योग्य प्रमाण वेतन में मिले। वे बापू के पास आशीर्वाद लेने गए कि, "यदि आप सहयोग देते हो तो हमारा सत्याग्रह सफल होगा।" उनकी माँग न्यायिक थी। लेकिन बापू द्वारा उनको प्रोत्साहन मिलने के स्थान पर तिरस्कार सहन करना पड़ा और उनको कहा गया कि, "सर्वप्रथम तो आप यह सत्याग्रह वापस ले लीजिए और सवर्णों की माफी मांगिए।" (अर्थात् फरियादी को ही मुलजिम मानकर सजा सुनाई गई।) सत्याग्रहियों ने माफी माँगने से स्पष्ट इनकार कर दिया।

४ जनवरी, १९३२ के दिन अंबेडकर लंदन वापस आए और १५ जनवरी, १९३२ के दिन वे भारत आने के लिए निकले। २९ जनवरी, १९३२ के दिन मुंबई बंदरगाह उतरते ही उनका भव्य स्वागत हुआ। उसी दिन ११४ संस्थाओं की ओर से अंबेडकर को सम्मानपत्र दिया गया।

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने सम्मान के जवाब में कहा कि, "गोलमेजी परिषद् में जो सफलता मिली है उसका श्रेय मुझे नहीं, अपितु यहाँ एकत्र हुए मेरे असंख्य भाई-बहनों को है। नेता प्रयास करे तो उसे उसके अनुगामियों की तरफ से एकमत और

संपूर्ण एकता से समर्थन मिलना चाहिए। आप अपने हृदय में जागृति, स्वाभिमान तथा स्वातंत्र्य का दीप निरंतर जलाए रखिए। मैं मनुष्य हूँ, मुझसे भी गलतियाँ हुई होगी। मैंने पक्षपाती वृत्ति भी रखी होगी। इसके लिए मैं क्षमायाचना चाहता हूँ। मैंने गाँधीजी का विरोध किया इसलिए कांग्रेस वालों ने मुझे देशद्रोही करार कर दिया। मैं ऐसे आरोपों से जरा भी नहीं डरता हूँ। मेरा मन कहता है कि, यह आरोप झूठे, द्वेषयुक्त और निराधार हैं। मेरे बंधुओं को गुलामगीरी से मुक्त करने के उच्च ध्येय का, खुद को महात्मा कहलाने वाले व्यक्ति अत्यंत विरोध करता है यह दुनिया की दृष्टि से चमत्कारिक है। गोलमेजी परिषद् के कार्यों को ठंडे दिमाग से अच्छे तरह सोचने के बाद हिन्दुओं की भावी पीढ़ी के लिए मैंने राष्ट्र का संपूर्ण दोषरहित काम किया है, वे लोग ऐसा अभिप्राय देंगे ऐसा मुझे भरोसा है। आप मुझे देव का दर्जा मत दीजिएगा, किसी भी व्यक्ति को देव का दर्जा देकर दूसरों का उनके पीछे आँख बंद करके दौड़ना उसको मैं कमजोरी का लक्षण मानता हूँ। उसके बाद लंदन में गाँधीजी के साथ की मुलाकात एवं गाँधीजी ने आगाखान को कुरान की कसम देकर अस्पृश्यों की माँगों को समर्थन देंगे नहीं, ऐसी विनती कैसे की थी उसकी जानकारी डॉ. अंबेडकर ने इस सभा में दी थी।

मतदाता का अधिकार तय करने वाली समिति के अध्यक्ष थे श्रीमान लोथियन। अत: वह समिति लोथियन समिति के नाम से पहचानी गई। यह समिति के कार्य में हिस्सा लेने के लिए अंबेडकर दिल्ली पहुँचे। रास्ते में करीबन प्रत्येक स्टेशन पर जनता द्वारा उनका भव्य स्वागत हुआ।

लोथियन समिति के विरुद्ध अंबेडकर तरफी विचारधारा रखने वाले नेता ने संयुक्त मतदाता संघ का विरोध किया और स्वतंत्र मतदाता संघ की माँग की। लोथियन समिति का कार्य १ मई, १९३२ के दिन पूर्ण हुआ। लोथियन अंबेडकर के साथ कुछ बात करना चाहते थे। अत: वे शिमला में दो दिन ज्यादा रुक गए। अंबेडकर ने एक स्वतंत्र निवेदन लोथियन समिति को दिया। आखिर में लोथियन कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। जिसमें उन्होंने १९१६ में नियुक्त सर हैनरी सार्प (जो उस समय भारत के शिक्षा निर्देशक थे।) की कमिटी द्वारा लिए गए फैसले

जो आज पर्यंत लागू थे, उसके अनुसार साउथ बरो मताधिकार विचार समिति द्वारा समग्र अस्पृश्यों को वन्य जाति और आदिवासी जाति में शामिल किया गया था परंतु लोथियन समिति ने अस्पृश्य समाज की जातियों का 'डिप्रेस्ड क्लास' अर्थात् 'अस्पृश्य वर्ग' ऐसा अर्थगठन किया। यह अंबेडकर की जीत थी।

२६ मई, १९३२ के दिन अंबेडकर पुन: इंग्लैंड जाने के लिए निकले। यह प्रवास बहुत गुप्त रखा गया। ताकि किसी को पता न चले कि अंबेडकर इंग्लैंड क्यों जा रहे हैं। वहाँ उन्होंने पुन: एक बार अपनी बातों को पेश करके अस्पृश्य समाज का हित होना चाहिए, ऐसा उद्देश्य घोषित किया। जून महीने में लंदन पहुँचने के साथ ही वहाँ के छोटे-मोटे अधिकारियों, केबिनेट प्रधानों इत्यादि से मिले और २२ पृष्ठों का निवेदन सुप्रत करके अपनी माँगों को पेश किया। स्वास्थ्य नादुरस्त होने से जर्मनी में रहे। स्वास्थ्य में सुधार होते ही बर्लिन से वियतनाम होकर वेनिस गए तथा वहाँ से मुंबई वापस आए। १७ अगस्त को वे मुंबई वापस आए, उसके तीन दिन पहले अर्थात् १४ अगस्त, १९३२ के दिन ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने अल्पसंख्यकों के प्रश्न के विषय में अपना फैसला दिया। उसके अनुसार अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षित स्थान द्वारा अपने प्रतिनिधि को चुनने का अधिकार देकर दोहरे मतदान का अधिकार दिया था। इस तरह ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने भारत में स्थायी रूप में लड़ाई के बीज बो दिए थे। क्योंकि मुसलमान, इसाई, सिख, यूरोपियनों को अलग स्वतंत्र मतदाता संघ दिया गया था।

इसके कारण भारत की राजनीति उबलते लावे की स्थिति में आ गया। गाँधीजी जैसे भारत आए कि ब्रिटिश सरकार ने उनको गिरफ्तार करके ४ जनवरी के दिन यरवदा जेल में भेज दिया। क्योंकि, गाँधीजी ने प्रतिज्ञा ली थी कि स्पृश्य हिन्दुओं से अस्पृश्य हिन्दु को अलग न माना जाए। साथ ही साथ उन्होंने ब्रिटेन में धमकी दी थी कि यदि अस्पृश्यों को स्वतंत्र मतदाता संघ दिया गया तो हम अपने प्राणों का बलिदान देकर भी उसका विरोध करेंगे। गाँधीजी ने यरवदा में घोषणा की थी कि यदि अस्पृश्यों को स्वतंत्र मतदाता संघ की घोषणा पुन: नहीं ली गई तो मैं जेल में नमक डालकर सोड़ा का पानी पीकर अनशन करूँगा। अलबत्ता देखने की बात

तो यह है कि गाँधीजी को देश के टुकड़े करने के समान मुसलमानों, इसाई तथा सिखों के स्वतंत्र मतदाता संघ की घोषणा में कुछ भी गलत या अनशन में उतरने लायक दिखाई नहीं दिया। उल्लेखनीय है कि ब्रिटेन के प्रधानमंत्री को आयोग के रूप में सर्व सत्ता देने के प्रस्ताव पर गाँधीजी ने हस्ताक्षर किए थे, अंबेडकर ने नहीं।

अर्थात् गाँधीजी का यह फैसला बाध्य था मतलब सबके लिए बंधनकर्ता था। लेकिन उनको उसमें अपनी हार दिखाई देती थी। अंबेडकर स्पष्ट बताते है कि यह गाँधीजी की राजनैतिक जिद है। उनका युद्ध नैतिक नहीं है। तदुपरांत यह गाँधीजी का सत्याग्रह तो है ही नहीं। यदि गाँधीजी हिन्दुओं के हित के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाते हैं तो दलितों को भी लाचार होकर अपने हक की रक्षा के लिए इस युद्ध में प्रत्यक्ष रूप से सामने आना पड़ेगा।

गाँधीजी ने इंग्लैंड के प्रधानमंत्री को इस साम्प्रदायिक फैसले के विरुद्ध दिनांक १८-०३-१९३२ के दिन पत्र लिखकर बताया कि, 'अस्पृश्य समाज को दिया गया अलग मताधिकार से हिन्दु समाज को काफी नुकसान होगा। यह उनके और हिन्दु धर्म के लिए घातक साबित होगा।'

इंग्लैंड के प्रधानमंत्री ने गाँधीजी के इस पत्र का जवाब विस्तार से और प्रभावपूर्वक दिया है। उन्होंने बताया कि, "सरकार ने यह फैसला लेने से पहले अनेक पहलुओं पर विचार किया हैं। दलित इस फैसले से हिन्दु से अलग नहीं होते हैं। लेकिन हिन्दु जाति में उनका स्थान स्थिर रहे इसलिए दूसरा मत देने का अधिकार उनको दिया गया है। इस मताधिकार के कारण सवर्ण हिन्दु उमीदवार भी अस्पृश्य मतदाताओं के पास मत की याचना करने जाएगा, उनके बीच समन्वय होगा और इस तरह हिन्दु जाति की एकता कायम रहेगी। हकीकत तो यह है कि दलित आज तक नर्क की यातना सहन करते आ रहे हैं। उनको अब से सरकारी योजना के कारण उनके स्थान पर बोलने वाला उनका प्रतिनिधि चुनने का जो हक मिल रहा है उसके विरुद्ध आपका यह अनशन वास्तव में जोखिमी व्यवहार है।" इस जवाब के साथ एक विदेशी व्यक्ति दलितों का दर्द समझ सका, परंतु महात्माजी न समझ सके इस बात का रंज इतिहास को हमेशा रह गया।

गाँधीजी की जान बचाने के लिए कांग्रेस के नेता घबरा गए। दूसरी तरफ इस फैसले को बदलने के लिए १९ सितम्बर को मुंबई में एक परिषद् बुलाने की घोषणा पंडित मदनमोहन मालविया ने की। उन्होंने अंबेडकर को इस परिषद् के लिए निमंत्रण दिया। क्योंकि ब्रिटेन के प्रधानमंत्री के इस फैसले में यदि किसी की माँग का स्वीकार किया गया है तो वह है अंबेडकर। अत: यह फैसला बदलना हो तो अंबेडकर को साथ में रखना पड़ेगा क्योंकि अंबेडकर ने इसको प्राप्त करने के लिए आकाश पाताल एक कर दिए थे। यद्यपि उनको साथ रखना यह कांग्रेस की मजबूरी थी।

कांग्रेस को साथ देने और उसके नतीजा क्या हो सकता है, इसके बारे में अंबेडकर अच्छे जानते थे। उन्होंने पुणे में राज्यपाल से मिलकर उनका अभिप्राय जानने का प्रयास किया। उन्होंने एक निवेदन दिया कि, "मुझ तक सीमित रहकर बोलना है तो मैं किसी भी बात मान्य रखूँगा। लेकिन मेरे अस्पृश्य वर्ग के अधिकार कम करने की बात को मैं मान्यता नहीं दूंगा। विषय की निश्चित कल्पना नहीं हो तो परिषद् बुलाने का कोई अर्थ नहीं।"

इस मामले में प्रत्येक स्थान पर अंबेडकर ने अपनी यहीं भूमिका स्पष्ट की। अंबेडकर को समझने के लिए नेताओं की कतार लगने लगी। समग्र देश में शायद प्रथम बार अंबेडकर का कितना महत्त्व है यह पहली बार साबित हो रहा था। उन्होंने यह भी कहा कि, "गाँधीजी ने अपनी योजना के बारे ब्रिटिश मंत्रिमंडल समक्ष विचार रखकर इस विषय पर उनके साथ चर्चा करनी चाहिए थी, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया अत: इस मामले में गाँधीजी स्वयं ही दोषित हैं।" अंबेडकर एक अदालत के मुकद्दमे में अत्याधिक व्यस्त थे। उनको मिलने के लिए ठक्करबापा गए। उन्होंने ठक्करबापा से पूछा कि, "उनका काम कितने समय में पूर्ण हो जाएगा?" तो ठक्करबापा ने उत्तर दिया कि, "एक घंटा लगेगा।" अंबेडकर ने कहा कि, "मैं पाँच मिनिट का ही समय निकाल सकूं ऐसा हैं।" ठक्करबापा ने ज्यादा समय देने की विनती की, लेकिन अंबेडकर घर में चले गए। अंबेडकर का ऐसा व्यवहार उनकी छवि के लिए नुकसानकर्ता साबित हुआ। उनकी विरुद्ध के प्रचार अभियान

के कारण यह बात अधिक वेग के साथ फैल गई।

उन्होंने इस प्रचार अभियान का एक निवेदन द्वारा उत्तर दिया। उसमें उन्होंने कहा, "गाँधीजी ने ऐसा गोलमेजी परिषद् में कहा था कि अस्पृश्य वर्ग का प्रश्न उनको विशेष महत्त्व का लगता नहीं। संविधान तैयार हुआ अर्थात् उस संविधान में अस्पृश्यों संबंधी परिशिष्ट जोड़ देने से सब ठीक हो जाएगा, ऐसा मुझे नहीं लगता है। गाँधीजी ने गोलमेजी परिषद में स्वतंत्रता की माँग का जो जयघोष किया था उस स्वतंत्रता की माँग के लिए ऐसा ही आत्मघाती सुझाव दिया होता तो अधिक न्यायिक रहा होता। गाँधीजी ने कम्युनल अवार्ड में से अस्पृश्यों को दिए हुए स्वतंत्र प्रतिनिधित्व को अपने बलिदान का कारण बताया यह दुखदायी और अचरज की बात है।"

"ऐसा नहीं हैं कि स्वतंत्र मतदाता संघ सिर्फ अस्पृश्यों को ही दिया हैं। यूरोपियन, हिन्दी, इसाई, एंग्लोइंडियन, मुसलमान तथा सिख इत्यादि सभी को दिया ही है। स्वतंत्र मतदाता संघ यदि मुसलमानों और सिखों को देने के कारण देश का बँटवारा होता तो अस्पृश्य वर्ग को स्वतंत्र मतदार संघ देने से हिन्दुस्तान विभाजित होगा यह कहना उचित नहीं है।" उन्होंने निवेदन को अधिक कठिन बनाते हुए बताया कि, "महात्मा कोई अमरत्व का ताम्रपत्र लेकर नहीं आए है। यहीं बात कांग्रेस संस्था को भी लागु पड़ती है। इस दुष्टबुद्धि से ही नहीं कहा गया ऐसा मान लेने से भी कोई अमर नहीं बन जाता। जिसका ध्येय अस्पृश्यता नष्ट करना, अस्पृश्यों का सामाजिक दर्जा बढाकर उनको हिन्दु समाज में शामिल कर देना था। ऐसे अनेक महात्माएँ इस देश में हो गए, लेकिन उनमें से सभी इस मामले में निष्फल गए। महात्मा आए ओर चले गए, लेकिन सिर्फ अस्पृश्य समाज जैसा था वैसा का वैसा ही रहा।" आज इस देश को आजाद हुए ६५ वर्ष बीत जाने के बाद भी हम देख सकते हैं कि अस्पृश्य समाज के प्रति अपवित्रता कम नहीं हुई है। परंतु उनके लिए आज भी आप चौराहे पर सुनते होंगे कि, "यह तो हरिजन है।" अदलित समाज के मस्तिष्क में अस्पृश्यों के प्रति आदर हो ऐसी मानसिकता अभी भी आई नहीं हैं और भविष्य में कब आएगी वह भी इस धरती पर जीने वाला व्यक्ति नहीं कह

सकता है। यदि डॉ. अंबेडकर की अलग मताधिकार की माँग स्वीकार की गई होती तो आज दलित समाज के नेता या कार्य करने वाले व्यक्ति ही चुनाव जीतकर समाज का, राज्य का एवं राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते, परंतु आज आजादी के इतने वर्षों के बाद भी वहीं स्थिति देखने को मिलती है।

यदि अलग मताधिकार की माँग स्वीकार की गई होती तो स्पृश्य समाज का अस्पृश्य समाज के पास जाना हो सकता था और अस्पृश्य समाज के बहुमूल्य समाज की दया या दान पर जीने के हालात पैदा नहीं हुए होते। स्पृश्य समाज को अस्पृश्य समाज पर आधार रखना पड़ता। जिससे इतने वर्षों में हम जो सामाजिक समरसता कर नहीं सके हैं उसके मीठे फल हम जल्दी प्राप्त कर सके होते, वह स्वीकार करना रहा।

१९ सितम्बर, १९३२ के दिन परिषद् का आरंभ हुआ। अध्यक्ष पद पर पंडित मदनमोहन मालविया थे। उनके पास डॉ. अंबेडकर बैठे थे। अध्यक्ष के स्थान पर अंबेडकर को विनती की गई कि आपको क्या कहना है। उन्होंने खड़े होकर बहुत ही शांति से माइक हाथ में लेकर शांत और गंभीर आवाज में बोलना शुरू किया, "गाँधीजी का अस्पृश्यों के विरुद्ध मृत्यु तक अनशन करना यह दुखद है। गाँधीजी के अमूल्य प्राण बचाने के लिए सभी के द्वारा प्रयास किए जाए यह जरूरी है, लेकिन गाँधीजी ने अपनी कोई स्पष्ट योजना बताई नहीं है जिससे इस मसले का हल निकालना बहुत विकट हो रहा है। गाँधीजी के पास से आप कोई वैकल्पिक योजना लेकर आइए तो उस विषय में चर्चा हो सके, किंतु एक बात तो अटल ही है। सिर्फ गाँधीजी के प्राण बचाने के लिए ही मेरे बंधुओं के हित विरुद्ध योजना होगी तो मैं उसमें साझेदार बनूंगा नहीं।" इस प्रकार का उत्तर सुनकर काफी लोगों को धक्का लगा।

यरवदा जेल में गाँधीजी को मिलने एक प्रतिनिधि मंडल गया था। जिसके नेता थे चुनीलाल। इस प्रतिनिधि मंडल को क्या कहना है, यह इस मामले पर विचार करने के लिए दूसरे दिन पुन: परिषद् बुलाई गई। चुनीलाल ने परिषद् में बताया कि, "अस्पृश्यों की आरक्षित बैठक रखने के लिए गाँधीजी का व्यक्तिगत विरोध

नहीं है।" अंबेडकर के बारे में वे क्या सोच रहे हैं ? यह प्रश्न पूछा गया। अंबेडकर ने कहा कि, "हम सब दुविधायुक्त मुश्किल परिस्थिति में आ गए हैं। मैं इस घटना में खलनायक साबित बनुं, ऐसा मेरे नसीब में आया है। परंतु आप ध्यान रखें कि मैं मेरे पुण्यकार्य से जरा भी पीछे नहीं हटने वाला हूँ। मैं मेरे अस्पृश्य वर्ग के साथ न्यायिक और संवैधानिक अधिकारों के मामले में विश्वासघात करूंगा नहीं। फिर भले ही आप मुझे पास के किसी खंभे से फाँसी पर लटका दें तो भी मुझे इतराज नहीं है। इससे अच्छा है कि आप गाँधीजी से एक सप्ताह तक उनका अनशन स्थगित रखने के लिए विनती कीजिए और उसके बाद इस प्रश्न का उत्तर खोजिए यहीं उचित है। यदि आप कोरे सिद्धांतवादी पंडित और देशभक्त हमको आपका अपना नहीं मानते हैं तो हमारे ऊपर संयुक्त मताधिकार थोपने का और आपके धर्म के साथ हमको चिपकाकर रखने का आपको कोई अधिकार नहीं हैं।" सभा में बैठे हुए नेताओं के लिए अंबेडकर का यह उत्तर, ऐसा व्यवहार दूसरे धक्के के सामान था।

परिषद् दूसरे दिन भी स्थगित रखी गई। प्रत्येक नेता ने अपनी तरफ से सिर्फ विचार-विनिमय किए। फिर भी कोई हल नहीं ला सके। एक दरखास्त ऐसी भी रखी गई कि अस्पृश्य तीन प्रतिनिधि का चयन करके भेजे उसके बाद तीनों में से एक को संयुक्त मतदाता द्वारा पसंद किया जाए। तब अंबेडकर ने कहा कि, "मैं मेरे विशेष विद्वानों से परामर्श करके फैसला बताउँगा। यह दरखास्त भी घुमा फिराकर वहीं लेकर जाती है कि उन तीनों प्रतिनिधियों में से हमको जो अनुकूल होगा, अर्थात् जो उम्मीदवार हमारा कहना मानेगा अथवा हम हमारी शर्तों पर उसको चुनाव में जिताकर हमारे पास रखेंगे, "ऐसा ही अर्थ होता है न" और इस योजना को भी रद्द कर दिया गया। आखिर में गांधीजी ने अपनी जिद नहीं छोड़ी और दिनांक २०, मंगलवार को दोपहर को यरवदा जेल से उपवास की घोषणा की। यह उपवास दलितों और अंबेडकर पर छोड़ा गया ब्रह्मास्त्र था। इस शस्त्र का यह परिणाम निकला कि दलित समाज और अंबेडकर के पर चारों तरफ से दबाव आया। अनेक राजपुरुषों ने अंबेडकर ऊपर बहुत मानसिक दबाव डाला। सामान्य

हिन्दु समाज आपे में नहीं रहा। वह उत्तेजित हो गया। कुछ लोगों ने अंबेडकर को खून से लिखे पत्र भेजकर धमकी दी। हरिभाई भट्ट नामक युवान ने पत्र लिखा जो 'जनता' पत्र में प्रकाशित हुआ, जो अक्षरश: इस अनुसार था।

– डॉ. अंबेडकर,

यदि आप चार दिन में महात्मा गाँधीजी की माँग को स्वीकार नहीं करोगे तो आपकी जान ले ली जाएगी। यदि आपको अपनी जान प्यारी है तो महात्मा गाँधीजी की माँग को स्वीकार करके उनको उपवास से जल्द से जल्द छुड़ाइए। यह आखिरी चेतावनी है। अब सभी लड़ाई छोड़ दीजिएगा वरना आपका खून कर दिया जाएगा।

– ली. हरिभाई के. भट्ट
बी.पी.इ.इ. के एक मेंबर और कार्यकर्ता

पुणे के गोगटे के रुढ़िवादी और प्रसिद्ध जनूनी युवाओं द्वारा अंबेडकर का खून करने के लिए गुप्त षड्यंत्र रचा गया। उनके मत से एक अंबेडकर खत्म हो जाते हैं तो सभी मुसीबतों का अंत आ जाता है। गाँधीजी के प्राण बच जाएंगे और दलितों सवर्णों के विरुद्ध बोलने बंद हो जाएंगे। इस षड्यंत्र की जानकारी शंकराचार्य को होते ही उन्होंने बताया कि आपके इस अविचारी दुष्कृत्य से एक अंबेडकर के रक्तबिंदु से अनेक अंबेडकर प्रकट हो जाएंगे। उसको आप या मैं रोक सकेंगे नहीं। अत: ऐसा कोई अघटित कदम ऐसे हालात में नहीं उठा सकते हैं।

इस नाजुक स्थिति में दलित समाज स्तब्ध हो गया। एक बार दलित कार्यकारों के बीच अंबेडकर बोल देते हैं कि, "वो लोग मुझे खत्म कर देंगे और उसके बाद वे आपके नेता बनेंगे" यह सुनकर संभाजी गायकवाड और दूसरे कार्यकर्ता रोने लगे। तब बाबासाहब बोले, "अरे ! हम तो सैनिकों के सपूत हैं। मुझे मौत का डर नहीं है लेकिन मौत मुझ से डरती है। रोने से प्रश्न का हल निकलेगा नहीं। चलिए हम सब साथ मिलकर दलित लोक जागृति लाएं।" कार्यकारों में पुन: नई चेतना आ गई थी। अब यह चेतना हम सब को संभलकर रखनी है।

अंबेडकर और दलित समाज पर इस धमकी का कोई असर नहीं हुआ। तब हिन्दु महासभा के अध्यक्ष डॉ. मुंजे अंबेडकर को समझाते हैं कि, "आप अलग मताधिकार के स्थान पर दूसरा जो कुछ माँगोगे वो देंगे।" इसका अंबेडकर ने उनकी ही तरीके से उत्तर दिया कि, "मैं दलित और सवर्ण के बीच का कोई दलाल नहीं हुं। मुझे व्यक्तिगत कुछ नहीं चाहिए। मुझे सिर्फ मेरे लोगों के हित की, भविष्य की चिंता हैं। मुझे दलितों का भला करना हैं। सत्ता, सम्पत्ति का कोई मोह नहीं। तत्पश्चात् अंबेडकर को समझाने के लिए कांग्रेसियों ने बहनों के एक समूह को भेजा। जिसमें कमला नहेरु, दादाभाई नवरोजी की पौत्री श्रीमती पेरिन केप्टन, श्रीमती हंसा महेता, कु. नटराजन इत्यादि थे। उन्होंने भावप्रधान तरीके से अंबेडकर को समझाने की कोशिश की। (यह शायद कांग्रेस का एक ओर हथियार होगा कि जो काम नेताओं से नहीं हो सका उसके लिए बहनों के पल्लू का सहारा लेना पड़ा।) इन सभी बहनों ने अंबेडकर को एक ही बात समझाने तथा मनाने की कोशिश की। "अंबेडकरजी, महात्मा गांधीजी के प्राण आपके हाथ में है।" तब दाक्षण्य दिखाते हुए अंबेडकर ने उनको बहुत सम्मान के साथ कहा, "आप लोग गाँधीजी के प्राण के साथ दलितों के प्राणों का भी विचार कीजिए। गाँधी को बचाकर दलितों को मार डालने की बात भी सही नहीं है। अत: कांग्रेस के नेताओं ने अंबेडकर पर साम, दाम, दंड, भेद सभी प्रकार अपनाकर देख लिया किंतु वे अपने ध्येय से जरा भी नहीं डिगे।

२१ सितम्बर, बुधवार को जयकर, मालविया, सप्रू, राजाजी इत्यादि नेता डॉ. अंबेडकर के समक्ष जो दरखास्त रखनी थी उसके बारे में चर्चा करने के लिए गाँधीजी के पास यरवदा जेल गए। गाँधीजी जेल में आम के पेड़ के नीचे चारपाई पर सोए थे। उनके पास सरोजिनी नायडू, देवदास, महादेवभाई देसाई, वल्लभभाई पटेल, प्यारेलाल बैठे थे। अंबेडकर को भी चर्चा करने के लिए तुरंत पुणे बुलाया गया। आसपास का वातावरण अत्याधिक गंभीर था। अंबेडकर आए और वातावरण के प्रभाव से भारी उलझन में पड़ गए। कोई सामान्य व्यक्ति होता तो इस परिस्थिति में गाँधीजी की प्रत्येक बात का स्वीकार कर लेता परंतु यह तो अंबेडकर थे, जिन्होंने

जन्म से आज पर्यंत पल-पल अस्पृश्य माँ की कोख से जन्म लेने की कठिनतम सजा भोगी थी और अभी तक भुगत रहे थे। उनके और दलितों पर हुए अत्याचार के विरुद्ध इस वातावरण का कोई महत्त्व नहीं था। अत: उन्होंने बहुत गंभीरतापूर्वक और सोच-विचार करके आगे बढ़ने का मुनासिब समझा।

अंबेडकर महात्मा गाँधी के पास आकार विनम्रतापूर्वक कहते हैं, "महात्माजी ! आप, हमारे साथ बहुत बड़ा अन्याय कर रहे हो।" गाँधीजी ने कहा, "मेरा नसीब ही ऐसा है कि मैं अन्यायी हूँ ऐसा लगता है, ऐसे प्रसंग मेरे जीवन में हमेशा आते हैं, जिसका कोई उपाय नहीं है।" अंबेडकर ने गाँधीजी को सभी परिस्थिति से वाकिफ किया और समझाया कि इस विशिष्ट अधिकारों की अनिवार्यता क्या है ? गाँधीजी उत्तर देते है, "डॉ. आपके प्रति मुझे हमदर्दी है। आप जो कह रहे हैं उसमें से काफी बातें मुझे योग्य लगती है। तदुपरांत आप ऐसा भी कहते हैं कि मेरे जीवन की आप अस्पृश्यों को जरूरत है।" अंबेडकर ने जवाब दिया "हाँ महात्माजी, यदि आप अपना जीवन अस्पृश्य वर्ग के हित के लिए खर्च करते हैं तो आप जरूर हमारे वीरपुरुष बनेंगे।" यह सुनकर गाँधीजी बताते हैं कि, "ठीक है, मेरी जान कैसे बचानी है यह आप जानते हैं। साम्प्रदायिक फैसले के अनुसार आप लोगों को मिले अधिकारों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं यह मैं जानता हूँ। मैं आपके द्वारा प्रस्तावित पेनल पद्धति मान्य रखता हूँ। पेनल में चर्चा होने के बाद फैसला लिया जाएगा।"

गाँधीजी ने अंबेडकर को कहा, "आप जन्म से अस्पृश्य हैं, मैं मन से अस्पृश्य हूँ। हम सब हिन्दु धर्म के एक ही अभिन्न और अविभाज्य अंग हैं। हिन्दु समाज में पड़ी हुई दरार को भरने के लिए मैं अपने प्राण भी अर्पण करने को तैयार हूँ।" अंबेडकर ने गाँधीजी के सुझाव को मान्य रखा। पेनल पद्धति में कितने उम्मीदवार होने चाहिए एवं प्रत्येक प्रांत से अस्पृश्यों की कितनी जगह आरक्षित रखनी और कितनी अवधि रखनी चाहिए इत्यादि मामलों के लिए २२ सितम्बर, गुरूवार को देर रात तक नेताओं के बीच चर्चा चली। प्रांत के लॉ काउन्सिल में १९७ सीट मिले ऐसी अंबेडकर की माँग थी। सामने के पक्ष की १२५ से ज्यादा एक

भी सीट देने की तैयारी नहीं थी। प्राथमिक चुनाव पद्धति तथा आरक्षण प्रथा के विषय में पुन: विचार और लोकमत लेने की समय मर्यादा बाँधने में भी भारी मतभेद हुए। अंबेडकर ने पूरे पंद्रह साल की समय मर्यादा की माँग की थी।

२३ सितम्बर को शुक्रवार था। उपवास के कारण शाम को गाँधीजी की स्थति बिगड़ने लगी। गाँधीजी के पुत्र देवदास की आँखों में आँसू आ गए। उसने सबको विनती की, "बापू की तबियत चिंताजनक हो रही है। आप सर्वमत के लिए जिद पकड़कर करार पर हस्ताक्षर करने में देर मत कीजिएगा।" अंबेडकर पुन: चुनिंदा नेताओं के साथ गाँधीजी के पास गए। तबियत बहुत खराब थी। आव़ाज इतनी क्षीण हो गई थी कि सुनना और समझना मुश्किल हो रहा था। डॉक्टर ने बोलने से मना किया था। पुन: एक बार अंबेडकर पर भावात्मक दबाव दिया जाने लगा कि, क्या हम अपनी खुले आँख से महात्माजी की जान जाते हुई देखेंगे ?

तब अंबेडकर ने कहा, "आप सब मुझे समझा रहे हैं और मुझे समझौता करने को कह रहे हैं तो आप सब लोग क्यों नहीं समझौता करते ? जब गाँधीजी के प्राण जाने को है तब भी आप अपनी बात पर अड़े हैं उसका क्या ? तदुपरांत चलिए हम पुन: गाँधीजी से मिलते हैं।" सब लोग रात को नौ बजे यरवदा जेल में पहुँचे। तब अंबेडकर ने कहा, "महात्माजी, अब आपको हमारी सहायता करनी पड़ेगी। ये मित्र लोकमत की समय मर्यादा पाँच वर्ष की दे रहे हैं। जबकि मैं पंद्रह वर्ष की माँग रहा हूँ।" तब गाँधीजी ने बीच का मार्ग निकालने बदले अंबेडकर को कहा कि, "आप पाँच वर्ष स्वीकार कर लीजिए या फिर मेरी जान ले लीजिए।" अंबेडकर ने विनती कि ठीक है हमें दस वर्ष दीजिए, फिर भी गांधीजी पाँच वर्ष को ही पकड़कर बैठे रहे। तटस्थ रूप से कोई भी व्यक्ति उपरोक्त घटना का मूल्यांकन करेगा तो वह यहीं कहेगा कि भावनात्मक दबाव द्वारा अपनी बात मनाने का यह एक जड़ तरीका है। आखिर में सप्रू और जयकर ने नया ही रास्ता निकाला। उन्होंने कहा कि, "अपने इस करार में समयावधि रखते ही नहीं हैं और दोनों पक्ष दलितों तथा सवर्ण हिन्दुओं को जब लगे तब करार के विषय में पुन: विचार कर सकते हैं। आखिर में यह बात दोनों पक्ष ने मान्य रखी।

२४ सितम्बर, १९३२ के दिन शाम को मसौदा तैयार किया गया। जो गाँधीजी को पूर्णत: पसंद आया। आनंदमय वातावरण खड़ा हो गया। सवर्ण हिन्दुओं के बदले पंडित मदनमोहन मालविया और दलितों की तरफ से डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने आमने-सामने हस्ताक्षर किए। इस करार ने भारत की आजादी के इतिहास में सवर्ण अक्षर से अपना स्थान अंकित कर दिया। इस करार को "पूना करार" के नाम से पहचाना जाता है। इस करार में अन्य नेताओं ने भी हस्ताक्षर किए। उसमें थे सर्व श्री तेजबहादुर सप्रू, मुकुंदराव जयकर, घनश्यामदास बिरला, सी. गोपालाचार्य, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, पी. एन. राजभोज, श्री निवासन, पी. बालू, गणेश अक्काजी गवई, एम. सी. राजा, रामेश्वर डी। बिरला, बी. एस. कामठ, डॉ. पी. जी. सोलंकी, जी. के. देवधर, अमृतलाल ठक्कर, आर. आर. भाखले, गोविंद मालविया, देवदास गाँधी, बी. आर. विश्वास एवं शंकरलाल बेंकर इत्यादि।

उसके बाद २५ सितम्बर के दिन मुंबई में अन्य १८ नेताओं के हस्ताक्षर इस करार पर लिए गए। इस प्रसंग की याद में राजगोपालाचार्यजी ने खुश होकर अपनी फाउन्टेन पेन अंबेडकर को दे दीया और अंबेडकर का पेन अपने पास रखकर इस प्रसंग की स्मृति को संभालकर रखा।

इस पूना करार में राज्य विधानसभा में कुल १४८ सीटें और स्पृश्य हिन्दुओं के स्थान से प्रांतीय विधानमंडल से १० प्रतिशत सीटें अस्पृश्य वर्ग को देने का तय हुआ। केंद्रीय असेम्बली के लिए दलित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में ब्रिटिश भारत की १८ प्रतिशत सीट आरक्षित रखी गई, सिर्फ दलित वर्ग के होने के नाते स्थानिक, प्रांतीय या केंद्रीय सरकारी नौकरी में नियुक्ति के वक्त उनके प्रति किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं रखा जाएगा। इसके बावजूद प्रत्येक विभाग में अनिवार्य योग्यता को लक्ष्य में रखकर दलित वर्गों की भर्ती करने के पूरे प्रयत्न किए जाएंगे। दलित वर्ग के उत्कर्ष के लिए हर प्रांत में योग्य और पर्याप्त संचित धन निश्चित किया जाएगा।

पूना करार से दलितों को साम्प्रदायिक फैसले से भी कम सुविधाएँ प्राप्त हुई। परंतु उसके सामने दलितों ने स्वतंत्र रूप से अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार

खो दिया। लेकिन उसके सामने सरकारी नौकरी में आरक्षित जगह मिली और शैक्षणिक सुविधाएँ प्राप्त हुई। अत: वास्तव में मानवता के हक प्राप्त हुए।

२५ सितम्बर, १९३२ के दिन मुंबई में पंडित मालवियाजी के प्रमुख स्थान से हिन्दुओं की सभा मिली, जिसमें डॉ. अंबेडकर को शुभकामनाएं देकर उनका धन्यवाद ज्ञापन किया गया। इस सभा में प्रस्ताव रखा गया कि अब से हिन्दु समाज में किसी को भी जन्म से अस्पृश्य नहीं माना जाएगा। अभी तब जिनको अस्पृश्य माना जा रहा था। उनको सार्वजनिक स्थलों जैसे कि कुआँ, तालाब, स्कूल, रास्तें और अन्य सभी संस्थाओं का उपयोग करने का अन्य हिन्दुओं के जितना ही अधिकार रहेगा। इस अधिकार को जल्द से जल्द कानून की मंजूरी दी जाएगी। यदि स्वराज मिलने तक में ऐसी मंजूरी नहीं मिली हो तो स्वराज की संसद का सर्वप्रथम कायदा यह कानून ही होगा। साथ ही साथ ऐसा भी प्रस्ताव रखा गया कि, वर्तमान में कथित अस्पृश्य वर्गों के ऊपर रुढ़ियों ने जो सामाजिक प्रतिबंध रखे हैं, वे सभी प्रतिबंध दूर करने का समग्र हिन्दु नेताओं का धर्म रहेगा।

सम्मान और शुभकामना का प्रतिभाव देते हुए डॉ. अंबेडकर ने कहा कि, इन दिनों मैं बहुत विकट धर्मसंकट से गुजरा हूँ। एक तरफ मुझे भारत की महान व्यक्ति गाँधीजी के प्राण बचाने थे और दूसरी तरफ मेरे दलित भाईयों के हक और हित की रक्षा करनी थी। मेरी समस्त शक्तिओं को काम में लगाकर गोलमेजी परिषद् से जो संरक्षण प्राप्त किया था उसे बचाना था। आज मुझे कहते हुए खुशी हो रही है कि, आप सबके सहयोग से तथा सप्रू, राजगोपालाचार्य जैसे नेताओं के सहयोग से हम ऐसा समाधान ला सके कि महात्माजी के प्राण बच गए और दलित वर्ग के हक-हितों का कुछ अंश तक भविष्य के लिए संरक्षण प्राप्त हुआ। चूँकि मैं तो महत्तम यश गाँधीजी को देता हूँ। गाँधीजी और मेरी भावनाएँ कई मामले में समान है, मुझे उसका आश्चर्य भी हुआ है। जब में कभी भी कोई उलझन आ जाती और उसकी जानकारी सर तेजबहादुर सप्रू द्वारा उनको दी जाती तब महात्माजी मेरे पक्ष में समर्थन देते थे। परंतु आश्चर्य तो वहाँ होता है कि, यदि इस व्यक्ति को गोलमेजी परिषद् में दलित वर्गों के अधिकार का इतना विरोध ना किया होता तो इस उपवास

की नौबत ही नहीं आती।

खैर ! जो होना था वो तो हो गया। परंतु आज मैं इस प्रस्ताव को समर्थन देने और आप सबको धन्यवाद देने के लिए खड़ा हुआ हूँ। हम सबकी तरफ से इस करार का पालन करने का विश्वास दिलाता हूँ, लेकिन मुझे भारी चिंता है कि क्या हिन्दु समाज इस करार का पालन करेगा सही ? सभागृह में बैठे सभी हाथ उठाकर दो-दो बार बोलते हैं कि, हाँ, हम पालन करेंगे। आखिर में मैं सर्व हिन्दु भाईयों को हृदयपूर्वक विनती करता हूँ कि, "पूना करार को पवित्र मानकर सदभावना और प्रमाणिकता से उसका अमल कीजिएगा।"

२६ सितम्बर, १९३२ के दिन पूना की यरवदा जेल में गाँधीजी की उपस्थिति में पंडित रविद्रनाथ ठाकुर ने "वैष्णव जन तो तेने रे कहिए ..." गाँधीजी का प्रिय भजन गाया। उसके बाद कस्तूरबा ने मोसंबी का रस पिलाकर गाँधीजी के उपवास छुडाए। पूना करार के बाद दलितों के लिए देवमंदिर, कुए, तालाब, धर्मशाला के द्वार खोले गए हैं एसी घोषणा दैनिकपत्रों ने की और अस्पृश्यता निवारण का सामाजिक समरसता के राष्ट्रयज्ञ का आरंभ हुआ। उसी दिन ब्रिटिश मंत्रिमंडल द्वारा 'पूना करार' के करार को ब्रिटिश आमसभा की तरफ से हस्ताक्षर-मुहर के साथ मंजूर किया गया। पुन: एक बार साबित हो गया कि अंबेडकर अस्पृश्य वर्ग के निर्विवादित, सर्वस्वीकार्य एकमात्र नेता हैं।

पूना करार के बाद पूना में दलितों का मिलन मेला आयोजित हुआ। जिसमें डॉ. अंबेडकर विशेष उपस्थित रहे। उस मेले में अंबेडकर दिल खोलकर कुछ बातें करते हैं कि पूना करार के पूर्व के मेरे दिन काफी कठिनाईयों से गुजरे हैं। मेरे समक्ष इतने दावपेंच खेले जा रहे थे कि उसमें जरा भी गलती न हो जाए उसके लिए हमेशा जाग्रत रहना पड़ता था। मेरी जान जोखिम में थी। अत: हमारे युवाओं को लगातार मेरे आसपास रहना पड़ता था। कांग्रेसी विद्वान मानसिक रूप से इतना दबाव दे रहे थे कि उनके लिए मैं इतना ही कह सकता हूँ कि, मेरे पीछे जैसे कि जयकर खंजर लेकर खडे थे और सामने जैसे कि सप्रू पिस्तौल रखकर खड़े थे। चूँकि इन दोनों मित्रों से मुझे जो साथ-सहयोग मिला है उसे भूलना नहीं चाहिए।

इस प्रकार, पूना करार हो गया। उसके अमल का आरंभ हो गया, लेकिन गाँधीजी के उपवास के आधार पर हुए करार के विषय में कई मतभेद भी सामने आए। जिसमें बेरिस्टर सप्रू ने अपनी आत्मकथा में पूना करार के प्रसंग के बारे में एकरार किया है कि, 'पूना करार बंदूक की नोंक पर किया था।'

गाँधीजी के बारे में सप्रू लिखते है कि पूना करार में गाँधीजी का व्यवहार अनुचित था। बंदूक की नोंक पर यह करार किया गया था। पूना करार में उनके नेताओं ने दस्तखत किए थे। उन्होंने ही बाद में इस करार का विरोध किया था। इन विरोधियों में कविवर रविन्द्रनाथ ठाकुर नेता के रूप में थे।

कांग्रेस का अस्पृश्य प्रेम तब सामने आया जब १९३७ में भारत में प्रथम बार चुनाव का आयोजन किया गया। तदुपरांत प्रत्येक प्रांत में कांग्रेस सबसे बड़े दल के रूप में उभर आया था। उसके बाद उसने तकरीबन हर प्रांत में मंत्रिमंडल बनाए। इसके लिए प्रतिक्रिया देते हुए अंबेडकर ने कहा कि, "कांग्रेस के द्वारा रचे गए इन मंत्रिमंडलों के नेता ब्राह्मण हैं और किसी भी मंत्रिमंडल में अस्पृश्य वर्ग को स्थान नहीं दिया गया है।" जो ऐतिहासिक निपट वास्तविकता है। चूँकि उसके बाद अंबेडकर ने निखालस होकर अपने मित्रों समक्ष स्वीकार भी किया कि, "गोलमेजी परिषद् के वक्त मुझे यह नहीं सूझा कि प्रत्येक मंत्रिमंडल में अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए।" वैसे भी यह बात महत्वपूर्ण थी। ७ अगस्त, १९३७ के दिन आयोजित स्वतंत्र मजदूर पक्ष की वार्षिक सामान्य सभा जो मुंबई के नागपाडा में नेबरहुड में आयोजित थी उस सभा में अंबेडकर पक्ष प्रमुख और कोषाध्यक्ष के रूप में नियुक्त किए गए।

इस समय के दौरान १९३८ में मध्यप्रांत (मध्यप्रदेश) के मंत्रिमंडल में आपातकालीन स्थिति पैदा हुई, वहाँ के मुख्यप्रधान डॉ. बी.ए. खरे को बागी साबित करके कांग्रेस के उच्च नेताओं ने उनको बखस्ति किया। डॉ. खरे ने अपनी भूमिका स्पष्ट करने के लिए जगह-जगह पर सभाओं का आयोजन किया। ऐसी ही एक सभा में १९३८ के अगस्त महीने में मुंबई में आयोजित हुई। डॉ. खरे की यह सभा तीन विभिन्न मसलों के कारण आकर्षण का केंद्र बनी थी। एक तो

सत्य के पुजारी ऐसे गाँधीजी ने डॉ. खरे के त्यागपत्र का मसौदा स्वयं लिखा है या उसे सुधारा है इस बात का इन्कार किया था। दूसरी बात यह थी कि डॉ. खरे ने गाँधीजी के इस झूठ को सबूत के साथ पेश किया। तीसरी बात यह थी कि डॉ. खरे ने मंत्रिमंडल में हरिजन सदस्य को स्थान दिया इस बात का गाँधीजी ने विरोध किया था। डॉ. मुंजे, डॉ. अंबेडकर, जमनादास महेता ने डॉ. खरे के दृष्टिकोण को समर्थन दिया था। विविध पहलूओं से देखा जा सकता हैं कि गाँधीजी के सभी कदम अस्पृश्य समाज विरुद्ध के थे। उसकी अस्पृश्य निवारण की बात तो सच में हाथी के दांत चबाने और दिखाने के अलग होते हैं वैसे ही थी और ऐसा व्यवहार उनका दलित समाज के साथ देखा जा सकता है।

१४ सितम्बर, १९३९ के दिन कांग्रेस विश्वयुद्ध में अन्य लोकतंत्र देशों के संरक्षण के लिए सहयोग देंगे ऐसी नीति जाहिर की। कांग्रेस की नीति अस्पष्ट होने के साथ-साथ अनिश्चित भी थी। कांग्रेस की यह अनिश्चित नीति के साथ अंबेडकर सहमत न थे। कांग्रेस संपूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व रखती है, ऐसा गाँधीजी का दावा अन्य दलों को मंजूर नहीं था। "इस प्रकार का दावा फासीवादी मनोवृत्ति का संकेत देता है जो भारतीय लोकतंत्र के लिए प्राणघातक साबित होगा।" ऐसा निवेदन दर्ज करके स्वातंत्र्यवीर सावरकर, नरसिंह चिंतामण केलकर, बेरिस्टर जमनादास महेता, सर चिमनलाल सेतलवाड़, सर कावसजी जहांगीर, सर विठ्ठलराव चंदावरकर ने और डॉ. अंबेडकर ने दस्तखत किए थे। विशेष में कहा कि अक्टूबर के प्रथम और दूसरे सप्ताह में ब्रिटिश वाइसरॉय लार्ड लिवलिथगो ने करीबन बावन जितने हिन्दुस्तानी नेताओं के साथ मुलाकात का आयोजन किया। जिसमें गाँधीजी, जवाहरलाल नेहरु, स्वातंत्र्यवीर सावरकर, जिन्ना, सरदार पटेल, राजेन्द्रबाबू, सुभाषचंद्र बोस और डॉ. अंबेडकर मुख्य थे। परंतु इस मीटिंग में कुछ विशेष नहीं हुआ।

मीटिंग के बाद वाइसरॉय ने निवेदन प्रकाशित किया। जिसका एक वाक्य ऐसा था कि युद्ध समाप्ति बाद मुख्य दलों की सहमति से हिन्दुस्तान की सरकार के शासन विषयक कानूनों में सुधार किया जाएगा और महत्त्व का राजकीय सुधार अल्पसंख्यकों की सहमति के बिना किया जाएगा नहीं। युद्ध काल में समग्र पक्षों

के प्रतिनिधियों की एक परामर्श समिति को नियुक्त किया जाएगा ऐसी घोषणा की गई। इस निवेदन को लेकर कांग्रेस का ऐसा मानना था कि निवेदन असंतोषजनक है। ब्रिटेन को दी गई सहायता का अर्थ उनकी साम्राज्यवादी नीति के साथ हम सहमत हैं ऐसा होगा। इसलिए कांग्रेस ने समग्र कार्यकर्ताओं को मंत्रिमंडल से इस्तीफा देने को कहा। अत: जिस नीति का तिरस्कार कांग्रेस करती थी वहीं नीति कांग्रेस ने जारी रखी थी।

अंबेडकर ने उसके विरुद्ध दिल्ली से एक निवेदन प्रसिद्ध किया कि, "गाँधी और कांग्रेस जब तक कांग्रेस बाहर की व्यक्तियों एवं पक्षों के विषय में अपने अहंकारी दृष्टिकोण का त्याग नहीं करेंगे तब तक अल्पसंख्यक का प्रश्न हल नहीं हो सकता। देशभक्ति सिर्फ अकेले कांग्रेसियों की बपौती नहीं हैं। कांग्रेस विचारधारा से अलग विचारधारा में मानने वाले व्यक्तियों को भी देशभक्ति का अधिकार है।"

मुस्लिम लीग ने कांग्रेस पर कई आरोप लगाए उसके विरुद्ध अंबेडकर ने कांग्रेस का बचाव करते हुए कहा कि, "मैं ऐसे आरोपों में विश्वास नहीं करता हूँ। कांग्रेस के शासन में मुसलमान भयभीत हुए हैं अथवा वे परेशान हुए हैं इस बात पर मुझे विश्वास नहीं है। अन्य अल्पसंख्यकों की तरह उनको भी राज्य प्रशासन में अपना खुदका योगदान होना चाहिए ऐसा उनको लगता हैं। हिन्दुस्तान का विभाजन करने की मुस्लिम लीग द्वारा की गई माँग का प्रभाव मुसलमानों के मन पर होता तो हिन्दुस्तान की अखंड रहने की आशा व्यर्थ है, साथ ही यदि दलित वर्ग अन्य धर्म का स्वीकार करता हैं तो उसकी जिम्मेदारी कांग्रेस पर रहेगी।"

उल्लेखनीय है कि कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन सन १९४० के अप्रेल में रामगढ़ में आयोजित हुआ था। देश की मानव शक्ति का बँटवारा करने के प्रयास की आलोचना की गई। उसी समय लाहौर में मुस्लिम लीग द्वारा आयोजित अधिवेशन में वायव्य सरहद और पूर्व के जिन प्रदेशों में मुसलमान बहुमत में हैं, वहाँ अलग स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की माँग की गई। अंग्रेजों के विरुद्ध मुसलमान शक्ति इस्तेमाल करने के लिए गाँधीजी ने कौमवादी अलिबंधुओं के नेतृत्व में जिन्ना के खिलाफ समर्थन दिया। नेहरु समिति द्वारा किया गया जिन्ना का अपमान

तथा कमाल पाशा के जीवन से जिन्ना का प्रेरणा प्राप्त करना एवं जवाहरलाल के द्वारा आयोजित मुस्लिम संगठन के कारण जीना में अहंकार जाग उठा। उन्होंने साम्प्रदायिक दिशा पकड़ी। स्वतंत्र मुस्लिम राष्ट्र बनाने की प्रतिज्ञा ली। जिन्ना का तेजोभंग राष्ट्रीयता का तेजोभंग साबित हुआ। इस धरती पर पाकिस्तान के जन्म लेने के बीज बोए जाने लगे।

पहली बार राष्ट्रीय सरकार बनाने का आयोजन किया गया। कांग्रेस के अन्य नेता किसी न किसी प्रांत से चुनाव जीतकर आए, इस प्रकार का आयोजन कांग्रेस के नेताओं द्वारा किया गया था।

डॉ. अंबेडकर के लिए प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु ने संसद में प्रवेश लेने के सभी दरवाजे बंद करवाए दिए। जिन्हें हम जिसे लौह पुरुष कहते हैं, ऐसे सरदार पटेल ने तो कहा था कि, "डॉ. अंबेडकर के लिए मैंने संसद के प्रत्येक दरवाजों पर तीन-तीन मन के ताले लगाए हैं।" इस बात से ज्ञात होता है कि डॉ. बाबासाहब अंबेडकर जैसे शक्तिशाली नेता और महामानव को तब कोई समझने के लिए तैयार नहीं था।

परंतु कोलकाता से जोगलेकर के ध्यान में यह बात आते ही उन्होंने पश्चिम बंगाल से डॉ. अंबेडकर को राज्यसभा के माध्यम से संसद में सम्मान के साथ बिठाया। डॉ. बाबासाहब अंबेडकर की ताकत, आभा और दलीलों से पूरी कांग्रेस डरती थी। राष्ट्र की समस्या का हल लाने के स्थान पर कांग्रेस अस्पृश्य समाज की पीड़ा को आवाज देने वाले एक राष्ट्रभक्त डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के लिए कैसी भावना रखती थी और कितना प्रेम करती थी यह देखाई देता है। कांग्रेस द्वारा डॉ. बाबासाहब अंबेडकर को येन-केन प्रकार से संसद में प्रवेश करने से रोकने की अधीरता से एक बात साबित होती है कि हिंदुस्तान के समस्त वर्गों का समाज डॉ. बाबासाहब अंबेडकर में रही शक्ति का उपयोग राष्ट्र के निर्माण के लिए करना चाहता था। जो समय चलते हम देख सकते हैं। डॉ. अंबेडकर ने इस राष्ट्र को विश्व का श्रेष्ठ संविधान सिर्फ अठारह महीने में दिया था। वो भी अनेक प्रकार के विध्नों को दूर करके। इससे डॉ. बाबासाहब अंबेडकर जो कहते थे वह साबित

होता है। वे कहते हैं कि, "मैं अकेला पाँच सौ डिग्रीधारियों के बराबर हूँ।" यह वाक्य उनके जीवन के दौरान के कार्य इत्यादि के अनुभवों द्वारा उनमें रही अथक शक्ति से हमको वाकिफ करता है।

उन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक प्रकार की अपत्तिओं पर जीत हासिल की थी। अभी हार्वर्ड युनिवर्सिटी द्वारा विश्व की १००० विभूतिओं का चयन करके विश्व के समग्र देशों से महानुभावों के बारे में अभिप्राय लिया गया। जिसमें प्रथम क्रम पर भगवान गौतम बुद्ध रहे थे और चौथे क्रम पर डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने बाजी मारी थी। यदि इस बात का गौरव भारत लेना चाहे तो ले सकता है। लेकिन दुर्भाग्य की बात तो यह है कि इस महामानव को इतनी बड़ी उपाधि देने में विश्व की प्रख्यात युनिवर्सिटियों ने पहल की, किंतु भारत उसमें कहीं नजर नहीं आता। अत: जिसके लिए गौरव लेना होता है उस प्रकार के अवसर आए, लेकिन घटना का गर्व के साथ प्रचार-प्रसार करने में हमारी बहुत बड़ी कमी रह गई। इन सभी बातों से यह साबित होता हैं कि, डॉ. अंबेडकर ने विश्व की समग्र विभूतियों को पीछे छोड़ दिया है। उन्होंने जो भी कार्य किए उसके आधार पर उनका चयन विश्व के महान कार्य करने वालों की सूची में है।

इस तरह १३२ करोड़ की जनसंख्या धारण करने वाले भारत देश से सिर्फ दो महाविभूतियों का चयन हुआ। जिसने देश और दुनिया को मार्ग दिखाया हैं। एक ने धर्म की दिशा विश्व को दी जिसमें कोई उंच-नीच नहीं है। मनुष्य मात्र एक है। वे भगवान बुद्ध थे जिन्होंने, "बुद्धम् शरणम् गच्छामि" का मंत्र दिया।

जबकि दूसरे थे डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर। जिन्होंने विश्व को दिशा दर्शन कराए कि आप कितने भी गरीब, सामान्य परिवार में जन्मे हो; फिर भी आपके विचार, आपके कड़े परिश्रम के कारण दुनिया के पास आपकी श्रेष्ठता का स्वीकार किए बिना और कोई चारा नहीं है। जिसका जीता-जागता उदाहरण यदि किसी को लेना हो तो डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के जीवन से ले सकता है। यह बात भारत में बसने वाले सभी को किसी तरह का संदेश दे रही है ? स्वाभिमानी डॉ. अंबेडकर ने कभी अपने अस्पृश्य बंधुओं के लिए दया या भीख की माँग नहीं की। दीनता,

मजबूरी, उपकार पर आधारित समता उनको मान्य नहीं थी। इन बातों से स्पष्ट होता हैं कि, डॉ. बाबासाहब अंबेडकर उनके दृढ़ संकल्प और विचारों के कारण भारत की महान विभूतिओं एवं विश्व की महान विभूतियों को पीछे रखकर, विश्व के महानायकों में प्रस्थापित हुए थे। सोचने पर लगता है कि राष्ट्र के राजनैतिक दलों ने, राष्ट्रीय नेताओं ने दिव्य शक्तिधारक महापुरुष डॉ. अंबेडकर के साथ अन्याय किया है यह स्पष्ट दिखाई देता है।

वे अखंड भारत के हिमायती, राष्ट्रवादी देशभक्त थे। भारतीय संविधान के शिल्पी, नारीमुक्ति के दाता, कुशल राजनीतिज्ञ, आधुनिक स्मृतिकार, बौद्ध धर्म के महान धर्मप्रचारक, मेधावी बुद्धिप्रतिभा के धनी डॉ. बाबासाहब अंबेडकर विश्वआकाश के नभोमंडल के तेजस्वी सितारे, भारतभूमि के जन्म धारण करके एक युगावतारी, युगप्रवर्तक के रूप में प्रकट हुए थे।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर द्वारा समाज जागृति के लिए अनेक प्रकार के लोकसंघर्षों के द्वारा समाज को दिशा दी गई जिसके मुख्य उदाहरण देखें तो चवदार तालाब का अभियान हो या फिर कालाराम मंदिर प्रवेश का आंदोलन दोनों प्रकार के आंदोलनों में समाज के बुद्धिजीवी वर्ग, साहित्यकारों, चिंतकों इत्यादि के विरुद्ध अंबेडकर के अलावा लोगों या फिर अन्य आंदोलनकारियों द्वारा जिस प्रकार से डंके की चोट पर विचार रखे जाने चाहिए उस प्रकार से शायद विचार रखे नहीं गए। क्योंकि जब समाज को जोड़ने और आगे ले जाने के इस प्रकार के आंदोलन चल रहे थे तब भी ब्राह्मणों और सनातनवादियों मठों और मंदिरों की चिंता से बाहर नहीं आए थे। शायद ये विचार अत्यधिक प्रबल तरीके से एक साथ समाज के प्रत्येक वर्ग समक्ष रखे गए होते तो शायद आजादी के पहले ही भारत सामाजिक समरसता के लक्ष्य को पा चुका होता एवं आजादी भी जल्दी मिल गई होती और समाज के विघटन में जितनी शक्ति खर्च हुई उतनी संगठन और विकास में खर्च की गई होती, तो शायद भारत महासत्ता बन चुका होता। आज राष्ट्र समक्ष अनेक प्रकार के जो प्रश्न खड़े हैं उसका भी उद्भव नहीं हुआ होता। परंतु यह सब अब इतिहास के पृष्ठों में अंकित हो चुका है।

आज देश के कई पहल करने वाले राज्यों में भी दलितों पर अत्याचार हो

रहे हैं। उनको गाँव प्रवेश में तकलीफों का सामना करना पड़ रहा है। अस्पृश्य समाज की माँ-बहनों को बच्चे के जन्म जैसी नग्न स्थिति में रखा जाता है, तब स्वाभाविक विचार आता है कि आजाद भारत के आंदोलन की सदियों पहले से अस्पृश्य समाज के सुधारकों जैसे महात्मा फुले, डॉ. अंबेडकर, गाँधीजी या फिर अन्य समाज सुधारकों के द्वारा शुरू किए गए आंदोलन हों, आज भी इस तरह की घटना घटित होने के पीछे का कारण क्या है ? आज कानून हैं, व्यवस्था है। दलितों और सवर्णों सभी के मतों से चुनी गई संविधान में विश्वास रखकर उसके दर्शाए हुए सिद्धांतों का पालन करने वाली सरकारें हैं। या फिर अस्पृश्यता निवारण आंदोलन परिणाम शून्य और खोखले, सिर्फ करने की खातिर किए गए आंदोलन थे, ऐसे साबित हुए हैं। यह किसी व्यक्ति की कही हुई बात नहीं है, लेकिन इतिहास के सबूत के रूप में प्रसिद्ध हुई हकीकतें हमारे समक्ष हैं।

डॉ. अंबेडकर और आजादी के बाद भारत के
राष्ट्रपति बने वी. वी. गिरि, बाबू जगजीवन राम इत्यादि...

कांग्रेस के बारे में डॉ. अंबेडकर कहते थे "सभ्यपद मान्य रखते वक्त अस्पृश्यता को नष्ट करने की शर्त कांग्रेस के सदस्यों के लिए रखी नहीं गई। गाँधीजी ने अस्पृश्यता विरुद्ध आंदोलन भी आरंभ नहीं किए। अस्पृश्य और स्पृश्य इन दोनों समाज के बीच प्रेमभाव बढ़े इसके लिए भी गाँधीजी ने उपवास नहीं किए। सरकार और राष्ट्रीय सभा पर अस्पृश्यों को विश्वास रखकर बैठे नहीं रहना चाहिए। अपना मार्ग खुद ही ढूँढना चाहिए और अपना भविष्य बनाना चाहिए। अपनी शिकायत पेश करने के लिए एक मध्यवर्ती संस्था होनी चाहिए। अनादिकाल से अस्पृश्य लोग गूँगे रहे हैं। अपनी गरीबी के विषय में अपनी सरकार और सुधारकों के सिर पर दोष की टोकरी नहीं डाल देनी चाहिए। राष्ट्रीय सभा कोई पार्टी नहीं हैं। यह तो एक आंदोलन है, हलचल है। जब संकट का समय आयेगा तब राष्ट्रीय सभा के बहुसंख्यक नेता उच्च वर्ग की छावनी में दिखाई देंगे, वे गरीब जनता के लिए संघर्ष करेंगे नहीं।"

डॉ. अंबेडकर और दलीय राजनीति

सन १९३६ में धर्म परिवर्तन करने की घोषणा करने के बाद उन्होंने धर्म परिवर्तन के लिए जिन कारणों और अस्पृश्यों की स्थति सुधारने के लिए जो शस्त्र हाथ में लेने का आह्वान किया था, उस राजनैतिक ताकत को खड़ी करने के मार्ग पर उन्होंने सोचना आरंभ कर दिया। उनको इसके लिए योग्य मौका भी मिल गया था।

सन १९३7 के प्रारंभ में 'गवर्मेन्ट ऑफ इन्डियन एक्ट-१९३५' तहत प्रांतिक स्वराज्य व्यवस्था धारण करने वाला नया संविधान अमल में आया। उस संविधान के आधार पर चुनाव होने वाले थे। अंबेडकर ने इसके लिए चर्चा-विचार के अंत में १९३६ के अगस्त महीने में 'स्वतंत्र मजदूर पक्ष' की स्थापना की। उन्होंने दलित, शोषित, मजदूर, दबे-कुचले वर्ग के लिए अपने पक्ष के विचार और इस वर्ग के उत्थान के लिए उनके पक्ष के कार्यक्रमों की घोषणा की थी।

कार्यक्रमों की समीक्षा करते हुए एक दैनिकपत्र ने लिखा कि, "यह अखबार राजकीय पक्षों को बढ़ाने की तरफदारी नहीं करने के बावजूद ऐसा जरूर मानता है कि, अंबेडकर द्वारा खड़ा किया पक्ष देश के जीवन को विकसित करने तथा भविष्य को बनाने में सहायक हो सके ऐसा है। एसे पक्ष की देश को जरूरत है इसलिए मौके भी बहुत हैं।"

अपने दल की योग्य रचना करने के बाद रिलैक्स होने के लिए अंबेडकर जिनेवा होकर यूरोप गए। उससे पहले उन्होंने एक साक्षात्कार में कांग्रेस के बारे में कहा कि, "कांग्रेस शोषणकर्ता और शोषितों के मध्य के संधान से खड़ी एक संस्था है। यह बात राजकीय स्वातंत्र्य सिद्ध करने के उद्देश्य के लिए शायद जरूरी होगी, परंतु सामाजिक पुनर्रचना के हेतु यह बिलकुल निरुपयोगी है।"

साथ ही अपने दल के विषय में कहा कि, "उनका दल सामान्य जनता को लोकतंत्र के विषयक शिक्षा देगा और उनके समक्ष तर्कशुद्ध तथा सच्चा राजकीय मत प्रस्तुत करके विधानगृह के द्वारा राजकीय प्रगति करने के लिए उनको संगठित

बनाएगा।"

डॉ. अंबेडकर विदेश प्रवास के बाद जैसे भारत आए कि तुरंत उन्होंने चुनाव की तैयारी और पार्टी का प्रचार आरंभ कर दिया। क्योंकि उनको वर्षों पुरानी कांग्रेस के विरुद्ध एक नयी पार्टी का नेतृत्व करना था। हकीकत तो यह थी कि मुंबई प्रांतिक विधानसभा की १७५ में से सिर्फ १५ ही सीट आरक्षित थी और १७५ विरुद्ध १५ सीटें विरोध पक्ष के लिए बहुत कम थी। इसलिए उन्होंने अपनी लड़ाई में साथ देने वाले सवर्ण समाज के मित्रों के साथ चर्चा-विचार करके सामान्य बैठक जिस पर कोई भी खड़ा हो सकता है, ऐसी बैठक पर अपने पक्ष के उम्मीदवार खड़े कर दिए। कई सीट पर निर्दलीय उम्मीदवार को समर्थन दिया। इस प्रकार अपने उम्मीदवार की आरक्षित सीट पर और सामान्य सीटों पर जीतने के ज्यादा से ज्यादा मौके रहे इस तरह उन्होंने योजना बनाई। उन्होंने मुंबई प्रांत के जिलों में प्रवास किया। उन्होंने राजनीति के धड़ों के बीच समझौता किया। जैसे कि पूना लोकशाही स्वराज पक्ष के उम्मीदवार सनातनीवादी, इमेज के स्वच्छ और प्रामाणिक नेता भोपटकर को समर्थन घोषित किया और अस्पृश्यों को एक ब्राह्मण को समर्थन देने की अपील की। इस प्रकार इतिहास में पहली बार शायद सामाजिक समरसता के बीज बोए गए होंगे। मुंबई के भोपटकर के मित्र ऐसे साहित्य सम्राट केवळकर ने अंबेडकर के पक्ष में मत देने की अपील की।

कांग्रेस ने सभी प्रांतों में अपने उम्मीदवार खड़े रखे थे, लेकिन मुंबई जहाँ अंबेडकर खड़े थे और पूना जहाँ में भोपटकर खड़े थे उन दोनों बैठकों पर अपना एड़ी चोटी का जोर कांग्रेस ने लगा दिया। सभी प्रकार के दावपेंच, साम, दाम, दंड, भेद की नीति अपनाई। कांग्रेस अंबेडकर विरोधी तो थे ही किंतु भोपटकर तो एक समय के प्रांत कांग्रेस के अध्यक्ष थे, लेकिन उनको अंबेडकर का समर्थन था। अत: वे भी निशान बने थे। कांग्रेस ने अंबेडकर विरुद्ध तो उम्मीदवार खड़ा किया ही, किंतु उनके मतों को तोड़ने के लिए अन्य उम्मीदवारों को भी खड़ा किया था।

१७ फरवरी, सन १९३७ के दिन परिणाम घोषित हुआ। कांग्रेस के उम्मीदवार पराजित हुए। अंबेडकर की जीत हुई। पूना में भोपटकर की हार हुई। भारत के

इतिहास के पहले चुनाव में अंबेडकर के पक्ष ने १७ उम्मीदवारों में से १५ ने चुनाव जीतकर क्वचित् सफलता प्राप्त की थी। सोने पे सुहागा जैसे चुनाव के परिणामों के कुछ दिनों बाद १७ मार्च, १९३७ के दिन मुंबई हाईकोर्ट ने अस्पृश्य वर्ग के पक्ष में चवदार तलाब के विषय में थाना के आसिस्टंट जर्ज द्वारा वर्षों पूर्व दलितों के पक्ष में दिए गए फैसले को मान्य रखा था।

सामान्य चुनाव में कोग्रेस को सभी प्रांतों में जीत मिली थी, लेकिन कांग्रेस ने मंत्रिमंडल न बनाने की जिद पकड़ी। धारासभा में जाने के बदले उसके दरवाजे पर सभ्य अड्डा जमाकर बैठ गए। अत: मुंबई में सर धनजिशा कूपर और जमनादास महेता ने मंत्रिमंडल बनाया। इस मंत्रिमंडल विरुद्ध अविश्वास की दरखास्त लाने के लिए कांग्रेस प्रयास करने लगी। उन्होंने अंबेडकर का संपर्क करके इस दरखास्त पर दस्तखत करने के लिए विनती की, लेकिन अंबेडकर जंजीरा प्रवास गए थे इसलिए जवाब लिखकर बताया कि, "कांग्रेस के इस कदम के पीछे अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के अलावा दूसरा ओर उद्देश्य मुझे दिखाई नहीं देता है। वैसे भी जब प्रत्येक छ: महीने की अवधि में गवर्नर को विधानसभा की बैठक बुलानी होती है तब कांग्रेस के सदस्य उनका मत इस मामले पर पेश कर सकते हैं।"

मुंबई में मजदूर मैदान से अपने पक्ष की रैली में उन्होंने कहा कि, "कांग्रेस ने प्रामाणिक रूप से व्यवहार करके विधानसभा का बहिष्कार वापस खींच लेना चाहिए।" उन्होंने कहा कि, "कांग्रेस द्वारा ब्रिटिश सत्ता विरुद्ध चल रही जंग पूरी होती है तब तक हमें हमारे दुखों तथा मुश्किलों को सहते रहना है यह हम स्वीकार करेंगे नहीं।"

अंबेडकर ने प्रश्न पूछा कि, "आप कूपर के मंत्रिमंडल में क्यों नहीं जुड़े ?" जवाब में उन्होंने कहा कि, "जो मंत्रिमंडल गृह में बहुमत धारण नहीं करता हो एसे मंत्रिमंडल में जुड़कर प्रधानपद प्राप्त करने का क्या अर्थ ? और यह मंत्रिमंडल ज्यादा दिनों तक टिकने वाला भी नहीं है।"

आखिर में कांग्रेस ने अपना बहिष्कार वापस ले लिया। १९ जुलाई, १९३७ के दिन सत्ता स्वीकार करने का तय कर मंत्रिमंडल की रचना करके एक दिन

पहले कूपर के मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया। विधायकों ने ब्रिटिन के राजा को वफादार रहने के शपथ लिए। अंबेडकर ने गीता के स्थान पर अपनी तरीके से गौरवपूर्वक शपथ लीए।

विधानसभा के विरोध पक्ष की बेंच पर दो बेरिस्टर सदस्य थे। जो समग्र देश के समस्त विधायकों में सबसे कुशल और वाणी में चतुर माने जाते डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर और दूसरे जमनादास महेता। सामने कांग्रेस के सदस्य नौसिखिया और बिनअनुभवी थे। यह था अंबेडकर का तेज, अनुभव, नेतृत्व और वाकपटुता। जिससे उस काल के दरम्यान देश अच्छी तरह से परिचित हुआ था।

वे अपने दल का ढाँचा सुदृढ बनाने और पक्ष के विस्तार करने में लीन रहते थे। १९३७ के सितम्बर में उनके दल का ऐसा ही एक जिला कक्षा का अधिवेशन मैसूर में था। जिसमें उन्होंने कहा था कि, "मेरे मन में एक स्पष्ट अभिप्राय बन गया है कि गाँधीजी के हाथों दलित और मजदूर वर्ग का हित कभी नहीं होने वाला है। यदि कांग्रेस सच में क्रांतिकारी संस्था होती तो मैं उसमें जरूर जुड़ गया होता। परंतु मैं आपको भरोसे के साथ कहना चाहता हूँ कि, कांग्रेस क्रांतिकारी संस्था नहीं है। सामान्य इंसान को अपने रूचि और व्यवहार के अनुसार अपना विकास करने के लिए मौका और स्वतंत्रता देने वाली सामाजिक और आर्थिक समानता ही अपना ध्येय होने की घोषणा करने की हिम्मत कांग्रेस में नहीं है। उत्पादन के साधनों पर जब तक मुठ्ठीभर व्यक्ति अपना हित संभालने के लिए अधिकार जमा कर बैठे हैं तब तक सामान्य इंसान के विकास की कोई आशा नहीं है। गाँधीवाद के तत्वज्ञान के अनुसार किसान उस खेत के लिए तीसरा बैल ही ठहरेगा और सामान्य रूप से बंधे दो बैलों के माफिक किसान भी जड़ और कष्टमय जीवन के एक प्रतीक के समान ही बन जाएगा।"

साम्यवादियों के लिए उन्होंने कहा कि, "उनके साथ जुड़ना मेरे लिए कभी संभव नहीं है। अपने राजकीय उदेश्य के खातिर मजदूरों का उपयोग करना चाहते साम्यवादियों का मैं कट्टर शत्रु हूँ।"

किसानों के प्रश्नों के लिए सफल और विशाल मोर्चों ने उनको अब किसानों और मजदूरों के एकमात्र नेता के रूप में प्रस्थापित कर दिया था। उन्होंने १९३८ में अस्पृश्य रेलवे कर्मचारियों का संगठन बनाने के प्रयास आरंभ किए, साथ ही साथ उन्होंने विधानसभा में भी मजदूरों, किसानों के लिए लड़ाई चालू रखी। उन्होंने अनेक विधायकों के माध्यम से दबे, कुचले, पीड़ित वर्ग को समता और सुरक्षा देने के लिए कायदे से फायदा देने के कई प्रयास किए। जिसके कारण वे एक झुझारू नेता के रूप में प्रस्थापित होने लगे थे। अब सिर्फ अस्पृश्य ही नहीं समाज के किसान, मजदूर वर्ग अंबेडकर में अपने मसीहा के दर्शन करने लगे थे।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने जीवनभर के अनेक प्रकार के अनुभवों के आधार पर 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' नामकी संस्था की स्थापना की। उसके द्वारा समाज में शिक्षा का प्रमाण बढ़ा, यदि समाज शिक्षित होगा तो उसमें सही-गलत की समझ अपने आप ही आ जाएगी। यदि किसी भी समाज के विकास का कोई थर्मामीटर है तो वह है शिक्षा। शिक्षा द्वारा डॉ. बाबासाहब समाज को राजकीय क्षेत्र में ले जाना चाहते थे। इसलिए ही उन्होंने मजदूर दल की स्थापना की थी। उनके दल के सन १९३७ में क्षेत्रीय चुनावों में १५ से ज्यादा सदस्य बहुमत से चुने गए थे। समग्र भारत में कांग्रेस का राजकीय पक्ष के रूप दबदबा था। सन १९३८ के चुनाव में अस्पृश्य समाज के मतदाताओं की संख्या १५.८६ लाख थी। प्रथम चुनाव में १२.९६ लाख मतदाताओं ने कांग्रेस के विरुद्ध मत दिया था। जबकि २.९१ लाख दलित मतदारों ने ही कांग्रेस को अपना मत दिया था। अर्थात् कांग्रेस के मतों का प्रतिशत १८.३३ प्रतिशत था। कांग्रेस के विरुद्ध ८१.६७ प्रतिशत मत अस्पृश्य समाज ने दिए। अस्पृश्य समाज की जीवन जीने की खुमारी अलग प्रकार की थी। जब पूरा राष्ट्र सिर्फ और सिर्फ कांग्रेस के उम्मीदवारों के अथवा कांग्रेस के प्रभाव में था। उस समय भी अस्पृश्य समाज कांग्रेस को मत नहीं देता था अथवा मत देने के लिए राजी नहीं था।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने समाज को जो विचार दिए हैं, उन विचारों को लेकर समाज को आगे बढ़ना होगा। प्रगति करनी है, नेतृत्व लेना है, समाज को दिशानिर्देश करना है, नेतृत्व के गुणों का विकास करना है तो बाबासाहब के विचारों

को जीवन में उतारना पड़ेगा डॉ. बाबासाहब ने कहा हैं कि, "बलि तो बकरों की दी जाती हैं, शेरों की नहीं।" यह खुमारी जीवन में उतारनी पड़ेगी। तभी समाज की दयनीय स्थिति में हम सब मिलकर कुछ सुधार ला सकेंगे।

जीवन में जब जैसे स्थिति में आगे बढ़ने का मौका मिले उसे पकड़कर आगे बढ़ों और समाज के लिए हमेशा चिंतन, मनन, परिश्रम द्वारा कुछ अच्छा करो। इस धरती पर अनेक जीव आकर चले जाते हैं, उसे कोई याद नहीं करता है। यदि बाबासाहब ने मन में ठान लिया होता तो वे जीवनभर सुख-समृद्धि भोग सकते थे, परंतु उन्होंने जीवनभर समाज की चिंता की हैं। समाज को जागृत करने, समाज को आगे ले जाने के लिए अनेक प्रकार के संघर्ष किए। उन्होंने परिवार या अपनी कभी भी चिंता नहीं की। हम समाज के नेता डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के बताए हुए मार्ग पर एक कदम भी चलने की कोशिश करेंगे तो २० करोड़ कदम भारत में दलित समाज के विकास के लिए भर सकते हैं, अस्पृश्यों द्वारा बाबासाहब को १४ अप्रैल और ६ दिसम्बर के दिन दी गई पुष्पांजलि सही अर्थ में तभी सार्थक होगी। बाबासाहब के विचारों को सार्थक करने के लिए जो व्यक्ति जिस स्थान पर बिराजित है वहाँ से समाज के उत्कर्ष के लिए अपना श्रेष्ठ योगदान दे। यही बाबासाहब द्वारा व्यक्त किया गया विचार की अपेक्षा और वर्तमान समय की माँग है।

किसी ने कहा हैं कि, पश्चिम के देश राष्ट्रीय चरित्र में श्रेष्ठ है किंतु व्यक्तिगत चरित्र में निम्न कक्षा के हैं। जबकि हिन्दुस्तान में व्यक्तिगत चरित्र श्रेष्ठ है, लेकिन राष्ट्रीय चरित्र निम्न हैं। यहीं बात बाबासाहब भी कहते थे कि यदि देश में सबसे ज्यादा किसी तत्व की जरूरत है तो वह है राष्ट्रीय भावना की, राष्ट्रीयता की है।

देश तथा समाज को आगे बढ़ना है। हम देश के संदर्भ में ज्यादा सोचते नहीं हैं, किंतु व्यक्तिगत सुख, समृद्धि और सुविधा बढ़ाने में अपनी पूरी ताकत लगा देते हैं। हम सब राष्ट्र के विकास में थोड़ी-थोड़ी शक्ति लगा देंगे तो देश ओर ज्यादा गति से आगे बढ़ेगा और समाज के प्रत्येक स्तर के लोगों को आनंद और सुख प्राप्त होगा।

हमें शांति तथा सुख से जीना है तो देश की व्यवस्थाओं को व्यवस्थित रखनी पडेगी। देश में साक्षरता के आंकड़े देखें तो आज निरक्षरता ने करोड़ों लोगों के जीवन को दुर्बल और परावलंबी बना दिया है। जिस देश में करोड़ों लोग अशिक्षित है, हम उनका विकास कैसे कर सकते हैं ? इन सभी समस्याओं का हल आए इसके लिए हम सिर्फ सरकारी तंत्र पर आधारित नहीं रह सकते ! जिन लोगों ने आजादी के मीठे फल चखे हैं क्या उन लोगों की जिम्मेदारी नहीं बनती कि अभी तक गरीब, आदिवासी, दलित, खेतमजदूर के घर में मिट्टी के तेल के दिए से ही शाम होती है। उनको रहने के लिए मकान नहीं है। ऊपर आसमान और नीचे धरती के बीच आज इसी भारत में अभी भी दूसरा भारत बस रहा है, इस पर भी नजर घुमाए। गरीब देशवासियों के लिए संकल्प करने का समय आ गया हैं "शिक्षा जीवन के लिए", "जीवन वतन के लिए"। ऐसा विचार हर व्यक्ति करे तो राष्ट्र जल्द ही प्रगति करेगा।

सालों के अनुभवों से ध्यान में आया है कि, यदि आरक्षण के आधार पर किसी दलित को पद प्राप्त हुआ तो है, परंतु उसको सवर्णों की इच्छानुसार ही कार्य करना पड़ता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उसके कामों में किसी न किसी रूप में विध्न डालकर उसकी प्रगति ही रोक दी जाती है। इसका अनुभव हम सबको किसी न किसी स्तर पर हुआ ही होगा। आज दलित समाज के नेता के रूप में कम शिक्षा प्राप्त, अपनी क्षमता का उपयोग किए बिना, नेता के कहे में रहकर, बोले उतना ही या उनको पूछकर ही कार्य करने वाले व्यक्ति (जी हजुरी करने वाला) का एसे हालात में प्रथम चयन किया जाता है। देश के प्रत्येक स्तर पर ग्राम पंचायत से आरंभ होकर संसद तक ऐसा ही चित्र देखने को मिलता है। होशियार व्यक्ति भी अनुसूचित जाति में है। यह वास्तविकता स्पृश्य समाज स्वीकार करने को तैयार ही नहीं हैं और यदि स्वीकार भी करता है तो किसी भी जगह पर उसका चयन करने में आनाकानी करते हैं। यह वर्तमान प्रगतिशील समाज की २१वीं सदी की दूसरी शताब्दी की कोरी वास्तविकता है। भारत देश को आजाद हुए शताब्दियाँ हो गई लेकिन बहुल समाज की मनोवृत्ति आज भी मनुस्मृति की

विचारधारा के आधार पर ही चल रही हैं। डॉ. अंबेडकर ने कहा था कि, "भारत देश आजाद हुआ, परंतु मेरे समाज को आजाद देश में सही अर्थ में बहुल समाज के राजकीय एवं सामाजिक और आर्थिक आधार पर चलना पड़ता है।" वह आज हम देख सकते हैं।

आजाद भारत को आज 71 से ज्यादा वर्ष हुए हैं। परंतु दलित समाज की प्रगति जिस प्रकार होनी चाहिए उस प्रकार की नहीं हुई हैं। और जो हुई है वह थोड़ी बहुत ही हुई हैं। लेकिन अभी बहुत काम करना बाकी हैं। आज कहीं न कहीं आरक्षण के विरोध की बात निकलती है, तब उस समाज को कहने का मन होता है कि 'इस देश में २५०० वर्ष या उससे भी अधिक समय से शोषित-पीड़ित-दलित समाज अभी भी ठीक से बैठ नहीं सका है, वहाँ उसका गला घोंटकर जान लेने के प्रयास हो रहे हैं। इस देश के देशवासियों को मैं एक बात याद दिलाना चाहता हूँ कि, दलित समाज के लिए आपकी ऐसी मानसिकता इस देश का भयंकर नुकसान न कर दे। इसका विचार किए बिना आप सिर्फ और सिर्फ वोट के लिए राजनीति करने लगे हो। करीबन राजकीय पार्टियों उसका स्वार्थ कहाँ सिद्ध हो रहा है, उसको क्या फायदा हो रहा है। उससे ऊपर उठकर इस देश के विकास एवं इस देश के अंदर २० करोड़ दलित समाज का विकास किस प्रकार कर सकते हैं ? उनको अभी भी आजाद भारत में मुक्त मन से सांस लेने की भी आजादी नहीं मिली है। जैसे विषयों पर भी अपनी ध्यान केन्द्रित करना चाहिए यह बात उन आरक्षण विरोधियों को कौन समझाए ? कहीं इस देश में ऐसी स्थिति निर्माण न हो जाए कि वर्षों से पीड़ित शोषित समाज को अन्याय करने वाले लोगों को दलित समाज ये न कह दे कि ... "जो दलित हित की बात करेगा वही देश पर राज करेगा।"

अब वह समय दूर नहीं रहा है, कारण बहुत ही स्पष्ट है। इस देश को आजाद हुए आधी सदी से भी ज्यादा समय होने के बावजूद भी भारत के चुनाव में औसतन मतदान की प्रतिशतता ५० से ६० प्रतिशत तक ही हुई है। आज भी यह स्थिति हैं कि जो सत्ता पर बैठता है उसे २० से ३० प्रतिशत तक ही मत मिले होते हैं। अपने समाज के बंधुओं के विषय में किए गए अध्ययन से ध्यान में आया कि अभी

तक दलित समाज अन्य समाज के साथ मुख्य प्रवाह तक नहीं पहुँचा है। यहाँ उसके विरुद्ध विध्न खड़े करके दलित समाज की कमर तोड़ देने की जो मनोवृत्ति है उसको तिलांजलि देने की जरूर है। तमाम राजकीय पार्टी एवं बहुसंख्यक समाज ने दलित समाज के विकास की गाड़ी को आगे बढ़ाने के लिए थोड़ा-थोड़ा जोर लगाने के लिए आगे आना पड़ेगा। अस्पृश्य समाज ने अभी तक आजादी का फल चखा नहीं है वहाँ उसको गरीबी-लाचारी-गुलामी की बेड़ियों में जकड़ देने की समयबद्ध योजनाएँ हो रही हैं, उसका भयंकर नुकसान दलित समाज को और उससे भी ज्यादा देश को होगा। इस बात की संपूर्ण जिम्मेदारी समाज के श्रेष्ठियों, समाज के बुद्धिजीवियों, समाज के धर्मगुरुओं, राष्ट्रप्रेमियों, समाजसुधारकों एवं जिसके मन में इस राष्ट्र के सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र बनाने की भावना है, उन तमाम की है। ये सकल जिम्मेदारी सबको सामूहिक रूप से उठानी पड़ेगी। तभी हम राष्ट्र को आगे बढ़ा सकेंगे।

डॉ. बाबासाहब लोकतंत्र के प्रबल समर्थक थे। वे कहते हैं कि, जिस शासन प्रणाली से रक्तपात किए बिना लोगों के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया जाता हैं वह लोकतंत्र है।"

"इस देश का दुर्भाग्य यह है कि यदि हिन्दु धर्म ने दलित वर्ग को शस्त्र धारण करने की स्वतंत्रता दी होती तो, यह देश कभी भी परतंत्र नहीं हुआ होता।"

विंस्टन चर्चिल ने कहा है कि, "हमने लोकतंत्र का स्वीकार किया है। इसका कारण यह नहीं है कि वह सर्वश्रेष्ठ है। सिर्फ इसलिए कि उसमें सबसे कम दोष है।"

अब्राहम लिंकन द्वारा की गई लोकतंत्र की परिभाषा जगप्रसिद्ध है, "लोकतंत्र अर्थात् जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा चलाया जाने वाला शासन।"

योगी अरविंद राजकर्ताओं के बारे में कहते हैं, कई महान समस्याएँ उनके समक्ष निर्णय लेने के लिए आती हैं, परंतु हकीकत में वे जरूरी महानता के साथ उसका सामना नहीं करते हैं।"

ऐसे अनेकों लोगों के विचारों और अनुभवों से आगे बढ़कर डॉ. अंबेडकर

की शुद्ध वैचारिक और न्यायवादी दृष्टि से की परिभाषा ध्यानत्व है। "लोकतंत्र सामूहिक सहजीवन की पद्धति है। लोकतंत्र का उद्‌गमस्थान समाज के घटकों के सामाजिक संबंधों से विकसित हुए, सामूहिक सहजीवन में ढूंढने की आवश्यकता है। लोगों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में रक्तपात किए बिना क्रांतिकारी परिवर्तन करने वाला मार्ग मतलब लोकतंत्र प्रकार का शासन और उसकी पद्धति द्वारा चलता शासन अर्थात् लोकतंत्र।" डॉ. बाबासाहब कहते हैं, लोकतंत्र सिर्फ शासन पद्धति ही नहीं है। मूलत: सामूहिक जीवन की पद्धति है और वह परस्पर आदान-प्रदान के अनुभव पर आधारित होती है। अपने साथ रहने वाले लोगों के प्रति परम आदर की भावना ही लोकतंत्र है।"

लोकतंत्र सिर्फ शासन पद्धति नहीं, अपितु सामाजिक संविधान का एक हिस्सा है। हमें सिर्फ राजकीय लोकतंत्र से संतुष्ट न होकर, हमारे राजकीय लोकतंत्र का रूपांतर सामाजिक लोकतंत्र में करना चाहिए। इसीलिए तो बाबासाहब की प्रारंभ से धारणा थी कि प्रत्यक्ष संवैधानिक नीतिमत्ता अधिक महत्त्व की है।

डॉ. अंबेडकर कहते हैं कि, "लोकतंत्र के लिए सद्विवेकबुद्धि की भी आवश्यकता है।" बाबासाहब ने ऐसा कहा है कि, "जब हम दक्षिण अफ्रिका के भेदभाव की इतनी सारी चर्चा करते हैं उस समय हमें यह बात भी याद रखनी चाहिए कि अपने प्रत्येक गाँव में एक दक्षिण अफ्रिका है।" एसे अन्याय से पीड़ितों को छुटकारा दिलाने के लिए कोई आगे नहीं आता है इसलिए क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ बढ़ी और इसी तरह चलता रहेगा तो समय चलते लोकतंत्र भय में आ जाएगा।

लोकतंत्र के लिए जरूरी बातों की चर्चा करते हुए बाबासाहब कहते हैं, "पहली शर्त है कि समाज में ऊँचनीच का कोई भाव नहीं होना चाहिए, समाज में कोई शोषित या दलित वर्ग नहीं होना चाहिए। वह स्थिति भी न हो कि एक वर्ग सकल सुखसुविधा का लाभ उठाए और एक वर्ग केवल कष्ट सहता रहे। ऐसी स्थिति में रक्तरंजित क्रांति के बीज रहे होते हैं। लोकतंत्र में ऐसी क्रांतियों को रोकने का सामर्थ्य नहीं होता है।"

"समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों के बीच खाई, लोकशाही के मार्ग का बड़ा अवरोध

बनने की संभावना है। श्रेष्ठ व्यक्ति विरुद्ध सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति चुनाव जीत जाए यह योग्य समझा जाता है। परंतु आज की स्थिति का मूल्यांकन किया जाए तो जानकारी मिलेगी कि ज्ञाति के आधार पर चुनाव जीतने की स्थिति का निर्माण हो रहा है। साथ ही साथ बाहुबली एवं धन के प्रभाव से व्यक्ति चुनाव जीत जाए ऐसे अनेक उदाहरण हमारी नजर समक्ष आते हैं। इन सभी स्थिति का निर्माण लोकशाही के लिए हकीकत में गम्भीर है। इसीलिए बाबासाहेब के शब्द याद आते हैं:

यह मेरा देश है। हर देशवासी को ऐसा कहता है कि, "यह मेरा देश है।" यह विचार प्रत्येक भारतवासी के मन में बस जाए तो ही हम भारत देश को अखंड समृद्ध भारत बना सकेंगे। प्रगति वही समाज या व्यक्ति करता है जो मूल्य चुकाता है। राष्ट्र के लिए हम सब थोडा सा भी मूल्य चुकाएंगे तभी सही मायने में लोकतंत्र का जतन होगा।

जिस समय संपूर्ण जगत में साम्यवाद का अंधड़ चल रहा था उस समय अपने देश के जिन महानपुरुषों ने उस विचारधारा को रोकने का यश प्राप्त किया उनमें डॉ. बाबासाहब अंबेडकर मुख्य हैं। 'जगत के मजदूर एक बनो', 'दलित, पीड़ित, शोषित जनता बागी बनकर स्थापित हितों को तेजी से उखाड़ दे', 'संस्कृति के साथ का अपना संबंध तोड़ दो', 'धर्म अफीम की गोली है', 'आप संगठित होकर संघर्ष करोगे तो आपको आपकी जंजीरों के अलावा कुछ गँवाना नहीं है।' ऐसे मोहक सूत्रों और तत्वज्ञान तथा उसके साथ १९१७ में हुए रशियन क्रांति की पृष्ठभूमि, इन बातों को ध्यान में लेते हैं तो इस देश का स्पृश्य समाज इस तत्वज्ञान का पक्का शिकार बना होता। और यदि ऐसा हुआ होता तो भारत के समक्ष एक बड़ी चुनौती खड़ हो गई होती। परंतु डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने इस अंधड़ को रोकने का महान राष्ट्रकार्य किया है। नेपाल में काठमंडु में १९५६ में दिया "कम्युनिजम और बुद्धिजम" विषय पर उनका व्याख्यान महत्त्वपूर्ण है। उसमें कम्युनिजम का संपूर्ण जवाब भगवान बुद्ध हैं ऐसा उन्होंने स्पष्ट किया है। इतना ही नहीं लेकिन कम्युनिजम का स्वीकार करने इसका अर्थ राष्ट्रवाद, धर्म और संस्कृति को तिलांजलि देने के बराबर है। उन्होंने इस बारे में समाज को पूरी जानकारी दी। उस समय हुई चर्चा

में डॉ. बाबासाहब ने कहा कि, "मेरी समक्ष प्रश्न है कि मुझे मेरे समाज को निश्चित दिशा देनी चाहिए। अब दलित, पीड़ित, शोषित समाज में नई जागृति आ रही है। उसमें एक प्रकार की पीड़ा और आवेश हो यह स्वाभाविक है। इस प्रकार का समाज साम्यवाद का शिकार हो, ऐसा मैं नहीं चाहता हूँ। अत: उनको दूसरे मार्ग की ओर मोड़ना मुझे राष्ट्र हित की दृष्टि से जरूरी लग रहा है।

मुसलमान या इसाई बनने से राष्ट्रीयता के साथ का संबंध टूट जाता है ऐसा उनका स्पष्ट मत था। इसलिए उन्होंने गाड़गे महाराज की सलाह को स्वीकार किया और मैं ऐसा कुछ नहीं करूंगा जिससे देश को नुकसान हो ऐसा उनको वचन दिया। मुस्लिमों के बारे में डॉ. अंबेडकर कहते थे कि, "मुसलमानों के मन पर लोकतंत्र का प्रभाव नहीं होता है। यदि मुस्लिमों को किसी बात पर आस्था है तो वह धर्म पर है। उनकी राजनीति मुख्यत: धर्मनिष्ठ है। मुसलमान समाजसुधार के विरोधी हैं और संपूर्ण विश्व में प्रतिकार की वृत्ति से व्यवहार करते हैं। मुसलमानों की निष्ठा उन देशों के प्रति होती हैं जहाँ मुसलमानों का शासन होता है। जिस देश में मुसलमान शासन नहीं करते हैं वे उनके लिए शत्रु भूमि है और इसलिए इस्लाम धर्म अनुसरण करने वाले सच्चे मुसलमान के मन में हिन्दुस्तान अपनी मातृभूमि है, हिन्दु अपना इष्ट मित्र है ऐसा विचार उनको कभी भी स्पर्श नहीं करता है। जिनकी भारत निष्ठा शंकास्पद हैं ऐसे मुसलमानों हिन्दुस्तान में रहकर षडयंत्र रचे, इससे तो अच्छा है कि वो हिन्दुस्तान से बाहर रहकर षड्यंत्र रचेंगे तो चलेगा। मुसलमानों का वर्चस्व नहीं हो ऐसे सैन्य को पास रखना यह सुरक्षित सरहद से भी ज्यादा अधिक सुरक्षित है। स्पृश्य हिन्दुओं के साथ कुछ मसलों को लेकर मेरी लड़ाई है, परंतु अपने देश में स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए मैं मेरे प्राण भी अर्पण करूँगा। (डॉ. बाबासाहब और उनके विचार – म. श्री दीक्षित, पृष्ठ : १०)

देश के लिए विविध योजनाओं का विचार भी बाबासाहेब ने एसे ही एकात्मभाव से किया है। इसके लिए उन्होंने आवश्यकतानुसार स्पष्टता और निर्भीकता से विचार व्यक्त किए हैं। इसलिए उन्होंने अपनी विरुद्ध कौन है, उसकी भी कभी परवाह नहीं की है। १९१६ में लखनउ करार के कारण सिर्फ मुसलमानों को ही अनेक सुविधा

दे गई थी जो अस्पृश्यों को देने की जरूरत थे, मुसलमानों को नहीं। ऐसा उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था। उन्होंने नेहरु कमिटी की रिपोर्ट पर भी जोरदार हमला किया था। उसका मुख्य कारण उस रिपोर्ट में इस्तेमाल ली गई मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति थी एवं भाषावार प्रांत रचना की नेहरु कमिटी की मानसिकता मुसलमानों का अत्यधिक विचार करने वाली और हिन्दुओं को अधिक अन्याय करने वाली होने की उन्होंने स्पष्टता की थी। हो सकता है कि केवल देशहित को मद्देनजर रखकर भी उन्होंने यह भूमिका दी हो। "नेहरु कमिटी की योजना और हिन्दुस्तान का भविष्य" विषय पर १८-११-१९२९ के दिन बहिष्कृत भारत में प्रसिद्ध हुए लेख में वे कहते हैं : "भाषावार प्रांतरचना का तत्व अच्छा है, लेकिन उसे अमल में लाने से इस देश का असीम नुकसान होगा ऐसा मेरा प्रामाणिक अभिप्राय है। राष्ट्रभावना का इस देश में उद्भव नहीं हुआ, उसके जो कारण हैं, उसमें से मुख्य कारण अनेक भाषा है। यह कारण स्पष्ट हुए बिना राष्ट्रएकता की भावना जनता में उत्पन्न होनी संभव नहीं है।

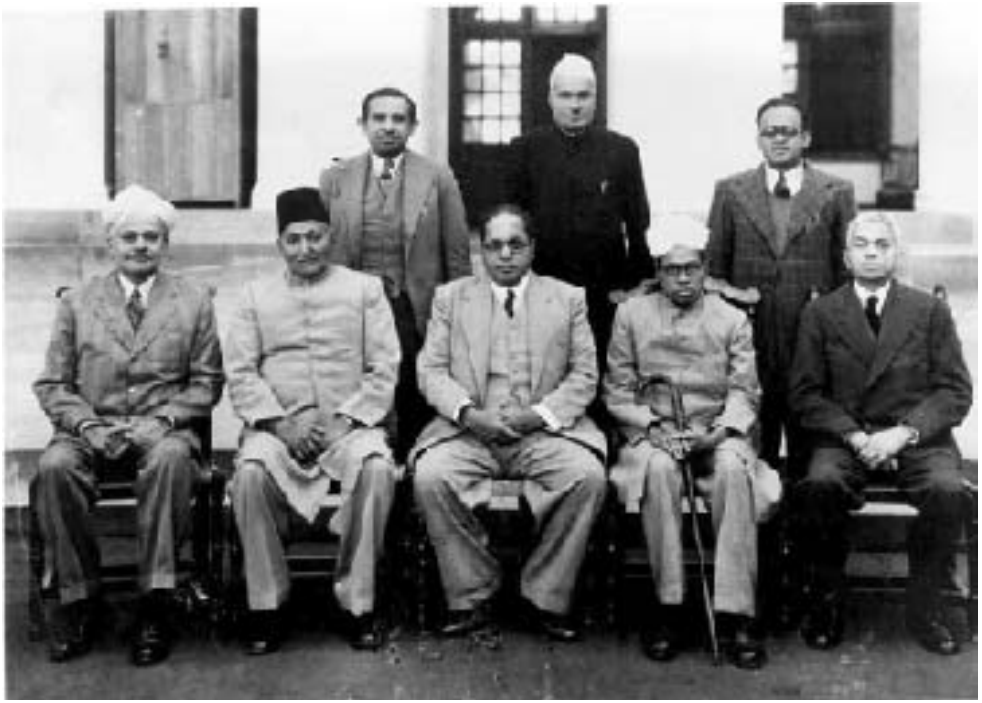

डॉ. अंबेडकर और संविधान की ड्राफ्टिंग कमेटी के सदस्य

डॉ. अंबेडकर और संविधान की रचना

सन १९४६ में भारतीयों को सत्ता सौंप देने का अंग्रेजों ने निर्णय किया। सत्ता कैसे सौंपनी है और अल्पसंख्यकों के हित की रक्षा यह दो विषय उनके ध्यान पर थे।

दूसरी तरफ किसी भी प्रकार से अंबेडकर का पत्ता काटने के लिए कांग्रेसी तैयार बैठे थे। १९४६ में बीच के हिस्से में राष्ट्रीय सरकार रची गई। उसमें जवाहरलाल, सरदार वल्लभभाई पटेल, राजगोपालाचार्य इत्यादि के साथ अस्पृश्यों के प्रतिनिधि के तौर पर बाबू जगजीवनराम को लिया। इस तरह अंबेडकर का पत्ता काटने के साथ उनके विरुद्ध दलितों में से कांग्रेस के आज्ञाकारी नेता को खड़ा कर दिया। यदि दलितों के अधिकारों को प्राप्त करने हैं, उसकी रक्षा करनी है तो सरकार के साथ जुड़ना अनिवार्य था। अंबेडकर ने निपट इंग्लैंड तक प्रवास करके आवेदनपत्र देकर माँग की थी कि, वर्तमान सरकार में अस्पृश्यों का प्रतिनिधत्व काफी नहीं है। वे इंग्लैंड के प्रधानमंत्री एटली और चर्चिल को मिले लेकिन कोई असर नहीं हुआ। अंबेडकर वापस आए और तब वे मानसिक रूप से टूट गई थे। कांग्रेसी दावपेंच खेलने में अभी भी कोई कसर छोड़ना नहीं चाहते थे। उन्होंने १९४६ में कानूनमंत्री के रूप में जोगेन्द्रनाथ मांडल को लिया। ताकि अंबेडकर के सरकार में जुड़ने या संविधान सभा में दाखिल होने के सभी दरवाजे बंद हो जाएं।

गाँधीजी भारत के बँटवारे की माँग करने वाले जिन्ना को बार-बार मिलने जाते थे, लेकिन अंबेडकर को उन्होंने कह दिया कि, "आपकी और मेरे बीच में समदृष्टिकोण नहीं इसलिए मिलने का कोई अर्थ नहीं है।" इस तरह अंबेडकर का दलित नेता के रूप में नजरअंदाज कर दिया गया।

चारों तरफ से जब कोई आशा न थी तब कानून मंत्री जोगेन्द्रनाथ मांडल ने संकल्प किया कि अंबेडकर को संविधान सभा में तो पहुँचाना ही है। उन्होंने २७-०६-१९४६ के दिन हवाई जहाज द्वारा एक आदमी भेजकर अंबेडकर से संविधान सभा के सदस्य का फॉर्म भरवाया। विश्वास था कि अंग्रेज मतदाता तो अंबेडकर

को वोट देंगे ही। इसके विरुद्ध गाँधीजी ने नया दाँव खेला। उनके द्वारा अपील की गई कि जब अंग्रेज देश छोड़कर जाने वाले हैं तो संविधान सभा के चुनाव में अंग्रेज मतदाता को हिस्सा लेना नहीं चाहिए।

फिर भी जोगेन्द्रनाथ मांडल ने हिम्मत नहीं हारी और प्रचार जारी रखा। उन्होंने कोलकाता में असंख्य सभाओं का आयोजन किया, कांग्रेस के दलित विधायकों को घेर लिया। उनको अंबेडकर को मत देने के लिए समझाया। सिखबंधुओं ने हाथ में खुली तलवार के साथ प्रतिज्ञा ली कि, "जो अंबेडकर को हराएगा उसके खून से इस तलवार की प्यास बुझाई जाएगी।" कलकत्ता में वातावरण तंग हुआ। दलितों ने विधानसभा को घेर लिया था। पक्ष के व्हीप की उपेक्षा करके भी दलित विधायकों ने अंबेडकर को मत दिए थे। अत: कांग्रेस की लाख कोशिशों के बावजूद भी अंबेडकर और साम्यवादी पार्टी के सोमनाथ लहरी चुने गए थे। साथ ही कांग्रेस के नापसंद ऐसे कई नाम संविधान सभा के सदस्य के रूप में चुने गए थे। उसमें हिन्दु नेता डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, एंग्लो इण्डियन नेता फ्रेंक एन्थोनी, इण्डियन इसाई नेता एच. सी. मुखर्जी इत्यादि थे। अंबेडकर की जीत से दलित समाज में आशा की किरण फैल गई।

संविधान समिति में मुस्लिम लीग की उपेक्षा होने के कारण लीग ने चारों तरफ विरोध का वातावरण खड़ा करने के प्रयास आरंभ किए। अंग्रेजों ने भारत के बँटवारे का आखिरी फैसला ले लिया था। नतीजन देश में साम्प्रदायिक दावाग्नि ने जोर पकड़ा। मुस्लिम बहुल इलाके में हिन्दुओं का कत्लेआम, संपत्तियाँ जलाना, औरतों की इज्जत लूटना, औरतों-बच्चों का क्रूरता से कत्ल करना जैसी घटनाओं से जैसे भारतमाता रो पड़ी। इस दावाग्नि ने नोआखली से बिहार की तरफ प्रस्थान किया। मुस्लिमों ने बिहार में हिन्दुओं के साथ जिस प्रकार से बर्बरता दिखाकर खानाखराबी की, उसी प्रकार बिहार में हिन्दुओं ने भी उनको जवाब दिया। 'हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट' अनुसार करीबन ६ लाख लोगों का कत्ल किया गया। एक करोड़ चालीस लाख बेघर हुए। एक लाख कँवारी लड़कियों का अपहरण हुआ या उनको भगाकर ले जाया गया। उन लड़कियों का धर्म परिवर्तन किया गया

या फिर खुले बाजार में नीलामी की गई। इस वातावरण में मुस्लिम 'पाकिस्तान जिंदाबाद' के नारे बुलंद कर अट्हास करते रहे।

मुस्लिम लीग ने संविधान सभा का बहिष्कार किया। ९ दिसम्बर, १९४६ के दिन सेन्ट्रल लेजिस्लेटिव ऐसेम्बली के वयस्क सदस्य डॉ. सच्चिदानंद के प्रमुख स्थान से संविधान सभा की प्रथम मीटिंग हुई और उसमें स्थायी अध्यक्ष के रूप में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का चयन किया गया (जो भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने।)

संविधान सभा में भी कांग्रेस के सदस्य अपनी मनमानी करने की नीति अखत्यार करके बैठे थे। जवाहरलाल ने संविधान की भूमिका समझाई। हिन्दुस्तान को एक स्वतंत्र, सार्वभौम, गणतांत्रिक राष्ट्र के रूप में स्थापित करने के आदर्श को पेश करते हुए कानूनविद जयकर ने ऐसा मंतव्य प्रकट किया कि, "सभा में मुस्लिम लीग और देशी राजा का कोई सदस्य नहीं है। अत: वे आए तब तक नहेरु के प्रस्ताव को मुल्तवी रखा जाए। इसके विरुद्ध जैसे कांग्रेसी सदस्यों ने पहाड़ सिर पर उठा लिया। जिसके चलते आगे चलकर जयकर ने इस सभा से इस्तीफा देना पसंद किया। प्रमुख स्थान से डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अंबेडकर को अपने मंतव्य व्यक्त करने को कहा। अंबेडकर ने परिस्थिति समझकर अपनी शिक्षा के संपूर्ण अनुभव, होशियारी और अंग्रेजी के प्रभाव के आधार पर धीरगंभीर तरीके से अपनी बात रखी, तीखी भाषाशैली में स्पष्ट अभिप्राय पेश किया। उन्होंने कहा कि, "संविधान के लिए पंडित नहेरु ने जो बातें बताई हैं वह बिनविवादास्पद हैं। साथ ही मैं यह बात जानता हूँ कि आज हम राजकीय, सामाजिक और आर्थिक तौर से विभाजित हुए हैं। मैं भी ऐसे ही एक शिविर का प्रतिनिधि हूँ। फिर भी मैं दृढ़तापूर्वक मानता हूँ कि कैसे भी परिस्थिति आए फिर भी दुनिया की कोई भी ताकत इस देश को एक होने से रोक सकेगे नहीं। हम सब अनेक जातियों में बंटे होने के बावजूद, हम एक प्रजा के रूप में एक होकर जरूर बाहर आएंगे।

उसके बाद जैसे कि भविष्य कथन करते हो, वैसे बताते हैं कि, "मुझे इस बात पर जरा भी शंका नहीं हैं कि भारत के बँटवारे के लिए लीग के आंदोलन के बाद एक दिन ऐसा आएगा कि जब मुस्लिमों को बिल्कुल यह लगेगा कि अविभक्त

हिन्दुस्तान सभी के लिए जरूरी हैं। अत: गृह अपने अधिकारों से मुस्लिमों को दूर रख सकेगा, परंतु क्या यह कदम विवेकबुद्धि का माना जाएगा ? सत्ता एक बात है जबकि विवेकबुद्धि और समझ बिलकुल अलग चीज है। इसलिए कांग्रेस के सदस्यों को भाईचारा स्थापित करने की दिशा में एक और प्रयास करने के लिए मेरी दर्दभरी आग्रहयुक्त विनती है। प्रजा का भविष्य तय करने में नेता या पक्ष के प्रतिष्ठित लोगों को लेना नहीं चाहिए।" अंबेडकर की विनती सबके दिल को छू गई। समग्र संविधान सभा ने अंबेडकर के व्याख्यान को आदर दिया गया, प्रस्ताव दूसरी सभा पर मुल्तवी रखकर दिनांक २० जनवरी, १९४७ के दिन पारित किया गया।

ब्रिटिश सरकार ने लोर्ड माउन्ट बेटन को भारत के वायसरॉय के रूप में भेजा। कई नेता और लोगों की भारत के बँटवारे की तैयारी नहीं थी लेकिन जुलाई १९४७ में ब्रिटिश संसद ने 'एक्ट ऑफ इन्डियन इंडिपेंडेन्ट' पास करके भारत के दो हिस्से किए : भारत और पाकिस्तान।

२३ जुलाई, १९४७ के दिन गाँधीजी व सरदार वल्लभभाई पटेल के प्रयासों तथा चतुराई से अंबेडकर संविधान सभा में चुने गए। डॉ. बाबासाहब अंबेडकर को ड्राफ्ट कमिटी के चेयरमेन बनाने के पूर्व इस विषय में समग्र जिम्मेदारी विदेशी विशेषज्ञ जेनिंग्स को सौंपने की प्राथमिक तैयारियाँ जवाहरलाल नहेरु द्वारा की गई थी। उल्लेखनीय है कि कुछ ब्रिटिश संविधानविदों ने आयवरी जेनिंग्स की सहायता लेने के लिए गाँधीजी से कहा तो गाँधीजी ने कहा कि, "हमें दूर तक जाने की जरूरत नहीं हैं हमारे पास अंबेडकर है ही।" इस तरह महात्मा गाँधीजी की मध्यस्थता से इस देश का संविधान बनाने का कार्य डॉ. अंबेडकर को नेहरु को बेमन के भी सौंपना पड़ा। यह कार्य सुप्रत करने के बाद संस्था कांग्रेस के कई नेता और अंबेडकर विरोधी सरदार वल्लभभाई पटेल के पास गए। उन्होंने अंबेडकर से यह जिम्मेदारी वापस ले लेने की बात कही, तब सरदार ने असरकारक तरीके से जवाब दिया था कि, "इस देश का संविधान बनाने की ताकत है तो आपको दे देता हूँ।" एक भी व्यक्ति इसका उत्तर नहीं दे सका था।

जिस सरदार को पहले अंबेडकर से भी विरोध था, उन्होंने ही अंबेडकर का

संविधान सभा में प्रवेश करने का रास्ता खोल दिया। इतना ही नहीं लेकिन सरदार को पेशी करने गए हुए अंबेडकर विरोधियों को उन्होंने स्पष्ट शब्दों में बता दिया कि, "आपको संविधान की एक की गिनती का भी पता नहीं और दौड़ आए हो, शरमाते भी नहीं ?"

ऐसी परिस्थिति में ३० अगस्त के दिन संविधान का मसौदा समिति की रचना की गई। जिसके सात सदस्य थे और अध्यक्ष थे डॉ भीमराव रामजी अंबेडकर। अन्य सदस्यों में सर्व श्री एन गोपालस्वामी आयंगर, कनैयालाल माणेकलाल मुंशी, अलादी कृष्णास्वामी अय्यर, सैईजीओ मौला सादुल्ला, डी. पी. खेतान और एन. माधवराव थे। इन सबके सहायक के रूप में सर बी. एन. राव, संयुक्त सचिव एस. एन. मुखर्जी एवं सचिवालय के कर्मचारी जुड़े थे।

संविधान की रचना का सारा भार अंबेडकर को अकेले हाथों ही उठाना था। क्योंकि छ: में से एक सदस्य की मृत्यु हो गई थी। दूसरे महानुभाव अमरीका चले गए थे। तीसरे सदस्य रियासती मामलों में लीन रहते थे। दो सभ्य दिल्ली से काफी दूर रहते थे और नादुरस्त स्वास्थ्य के कारण उपस्थित नहीं रह सकते थे। इस कार्य में उनको सहयोग मिलता तो नहेरुजी, समाजवादी नेता के. टी. शाह, टी. टी. कृष्णमाचारी, मीनु मसाणी महिला सदस्यों हंसाबहेन महेता और राजकुमारी अमृतकौर दुर्गाबाई का मिलता।

देश बड़ा था, काम बड़ा था और आजाद भारत की भव्य इमारत का निर्माण करना था। कितनी उप समिति बनाई गई। जिसमें मूलभूत अधिकार समिति और अल्पसंख्यक समिति एवं स्टीयरिंग कमिटी और झंडा समिति के सदस्य के रूप में डॉ. अंबेडकर खुद रहे और उनकी बुद्धि प्रतिभा और मेधावी विचारशक्ति का संपूर्ण लाभ इस समिति के सदस्यों को सकारात्मक भी हुआ।

झंडा समिति के समक्ष झंडे का चयन करने का मुश्किल कार्य था। हिन्दु महासभा इत्यादि चाहती थी कि झंडा भारतीय संस्कृति के रंगों का, लाखों बलिदानों की निरंतर याद देने दिलाने वाला भगवा रंग हो, लेकिन समिति ने तिरंगे को स्वीकृति

दी। बीच में चरखा रखने का सोचा था, लेकिन अंबेडकर ने चरखे के स्थान पर अशोक चक्र का आग्रह रखकर सभी को इसके लिए मना लिया। चरखे के अस्वीकार से गाँधीजी को बुरा लगा। उन्होंने कहा कि, "यदि खादी और चरखा झंडे में से लुप्त हुए तो उस झंडे के साथ मेरा कोई संबंध नहीं रहेगा। एसे झंडे को मैं वंदन करूंगा नहीं।" चूँकि आखिर में वे मान गए और तिरंगे के साथ अशोक चक्र के निशान को झंडे को रूप में स्वीकार किया था।

सर्वप्रथम कच्चा मसौदा उन्होंने समिति के अध्यक्ष राजेन्द्र बाबू को सुप्रत किया। उन्होंने लोकशाही की परिभाषा की थी। उन्होंने २१ जितने मूलभूत अधिकार प्रत्येक नागरिक को दिए और लोकशाही की परिभाषा करते हुए लिखा कि, "जो शासन पद्धति, रक्तपात किए बिना आर्थिक और सामाजिक जीवन में समता लाकर क्रांतिकारी परिणाम लाए वह शासन पद्धति मतलब ही लोकतंत्र है।"

बँटवारे के बाद की परिस्थिति पर नियंत्रण करना बहुत आवश्यक था किंतु वह मुश्किल भी था। कांग्रेस अकेले हाथों उसके ऊपर नियंत्रण कर सके एसी नहीं थी। इसलिए दूसरों का साथ लेना जरूरी था, अत: अंबेडकर का भी साथ लेना पड़ा। वैचारिक मतभेद होने के बावजूद अंबेडकर के लिए यह अच्छा था।

गाँधीजी दूसरी गोलमेजी परिषद् के वक्त जिनके यहाँ रुके थे वह मिस म्युरल लिस्टर डॉ. अंबेडकर की विद्वत्ता से प्रभावित थी। उन्होंने गाँधीजी को कहा कि, "आप अंबेडकर के साथ अच्छा व्यवहार नहीं कर रहे हैं, अत: उनकी शक्ति का लाभ नहीं ले पा रहे हैं।" जिस बात का गाँधीजी ने स्वीकार भी किया। दूसरी तरफ उन्होंने अंबेडकर से संपर्क किया और उनको बताया कि, "गाँधीजी आपको मंत्रिमंडल में लेना चाहते हैं।" जिसका अंबेडकर ने स्वीकार किया और भूतकाल के सभी कड़वे अनुभवों-संस्मरणों को भुलाकर अंबेडकर नहेरु मंत्रिमंडल में देश के प्रथम कानून मंत्री बने।

भारत को १९४७ की १५ अगस्त को आजादी मिली। काफी खून बहाने के बाद आजाद भारत का अस्तित्व पृथ्वी पर आया। करोड़ों बलिदान ऐसे हैं जिनके

शायद नामोनिशान नहीं रहे थे। कई परिवारों के घोंसले बिखर गए थे। कितनी माँ-बहनों ने अपने बेटे-पति-पिता-भाई-स्वजन खोए थे। कितने पिता ने अपनी बेटी खोई थी, भाइयों ने लाड़ली बहन खोई थी, कितनों ने पत्नी खोई थी। पाकिस्तान ने उसकी मैली मुराद बताई थी। पाकिस्तान से ट्रेन भर-भरकर बेघर परिवारों तथा लाशें भारत की तरफ आ रही थी। एसी परिस्थिति में भारतमाता ने गुलामी की जंजीरों से मुक्ति तो प्राप्त की लेकिन अपने शरीर के टुकड़े होने की भयानक वेदना से पीड़ित हुई। भारत के सभी नेताओं ने भारत का बँटवारा स्वीकार कर लिया था। लाल किले की प्राचीर से भारत की आन-बान-शान समान तिरंगा प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नहेरु ने लहराया। समग्र देश की एक आँख हँस रही थी, तो दूसरी आँख रो रही थी।

राष्ट्रीय एकता को संविधान में अधिक महत्त्व दिया गया। आजादी के समय ९० प्रतिशत जनसंख्या अनपढ़ और गाँव में रहती थी। यदि प्राचीन रुढ़िवादी जीवन जीने वाले लोगों को विकेंद्रीकरण की सत्ता मिले तो राष्ट्रीय एकता को ठेस लगे, एसी संभावनाएँ रही थी। अत: अंबेडकर ने भारत में रहने वाले समस्त नागरिकों के लिए एक समान कानून 'समान नागरिक संहिता' का प्रस्ताव रखा। उसके विरुद्ध कन्हैयालाल मुंशी और मुस्लिमों ने सहमति नहीं दी। मुस्लिमों का आग्रह था कि उनका जीवन 'मुस्लिम लॉ' अनुसार ही रहना चाहिए। अंबेडकर ने भाषावार प्रांत रचना की हिमायत की, लेकिन उससे प्रांतिय राष्ट्रवाद निर्माण होने की संभावनाएँ रही थी। जो राष्ट्र के लिए नुकसानकर्ता साबित हो सकती थी। अत: उन्होंने सभी राज्य को जोड़ने वाली राष्ट्रीय भाषा के तौर पर हिंदी की हिमायत की। प्रशासनिक भाषा के तौर पर हिंदी को स्वीकार किया गया था। अंबेडकर अस्पृश्यता के कारण जो भाषा पढ़ नहीं सके थे वह देवभाषा संस्कृत को शिक्षण में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला।

भारत जैसे बहुभाषी, बहुराज्य देश को एक सूत्र में रख सके, ऐसा संविधान देना बहुत कठिन था, क्योंकि अंबेडकर मसौदा समिति के अध्यक्ष होने के बावजूद वे खुद फैसला नहीं ले सकते थे। उपसमितियाँ कई थी। तदुपरांत कई सभ्य चुस्त

गांधीवाद के आधार पर सोचते और काम करते, तो हिन्दु संगठन अपने तरीके से सोचते थे। पूंजीवादी और उद्योगपति भी अपने तरीके से संविधान में कुछ जोड़ने में प्रयासरत थे। सरदार और नहेरु के बीच रहे वैचारिक मतभेद के बारे में सभी जानते ही थे। उसमें भी सोमनाथ मंदिर के जीर्णोद्धार और किसानों की जमीन मालिकी अधिकार छीन लिया न जाए – उसके लिए सरदार किसी भी तरह का समाधान करने के लिए तैयार नहीं थे। कन्हैयालाल मुंशी नहेरु की आज्ञानुसार चलते थे और उपसमितियों द्वारा लिए गए फैसलों में अपना अभिप्राय देकर गलत दखलंदाजी करते थे। इन सभी विवादों को दुर्वासा जैसे स्वभाव वाले अंबेडकर को सहन करना पड़ता था और उसमें से सही फैसला करके भारत की मजबूत इमारत के रूप में भव्य चुनाई करनी थी। डॉ. बाबासाहब ने भारत को मजबूत इमारत के रूप में भव्य संविधान दिया।

अंबेडकर ने भारत के संविधान के लिए १४१ दिन रात-दिन एक करके लगातार अठारह घंटे काम करके पठन-लेखन तथा विभिन्न देशों के संविधान का अध्ययन इत्यादि करके ३४३ कलम और १३ परिशिष्ट के साथ मसौदा तैयार किया था। उसमें ७६३५ सुधार करके २४७३ परिशिष्टों वाला संविधान पास किया गया था।

इस देश का संविधान बनने से पूर्व ही अनेक प्रकार के बादल और कोहरे ने इस कार्य को धुंधला करने का प्रयास किया था। परंतु डॉ. बाबासाहब अंबेडकर जैसे एक दिव्य पुरुष ने देश को विश्व का श्रेष्ठ संविधान दिया। १९५० की २६ जनवरी को यह संविधान अमल में आया। उसमें भारत के भविष्य में खड़ी होने वाली अनेकों समस्याओं और प्रश्नों पर विचार कर, अनेक पहलुओं पर विचार करके ग्रंथ रूप में डॉ. बाबासाहब ने भारत को विश्व का श्रेष्ठ संविधान दिया।

संविधान सभा में कार्य में व्यस्त डॉ. बाबासाहब अंबेडकर

हिन्दुओं को चाहिए थे वेद, इसलिए उन्होंने व्यास को बुलाया; जो सवर्ण नहीं थे। हिन्दुओं को चाहिए था एक महाकाव्य, इसलिए उन्होंने वाल्मीकि को बुलाया, जो खुद अछूत थे। हिन्दुओं को चाहिए था एक संविधान और उन्होंने मुझे बुलावा भेजा।

डॉ. भीमराव अंबेडकर

संविधान की रचना के बाद डॉ. अंबेडकर का अभिवादन करते प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

हिन्दु कोड बिल और अन्य मामलों पर देश के प्रथम मंत्रिमंडल में से इस्तीफा देने के बाद संसद में जवाहरलाल नहेरु के इशारे पर बोलने नहीं देने से संसदभवन के बाहर प्रेस को इस्तीफा देने का कारण बताते डॉ. अंबेडकर

भारत के प्रथम मंत्रिमंडल से डॉ. अंबेडकर का इस्तीफा

भारत देश आजाद हुआ उसके प्रथम प्रधानमंत्री के रुप में जवाहरलाल नहेरु के नेतृत्व पर देश को सर्वाधिक आशा थी, लेकिन देश के प्रथम मंत्रिमंडल से दो लोगों ने इस्तीफा दिया था। इन दोनों के इस्तीफा देने की वजह देश के लिए जानना जरूरी है, क्योंकि दोनों का संबंध देश के भविष्य के साथ जुड़ा हुआ है। दोनों के इस्तीफों के यह कारण जिस समस्या की ओर निर्देश करते हैं, वे समस्याएँ इस इस्तीफे पर कांग्रेस के जड़ रुख और तत्कालीन सत्ताधीशों के व्यवहार के कारण आज सदियों के बाद भी भारत की छाती पर अट्टाहास के साथ तांडव कर रही हैं। एक इस्तीफा था तत्कालीन उद्योगमंत्री डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का, जिन्होंने नहेरु सरकार की कश्मीर को देश से अलग दर्जा देने की नीति के विरुद्ध इस्तीफा दिया था। एक ही राज्य का फैसला नहेरु ने अपने पास रखा था। बाकी तमाम राज्यों को भारत में शामिल करने की जिम्मेदारी सरदार पटेल के पास थी। जिसमें सरदार संपूर्ण सफल हुए और नहेरु संपूर्ण निष्फल रहे। नहेरु के शेख अब्दुल्ला के प्रेम की वजह से ही कश्मीर समस्या देश के सामने विकराल होकर खड़ी रही है। इतना ही नहीं, इस समस्या के कारण समग्र भारत में आतंकवादी प्रवृत्ति बढ़ रही है। दूसरा इस्तीफा था देश के तत्कालीन कानूनमंत्री डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर का। उन्होंने इस्तीफा देने के बाद संसद में अपने इस्तीफा देने के पीछे की वजह बताने के लिए मंजूरी मांगी, परंतु कांग्रेस के इशारे पर मंजूरी नहीं दी गई। अत: उन्होंने वह भाषण संसद के बाहर प्रेस को दिया। इस कथन से ज्ञात होता है कि कांग्रेस कैसी मैली मुराद के साथ काम कर रही थी। एक हाथ से दलितों को सहायता देने के दिखावे के साथ दूसरे हाथ से वह सहायता वापस खींच रही थी।

केन्द्रीय मंत्रिमंडल से अपना इस्तीफा देने का स्पष्टीकरण जो संसद में पढ़ने नहीं दिया गया था वह डॉ. बी. आर. अंबेडकर का बयान :

सभागृह, मुझे भरोसा है। आप प्रमाणित नहीं तो अप्रमाणित रूप से जानते हैं कि, मैं मंत्रिमंडल का सदस्य नहीं रहा। मैंने अपना इस्तीफा २७ सितम्बर, १९५१ के दिन प्रधानमंत्री को सुप्रत किया है। मुझे तुरंत मुक्त करने के लिए बताया गया हैं। प्रधानमंत्री ने दूसरे दिन उसको स्वीकार किया था। मैं दिनांक २८ और शुक्रवार के बाद भी बतौर प्रधान कार्यरत रहा हूँ तो उसके पीछे का कारण यह है कि, प्रधानमंत्री ने मुझे सत्र के अंत तक कार्यरत रहने के लिए अनुरोध किया था। इस अनुरोध का मैंने संवैधानिक प्रणाली के पालनकर्ता के रूप में स्वीकार किया है। कार्यवाही के हमारे नियम हैं कि अपने पद से इस्तीफा देने वाले मंत्री से अपने इस्तीफा देने के पीछे का उद्देश्य स्पष्ट करने के लिए उसे निजी निवेदन देने की सहमति दी जाती है। केबिनेट के अनेक सदस्यों ने अपने पद से मेरी अवधि दौरान इस्तीफा दिया है, इसके बावजूद भी जिस मंत्रियों ने इस्तीफा दिया है, उस इस्तीफा देने के पीछे ऐसी कोई एकसमान पद्धति नहीं है। क्योंकि कितने मंत्री निवेदन दिए बिना चले गए हैं और कितनों ने निवेदन दिए हैं। थोड़े दिनों तक मैं कौन से मार्ग का अनुसरण करूं, इस बात को लेकर दुविधा में था। तमाम परिस्थितियों का विचार करने बाद मैं इस निर्णय पर आया कि निवेदन करना सिर्फ जरूरी है इतना ही नहीं, अपितु इस्तीफा देने वाले सदस्य का सभागृह के प्रति यह एक फर्ज भी है। सभागृह को केबिनेट के अंदर किस तरह से काम होता है, यह जानने का उपयुक्त मौका नहीं मिलता है। केबिनेट में सुसंवादिता है या विरोधाभास है यह जानने का सभागृह में कोई उपयुक्त मौका नहीं मिलता है। इसका सीदा-सादा कारण यह है कि केबिनेट की संयुक्त जिम्मदारी है जो अन्वय के मुताबिक अल्पमत में हैं एसे सदस्य को अपना मतभेद जाहिर करने का अधिकार नहीं है। परिणाम स्वरूप संसद के सभागृह ऐसा मानता है कि केबिनेट के सदस्यों में कोई विरोधाभास नहीं हैं। जबकि हकीकत में विरोधाभास फैल रहा है। अत: निवृत्त होने वाले मंत्री को किसलिए भेजा जा रहा है और क्यों संयुक्त जिम्मेदारी जारी रखने के लिए वह शक्तिमान नहीं है ? इस बारे में बताते हुए सभागृह को निवेदन करने उसका फर्ज बनता है।

दूसरा, यदि मंत्री निवेदन किए बिना जाता है तो लोग एसी आशंका करेंगे कि

मंत्री के सदाचरण के संबंध में, उसकी सार्वजनिक अथवा निजी मान-प्रतिष्ठा में कुछ गलत है। मैं मानता हूँ कि मंत्रियों को ऐसी आशंका के लिए कोई अवसर देना ही नहीं चाहिए। इसलिए एकमात्र मार्ग निवेदन करने का है।

तीसरा, हमारे पास हमारे अखबार हैं। वे कितनों के पक्ष में और दूसरों के विरुद्ध में अपने पूर्वाग्रह रखते हैं। अखबार के फैसले कदाचित् ही गुणदोष पर आधारित होते हैं। जब भी उनको रिक्त स्थान मिलेगा तब वे उस रिक्त स्थानों को इस्तीफे के कारणों से भरने के आदी हैं। जो कारण सच्चे नहीं है, लेकिन जो लोग उनके पक्ष में होंगे उनको अच्छी स्थिति में रखेंगे और जो उनके पक्ष में नहीं होंगे उनको खराब स्थिति में रखेंगे। मैंने देखा है कि यही चीज मेरे मामले में भी यह बात बन सकती है। इसी वजह से मैनें विदायी लेने से पूर्व निवेदन करने का फैसला लिया है।

प्रधानमंत्री ने अपनी केबिनेट में कानून मंत्री का पद स्वीकार करने के लिए मुझे निमंत्रण दिया था। उस दिन से अब तक ४ साल १ महीना और २६ दिन गुजर गए हैं। यह ऑफर मेरे लिए चौंका देने वाला था। मैं विरोधी पक्ष था और १९४६ के अगस्त में कार्यकारी सरकार की रचना की गई तब मुझे मंत्रिमंडल के लिए अयोग्य माना गया था। मैं इस विषय में अनुमान लगा रहा था कि, प्रधानमंत्री की मनोवृत्ति में बदलाव लाने वाली ऐसी कौन सी बात हो सकती है? मेरे पास आशंकाएँ थी। मैं यह नहीं जानता था कि जो लोग कभी मेरे मित्र न थे उनके साथ मैं कैसे काम कर सकूंगा। एक कानून मंत्री के रूप में भारत सरकार के मुझसे पूर्व कानून मंत्री की संजोई कुशाग्रता और कानूनी ज्ञान के आधार को मैं संभाल सकूंगा कि नहीं? इस बारे में मुझे शंका थी। किंतु मैंने मेरी शंकाओं को एक ओर रखकर और प्रधानमंत्री के ऑफर को इस वजह से स्वीकार किया कि, हमारे राष्ट्र के निर्माण के लिए जब भी मेरे सहयोग की माँग की जाती है, तब मुझे सहयोग देने से इनकार नहीं करना चाहिए। बतौर केबिनेट सभ्य और कानूनमंत्री अपने काम की गुणवत्ता के विषय में निर्णय करने का काम मुझे दूसरों पर छोड़ देना चाहिए।

अब मैं मेरे साथियों के साथ के मेरे संबंधों को काट देने की तरफ मुझे ले जाने

वाली बातों का उल्लेख करूँगा। विभिन्न कारणों से पिछले कुछ समय से विदाई लेने की इच्छा बलवंत बन रही थी।

मैं सर्वप्रथम संपूर्णत: निजी मामलों का उल्लेख करूँगा। मुझे इस्तीफे की तरफ ले जाने वाले यह कारण नहीं हैं। वायसरॉय की एक्जिक्युटीव काउंसिल का सदस्य होने के नाते मैं जानता हूँ कि, कानून विभाग का प्रशासन के रूप में कोई महत्त्व नहीं होता है। उसने भारत सरकार की किसी भी नीति को बनाने का कोई मौका ही नहीं दिया। हम उसको सिर्फ साबुनदानी कहने के आदी हैं। जो वृद्ध वकीलों के खेलने का एक अच्छा साधन है। जब प्रधानमंत्री ने मुझे ऑफर दिया तब मैंने उनको बताया था कि शिक्षा और अनुभव से वकील होने के बावजूद मैं एक प्रशासनिक विभाग संभालने में सक्षम हूँ और वायसरॉय की एक्जिक्युटीव काउंसिल में दो प्रशासनिक विभाग संभालता था : एक मजदूर और दूसरा सी.पी.डबल्यु.डी. जिसमें मैंने अनेक प्रोजेक्टों का आयोजन किया था। मुझे कोई प्रशासनिक विभाग दिया जाए तो मुझे अच्छा लगेगा। प्रधानमंत्री सहमत हुए और उन्होंने बताया था कि वे योजना विभाग बनाने का इरादा रखते हैं। दुर्भाग्य से योजना विभाग काफी देर से बनाया गया और जब उसकी रचना हुई तब उसमें से मुझे रद्द किया गया। मेरी अवधि के दौरान एक मंत्री से दूसरे मंत्री के पास अनेक विभागों में तबदीली हुई। मैंने ऐसा सोचा कि इनमें से किसी एक के बारे में मेरे लिए विचार किया जाएगा। लेकिन मुझे हमेशा बातचीत से ही दूर रखा गया था।

अनेकों मंत्रियों को दो-तीन विभाग दिए गए हैं। अत: उन पर बहुत बोझ हैं। मेरी तरह दूसरे भी ज्यादा काम प्राप्त करना चाहते हैं। कोई मंत्री थोड़े दिनों के लिए विदेश जाते हैं तब भी अस्थायी समय के लिए वह विभाग संभालने के लिए भी मेरे बारे में सोचा नहीं जाता। मंत्रियों को सरकारी काम देने में प्रधानमंत्री कौन से सिद्धांत का अनुसरण कर रहे हैं ? यह समझना मुश्किल है। क्या हैसियत का है ? क्या विश्वास का है ? क्या वह दलील करने की शक्ति का है ? मुझे विदेशी मामलों की समिति, संरक्षण समिति जैसे कि केबिनेट की मुख्य समिति के सभ्य के रूप में भी नियुक्त नहीं किया गया है। जब आर्थिक मामलों की समिति की

रचना की गई तब मुख्य तौर पर अर्थशास्त्र और वित्त का विद्यार्थी होने की दृष्टि से इस समिति में मेरी नियुक्ति की जाएगी ऐसी मेरी मान्यता थी। लेकिन मुझे दूर रखा गया। उसके बाद की रचना में मेरा नाम समिति में जोड़ा गया। किंतु यह मेरे विरोध के परिणाम का फल था।

मुझे भरोसा है कि प्रधानमंत्री सहमत होंगे कि इस संबंध में मैंने कभी उनको शिकायत नहीं की। मैं केबिनेट के अंदर सत्ता की राजनीति के लिए जो खेल खेले जाते हैं, उस खेल के पक्ष में कभी भी नहीं रहा हूँ या फिर जब स्थान रिक्त होने पर उसे पाने के लिए जो खेल खेले जा रहे हैं, उनके पक्ष में भी नहीं रहा हूँ। मैं सेवा में विश्वास रखता हूँ। मेरे साथ गलत किया जा रहा है। यह मुझे नहीं लगा कि यह पद्धति मेरे लिए अमानवीय बन जाएगी।

अब मैं सरकार के प्रति मुझे असंतोष का अनुभव कराने वाली दूसरी बातों का जिक्र करूँगा। वह पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जाति के साथ किए जा रहे व्यवहार से संबंधित हैं। मैं क्षमाप्रार्थी हूँ कि संविधान में पिछड़े वर्गों के लिए किसी भी तरह की सुरक्षा को शामिल नहीं किया गया। वह राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए गए आयोग की शिफारिश के आधार पर कारोबारी सरकार पर छोड़ा गया है। संविधान पास करने के बाद एक साल गुजर गया है। लेकिन सरकार ने आयोग की नियुक्ति के विषय में विचार भी नहीं किया है।

सन १९४६ के दौरान जब मैं पद पर नहीं था, वह वर्ष मेरे और अनुसूचित जाति के अग्रिम सदस्यों के लिए बहुत चिंता का वर्ष था। अंग्रेजों को अनुसूचित जनजाति के लिए संवैधानिक सुरक्षा के मामले में उनके द्वारा दी गई जमानत से समझ आ गया था तथा अनुसूचित जातियों को इस मामले में संवैधानिक सभा क्या करेगी, इसकी खबर नहीं थी। इस चिंता के समय में मैंने संयुक्त राष्ट्रों को अनुसूचित जातियों की स्थिति के बारे में बयान करने के लिए रिपोर्ट तैयार कि थी। परंतु मैंने वह सौंपी नहीं थी। मुझे यह लगा कि, "संविधान सभा और भावी संसद को इस मामले को हल करने का मौका दिया जाए और तब तक इंतजार करना बेहतर रहेगा। अनुसूचित जातियों की स्थिति की सुरक्षा के लिए संविधान

में की गई व्यवस्था मुझे संतोष दे सके ऐसी नहीं थी। मैंने उसका इस आशा से स्वीकार किया था कि सरकार उनको असरदार बनने के लिए कोई संकल्प बताएगी।

अनुसूचित जातियों की आज स्थिति क्या है ? मैं मानता हूँ कि वह पहले के जैसी ही है। वहीं पुराना दमन, वहीं पुराना भेदभाव जो पहले था वह अभी भी हैं लेकिन शायद उससे भी ज्यादा खराब स्वरूप में प्रवर्तमान हो गया है। मैं ऐसे सैंकड़ों केसों का उल्लेख यहाँ कर सकता हूँ, जिसमें दिल्ली के आस-पास तथा नजदीक के स्थानों के अनुसूचित जाति के लोगों ने मेरे पास आकर सवर्ण हिन्दुओं के जुल्मों की दर्दकथाओं को पेश किया है। पुलिस ने उनकी शिकायत दर्ज करने और किसी भी प्रकार की सहायता करने से इनकार कर दिया है, ऐसी पेशी की हैं। मुझे इस बात का आश्चर्य हो रहा है कि भारत में अनुसूचित जातियों की जो स्थिति हैं वैसी विश्व में किसी दूसरे की स्थिति जानने को नहीं मिली है। फिर भी अनुसूचित जातियों को क्यों राहत नहीं दी जाती है ? मुस्लिमों की सुरक्षा के लिए सरकार जो चिंता दर्शाती है। यदि उसकी तुलना की जाए तो प्रधानमंत्री का पूरा समय और ध्यान मुस्लिमों के रक्षण के लिए दिया जाता है। भारत में मुस्लिमों को जहाँ और जब भी जरूरत हो वहाँ और तब सबसे ज्यादा संरक्षण देने की मेरी इच्छा किसी से भी, यहाँ तक कि प्रधानमंत्री से भी कम नहीं है। परंतु मैं यह जानना चाहता हूँ कि जिसको संरक्षण की जरूरत है ऐसे लोग क्या सिर्फ मुस्लिम ही हैं ? क्या अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और भारतीय इसाईयों को रक्षण की जरूरत नहीं ? क्या कभी इन कामों के लिए चिंता जताई है ? जहाँ तक मैं जानता हूँ वहाँ तक जरा भी नहीं और फिर भी यह काम है। जिसको मुस्लिम से ज्यादा परवाह और ध्यान की जरूरत है।

मैं सरकार द्वारा की जाने वाली अनुसूचित जाति के प्रति उपेक्षा के बारे में अपने अंदर रहे गुस्से पर काबू नहीं रख पाया और एक बार मैंने अनुसूचित जाति की सार्वजनिक सभा में अपनी भावनाएँ व्यक्त की थी। अनुसूचित जातियों को १२ १/२ (साढ़े बारह) प्रतिशत प्रतिनिधित्व देने के जमानत देने वाले कानून से उनको लाभ नहीं हुआ हैं। ऐसा मेरा आरोप सही है कि नहीं? जब ऐसा प्रश्न सम्माननीय

गृहमंत्री को पूछा गया था तब इस प्रश्न के उत्तर में सम्माननीय गृहमंत्री ने बताया था कि मेरा आरोप बेबुनियाद है। तत्पश्चात् किसी कारणवश (वह शायद अपनी अंतरात्मा की शांति के लिए) मुझे डर है कि उन्होंने भारत सरकार के विभिन्न विभागों में सरकारी नौकरियों में हाल ही में अनुसूचित जाति के कई उम्मीदवारों की भर्ती की गई, इसकी रिपोर्ट देने का परिपत्र भी भेजा है। मुझे बताया गया कि महत्वपूर्ण विभागों में 'नील (शून्य)' या करीबन नील कहा है। यदि मेरी जानकारी सच्ची है तो मुझे सम्माननीय गृहमंत्री के दिए हुए जवाब के बारे में नुक्तेचीनी की जरूरत नहीं है।

मेरे बचपन से जिसमें मैंने जन्म लिया, वह अनुसूचित जातियों के उद्धार के लिए मैंने अपने आपको अर्पण किया है। मेरे मार्ग में किसी प्रकार के प्रलोभन नहीं थे ऐसा नहीं है। यदि मैंने अपने खुद हित के लिए सोचा होता तो मैं जो बनना चाहता था वह बन गया होता। यदि मैं कांग्रेस में जुड़ गया होता तो मैं संस्था में सर्वोच्च स्थान पर पहुँच गया होता। परंतु मैंने कहा वैसे, मैंने अपने आपको अनुसूचित जातियों-अनुसूचित जनजातियों और गरीबों के उद्धार के लिए अर्पण किया है और मैं ऐसे सिद्धांत का अनुसरण करता हूँ जो बताता है कि यदि आप जिस उद्देश्य को सिद्ध करना चाहते हो, उस उद्देश्य के विषय में उत्साही है, तो संकुचित मानस वाला होना बेहतर है। आज अनुसूचित जातियों के हितों की उपेक्षा की जा रही हैं। यह देखकर मुझे कितना दुःख हुआ है, उसकी आप कल्पना कर सकते हैं।

तीसरी बात में न सिर्फ असंतोष है अपितु हकीकत में चिंता की वजह भी दी गई है। देश की विदेशनीति, जो कोई भी हमारी विदेशनीति के मार्ग को समझा है और इसके साथ भारत के प्रति दूसरे देशों के रुख को समझा है, वे हमारी तरफ के रुख में आए अचानक के परिवर्तन को समझे बिना नहीं सके हैं। १५ अगस्त, १९४७ को जब बतौर स्वतंत्र देश हमने जीवन की शुरुआत की, तब ऐसा एक भी देश नहीं था जो हमारे लिए खराब भावना रखता हो। विश्व में प्रत्येक देश हमारे मित्र थे। आज चार वर्ष के बाद हमारे सभी मित्र हमें छोड़कर चले गए हैं। अब हमारे कोई मित्र नहीं रहे हैं। हमने अपने आपको सबसे अलग कर दिया है। हम

एकाकी मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं और संयुक्त राष्ट्र संस्था में हमारे प्रस्ताव को समर्थन देने वाला कोई नहीं है। जब मैं हमारी विदेशनीति के बारे में सोचता हूँ, तब मुझे बिस्मार्क और बर्नार्ड शो की कही बात याद आती है। बिस्मार्क कहते हैं कि, "राजनीति आदर्शों को सिद्ध करने का खेल नहीं है। राजनीति संभावनाओं का खेल है।" थोड़े समय पूर्व बर्नार्ड शो ने कहा था कि, "अच्छे विचार रखना बहुत अच्छी बात है, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि बहुत अच्छा बनना भी कई बार खतरनाक है।" अपनी विदेशनीति विश्व के दो महान मानवों द्वारा उच्चारित बुद्धिमानी के शब्दों से संपूर्णत: विरुद्ध है।

नामुमकिन काम करने और ज्यादा अच्छा बनने की यह नीति हमारे लिए कितनी खतरनाक साबित हुई है। यह हमारे सैन्य खर्च के अंतर्गत हमारे साधनों के लिए खर्च करने से हमारे लाखों भूखे लोगों के लिए अनाज प्राप्त करने में भी मुसीबत हो रही है।

हम प्रत्येक वर्ष में प्राप्त ३५० करोड़ की आय में से करीबन १८० करोड़ रुपया सिर्फ सेना के पीछे खर्च करते हैं। यह एक बहुत बड़ा खर्च हमारी विदेशनीति का सच्चा परिणाम है। हमारा समग्र संरक्षण खर्च हमें ही उठाना पड़ता है। क्योंकि जब भी आपातकालीन स्थिति खड़ी होती तब जिन पर हम आधार रख सकें ऐसा हमारा कोई मित्र नहीं हैं। मुझे इस बात का आश्चर्य होता है कि क्या यह योग्य विदेशनीति है ?

पाकिस्तान के साथ हमारी लड़ाई हमारी विदेशनीति का ही एक हिस्सा है। मैं इस विषय में बहुत ही असंतुष्ट हूँ। पाकिस्तान के साथ हमारे संबंध खराब होने की दो ही वजह हैं : एक कश्मीर और दूसरी पूर्व बंगाल में हमारे लोगों की स्थिति।

मुझे लगता है कि हमें पूर्व बंगाल के विषय में अधिक चिंता करनी चाहिए। पूर्व बंगाल की सभी अखबारी रिपोर्टों से हमारे लोगों की स्थिति कश्मीर से ज्यादा असह्य लगती है। फिर भी हम अपना पूरा ध्यान कश्मीर के प्रश्न पर देते हैं। मुझे ऐसा लगता ही कि हम अवास्तविक प्रश्न के विषय में लड़ रहे हैं। हम ज्यादातर

जिस समय के मामले को लेकर लड़ रहे हैं वह मामला यह है कि सही कौन है और गलत कौन है ? मेरे लिए सही मुद्दा यह नहीं है कि कौन सही है। परंतु यह है कि क्या सही है ? इस मुख्य प्रश्न को लेकर मेरा मंतव्य हमेशा से यह रहा है कि, इसका योग्य हल कश्मीर के बँटवारे का है। हिन्दु और बौद्धों को भारत का हिस्सा दीजिए और मुस्लिम हिस्सा पाकिस्तान को दीजिए। जैसा हमने भारत के मामले में किया है वास्तव में हम कश्मीर के मुस्लिम हिस्से के साथ निस्बत नहीं रखते हैं। यह कश्मीर और पाकिस्तान के बीच की बात है। उनको जो अच्छा लगे वैसे इस प्रश्न का हल निकाले या फिर यदि उनको इसको तीन भागों में विभाजित करना हैं तो तहकुबी विभाग, खाई विभाग तथा जम्मू-लद्दाख प्रदेश ऐसे तीन हिस्से कीजिए और सिर्फ खाई में लोकमत लीजिए। मुझे डर है कि प्रस्तावित लोकमत में जो समग्रतया लोकमत होना है उसमें कश्मीर के हिन्दु और बौद्धों की इच्छा विरुद्ध उनको पाकिस्तान ले जाने की संभावना है। आज हम पूर्व बंगाल में जिस प्रश्न का सामना कर रहे हैं, ऐसा ही सामना इस प्रश्न का करना पड़ेगा।

अब मैं चौथी बात का उल्लेख करूंगा जो मेरे इस्तीफे के साथ अत्याधिक संबंधित है। केबिनेट जैसे समिति में लिए गए फैसले को सिर्फ नोट करने वाली और लेने वाली ऑफिस बन गई हैं। जैसा मैंने कहा है वैसे, केबिनेट अब समितियों द्वारा काम करती हैं। एक संरक्षण समिति है। विदेशी बातों से संबंधी तमाम मामलों का संरक्षण समिति द्वारा समाधान किया जाता हैं। मैं इन समितियों में एक भी समिति का सदस्य नहीं हूँ। वे लोहे से बने परदे के पीछे काम कर रहे हैं। जो लोग समिति के सदस्य नहीं हैं, वे नीति को स्वरूप देने में हिस्सा लेने के किसी भी अवसर के बिना सिर्फ संयुक्त जिम्मेदारी उठाते हैं। यह एक असंभव स्थिति है।

अब मैं उस बात को हाथ में लूँगा जो मुझे इस्तीफा देना चाहिए ऐसा फैसला लेने तक ले गई। यह बात हिन्दु कोड के साथ जो व्यवहार किया गया वह है। बिल ११ अप्रेल १९४७ में सभागृह में दाखिल किया गया था। चार वर्ष के जीवन के बाद उसकी हत्या की गई और चार कलम पास करने के बाद यह बिना शोक किए और बिना गुणगान गाए ही उसकी मृत्यु हो गई। जब वह सभागृह समक्ष था

तब रह-रहकर लहर आती है वैसे जिया था। एक वर्ष तक सरकार को वह प्रवर समिति को सौंपना जरूरी नहीं लगा था। दिनांक ०९-०४-१९४८ के दिन प्रवर समिति को सौंपा गया। रिपोर्ट सभागृह को दिनांक १२-०४-१९४८ के दिन पेश कि गई थी और रिपोर्ट पर सोचने के लिए दरखास्त दिनांक ३१-०८-१९४८ के दिन मुझे की गई। यह सिर्फ ऐसी दरखास्त थी कि बिल कार्यसूची पर रखा गया है। इस दरखास्त पर चर्चा फरवरी की बैठक वर्ष १९४९ तक भी नहीं की गई थी। चर्चा को १० महीने में बाँटी गई थी। फरवरी में ४ दिन, मार्च में १ दिन और १९४९ के अप्रेल में २ दिन। तत्पश्चात् १९४९ के दिसम्बर में बिल के लिए १ दिन १९ दिसम्बर बाँटा गया था। उस दिन सभागृह ने मेरी दरखास्त को स्वीकृति दी कि प्रवर समिति के रिपोर्ट के अनुसार बिल को विचार में लिया जाए। १९५० के वर्ष के बिल के लिए कोई समय नहीं दिया गया था। दूसरी बार बिल १९५१ के फरवरी की ५ वीं तारीख को सभागृह समक्ष आया। जबकि कलमवार बिल की बातचीत को स्वीकृति दी गई। सिर्फ तीन दिन ५, ६ और ७ फरवरी बिल के लिए दिए गए थे और ततपश्चात् उसका काम अधूरा छोड़ दिया गया।

वर्तमान संसद की यह आखिरी बैठक होने के नाते केबिनेट हिन्दु कोड बिल को संसद पूर्ण हो उससे पहले पास करना चाहिए या फिर क्या उसको नई संसद पर छोड़ देना चाहिए ? उसकी चर्चा करनी थी। केबिनेट ने सर्वानुमति से फैसला लिया कि बिल को इस संसद में पास करना चाहिए। अत: बिल को कार्यसूची में रखा गया और १९५१ के सितम्बर की १७ को कलमवार बातचीत के लिए स्वीकार किया गया। जब चर्चा चल रही थी तब प्रधानमंत्री ने नई दरखास्त पेश की। जैसे कि बिल को प्राप्य समय के अंदर संपूर्णत: पास करना चाहिए और पूरा बिल कचरे के डिब्बे में जाए इससे अच्छा कि उसका एक हिस्सा कानून में परिवर्तित करना इच्छनीय है। यह मेरे लिए बहुत दु:ख की बात है। अपितु मैं सहमत हूँ। क्योंकि कहावत हैं कि, जब पूरा नाश होने की संभवना हो तब थोड़ा हिस्सा बचा लेना बेहतर हैं। प्रधानमंत्री ने सुझाव दिया कि हमें मेरीज और डायवोर्स का हिस्सा पसंद करना चाहिए। बिल उसके टुकड़े के स्वरूप में आगे बढ़ा।

चर्चा के दूसरे दो या तीन दिन बाद प्रधानमंत्री दूसरी दरखास्त लेकर आए। इस बार उनकी दरखास्त समग्र बिल से मेरेज और डायवोर्स के हिस्से को रद्द करने की थी। यह मेरे लिए बहुत आधातजनक बात थी। मैं स्तब्ध हो गया और कुछ नहीं कह सका। मैं इस टुकड़े हुए बिल को रद्द किया जाए यह स्वीकार करने को तैयार नहीं था। क्योंकि दूसरे केबिनेट के सभ्य अपने बिलों को इससे पहले पास करवाना चाहते थे। मैं यह नहीं समझ सका कि बनारस और अलीगढ़ युनिवर्सिटी बिल को किस तरह, प्रेस बिल को किस तरह ऐसे-वैसे करके हिन्दु कोड बिल के पहले स्थान दे सकते हैं ? ऐसा नहीं कि अलीगढ़ या बनारस युनिवर्सिटी के संचालन के लिए कानूनपोथी में कोई कानून ही नहीं था। ऐसा भी नहीं था कि यदि इस बिलों को इस बैठक में पास नहीं किया गया होता तो ये युनिवर्सिटियाँ बर्बाद हो गई होती। ऐसा भी नहीं था कि प्रेस बिल अत्यावश्यक था। कानूनपोथी में कानून है और इसके लिए भी इंतजार किया जा सकता था। मुझ पर इसका ऐसा असर हुआ कि प्रधानमंत्री चूँकि सन्निष्ठ होने के बावजूद भी हिन्दु कोड बिल पास कराने में जरूरी उत्सुकता और दृढ़ता नहीं रख रहे हैं।

इस बिल के मामले में मुझे बहुत मानसिक यातनाओं से गुजरना पड़ा था। पक्षीय तंत्र की सहायता भी मुझे नहीं दी गई थी। प्रधानमंत्री ने पक्ष के इतिहास में एक असाधारण बात के समान मत देने की स्वतंत्रता दी थी। मैंने इसकी परवाह नहीं की। अपितु दो वस्तु की मुझे अपेक्षा थी। मैंने व्याख्यानों पर समय मर्यादा के बारे में पक्ष के व्हिप एवं चीफ व्हिप की जब चर्चा पूरी हो जाए तब समापन तरफ आगे बढ़ने की सूचना की अपेक्षा रखी थी। व्याख्यान की समय मर्यादा के बारे में व्हिप दिया गया होता तो बिल पास हो गया होता। जब मत की स्वतंत्रता दी गई तब व्याख्यानों की समय मर्यादा के विषय में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। परंतु ऐसा व्हिप कभी दिया ही नहीं गया।

संसदीय मामलों के मंत्री जो पक्ष के प्रमुख व्हिप भी होते हैं। उनके हिन्दु कोड बिल के विषय में व्यवहार के बारे में कम से कम शब्दों में कहा जाए तो बहुत असाधारण रहा था। वे हिन्दु कोड बिल के संपूर्ण विरोधी रहे और समापन

दरखास्त पेश करने के लिए मुझे सहायता करेंगे कहकर हाजिर ही नहीं रहे। कई दिनों तक एक ही कलम पर चर्चा करके समय बर्बाद किया गया। परंतु चीफ व्हिप जिनका सरकारी समय की मितव्ययिता करने का तथा सरकारी कामों को आगे बढ़ाने का फर्ज है वह जब भी हिन्दु कोड चर्चा पर होता तब आयोजनबद्ध अनुपस्थित रहे हैं। मैंने इतने बेवफा व्हिप कभी नहीं देखें हैं। उनकी बेवफाई के बावजूद भी उन्होंने पक्ष के संगठन में बढ़ोत्तरी प्राप्त की। एसी परिस्थिति में मेरा यहाँ टिके रहना मुश्किल है।

ऐसा भी कहा गाया था कि बिल रद्द किया गया है। क्योंकि विरोध बहुत था। विरोध कितना प्रबल था ? यह बिल पक्ष में कई बार चर्चा में आया था और विरोधियों के मत द्वारा मंजूर किया गया था। पिछली बार पार्टी की बैठक में इस बिल पर काम आरंभ किया गया तब १२० सदस्यों में से सिर्फ २० सदस्य उसकी विरुद्ध थे। जब पार्टी में चर्चा के लिए बिल पर काम किया गया तब धारा ४ करीबन ३ १/२ (साढे तीन) घंटे के समय में पास की गई थी। यह दर्शाता है कि पक्ष के अंतर्गत बिल के विरुद्ध कितना विरोध था। सभागृह में भी बिल की २, ३, और ४ धाराओं पर मत लिए गए हैं। और हर बार हिन्दु कोड बिल की आत्मा जैसी चौथी धारा के विषय में उसके पक्ष में भारी बहुमत था।

अत: मैं समय की वजह से बिल रद्द करने के प्रधानमंत्री के फैसले को नहीं स्वीकार सकता हूँ। मेरा इस्तीफा देने का कारण बताने के लिए इस तरह विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण करने का फर्ज बनता है। क्योंकि कई लोगों ने ऐसा निर्देश दिया है कि मैं मेरी बीमारी की वजह से इस्तीफा दे रहा हूँ। मैं ऐसे निर्देशों का खंडन करना चाहता हूँ। मैं बीमारी के लिए मेरा फर्ज छोड़ दूँ ऐसा आदमी नहीं हूँ।

ऐसा भी कहा जा रहा हैं कि मेरा इस्तीफा देर से आया है यदि मुझे सरकार की विदेशनीति के बारे में और पिछड़े वर्गों तथा अनुसूचित जातियों के साथ के बर्ताव से असंतोष था तो, मुझे पहले ही इस्तीफा दे देना चाहिए था। आरोप शायद सच्चा लगे, लेकिन मेरे पास रहे कारणों ने मुझे रोककर रखा था। प्रथम स्थान पर काफी समय तक मैं केबिनेट का सदस्य रहा था और मैं संविधान बनाने में व्यस्त

रहा था उसने २६ जनवरी, १९५० तक मेरा संपूर्ण ध्यान खींचकर रखा था और तत्पश्चात् मैं लोकप्रतिनिधित्व बिल और डीलिमिटेशन ऑर्डर के साथ जुड़ा था। हमारी विदेशी बातों के बारे में मेरे पास कदाचित् ही समय था। यह कार्य अधूरा रखना मुझे उचित नहीं लगा।

दूसरे स्थान पर मैंने हिन्दु कोड की खातिर अपना इस्तीफा देना जरूरी नहीं समझा। कईयों के मत में हिन्दु कोड की खातिर ओहदे पर रहना मेरे लिए गलत होगा उनकी इस बात को मैंने भिन्न दृष्टिबिंदु से देखा। हिन्दु कोड इस देश में विधानगृह के द्वारा उठाया गया अभी तक का सबसे बड़ा समाजसुधार का कदम था। भूतकाल में भारतीय विधानगृह के द्वारा पारित किया गया अथवा भविष्य में पारित किया जाने वाला कोई भी कानून उसके महत्त्व के दृष्टिबिंदु से उसके मुकाबले आ सके ऐसा नहीं हैं। दो वर्ग के बीच की असमानता, स्त्री-पुरुष के बीच की असमानता जो हिन्दु सोसायटी की आत्मा है, उसको स्पर्श किए बिना आर्थिक प्रश्न संबंधित कानून पास करना हमारे संविधान का मजाक उड़ाने के बराबर हैं और गोबर के ढेर पर महल बनाने जैसा है। इसलिए मेरे इतने मतभेद होने के बावजूद भी मैं केबिनेट में बना रहा था। अत: यदि मैंने गलत किया है तो कुछ अच्छा करने की उम्मीद से किया है। क्या ऐसी उम्मीद के लिए मेरे पास वजह नहीं थी ? विरोधियों की अवरोधात्मक तरकीबों को पार करने का मेरे पास कारण नहीं था ? मैं इस संदर्भ में प्रधानमंत्री को सभागृह में किए गए सिर्फ तीन निवेदनों का उल्लेख करूंगा।

२८ नवम्बर, १९४९ के दिन प्रधानमंत्री ने भरोसा दिलाते हुए बताया था कि, "विशेष में सरकार इस बाबत (हिन्दु कोड) के विषय में प्रतिबद्ध है वह उसे पारित करने वाली है। सरकार इसके साथ आगे बढ़ेगी। इस कदम को स्वीकार करने का काम इस सभागृह का है, लेकिन यदि सरकार महत्त्व का कदम उठाए और सभागृह उसका अस्वीकार करें तो सरकार चली जाएगी और उसके स्थान पर दूसरी सरकार आएगी। यह स्पष्ट रूप से समझना चाहिए यह एक महत्व का कदम है। जिसको सरकार ने महत्त्व दिया है जिसके आधार पर वह टिकेगी या गिरेगी।"

पुन: १९ दिसम्बर, १९४९ को प्रधानमंत्री ने कहा था : "हम इस हिन्दु कोड-बिल महत्त्व का नहीं है ऐसा सोच रहे हैं, ऐसा तनिक भी सभागृह सोचे यह मैं नहीं चाहता हूँ। क्योंकि हम उसे सबसे ज्यादा महत्त्व देते हैं। जैसा मैंने कहा था वैसे आप कोई विशेष धारा या अन्य किसी मामले के कारण नहीं, अपितु आर्थिक और सामाजिक रूप से इस विशाल प्रश्न के प्रति बुनियादी अभिगम के सबब हमने इस देश में राजकीय स्वतंत्रता, राजकीय स्वावलंबन हासिल किया है। सफर की यह पहली मंजिल है और दूसरी मंजिल हैं : आर्थिक, सामाजिक और अन्य। यदि समाज को आगे बढ़ना है तो सभी मोर्चो पर ऐसी सुव्यवस्थित प्रगति होनी चाहिए।"

२६ सितम्बर, १९५१ के दिन प्रधानमंत्री ने कहा था : "मुझे सभासदन को सरकार का ऐसा भरोसा दिलाना जरूरी नहीं लगा या संभावनाओं के अंतर्गत उसके साथ आगे बढ़ने का और जहाँ तक हमारा संबंध हैं वहाँ तक, हम इस मामले में दूसरा उपयुक्त अवसर नहीं मिलता तब तक इसको स्थगित रखी हुई मानते हैं। मैं उम्मीद रखता हूँ कि ऐसा उपयुक्त मौका मुझे इस संसद में मिलेगा।"

प्रधानमंत्री के बिल रद्द करने की घोषणा करने के बाद ऐसा कहा था। प्रधानमंत्री की इस घोषणा को किसने माना होता ? प्रधानमंत्री की कथनी और करनी के बीच फर्क हो ऐसा हो सकता है। केबिनेट से मेरी विदाई इस देश में किसी के लिए ज्यादा चिंता का विषय नहीं हैं, परंतु मुझे अपने आपके के साथ वफादार रहना चाहिए और यह सिर्फ विदाई द्वारा ही हो सकता है। मैं ऐसा करूँ उससे पहले केबिनेट में मेरे सभ्यपद दौरान मेरे साथियों ने मेरे प्रति जो माया और सौजन्यता दिखाई इसके लिए उनको धन्यवाद कहना चाहता हूँ। मैं संसद के सदस्य पद से इस्तीफा नहीं दे रहा हूँ इसलिए मैं संसद सदस्यों को मेरे प्रति दिखाई गई सहिष्णुता के लिए धन्यवाद कहना चाहता हूँ।"

(हस्ताक्षर)
बी. आर. अंबेडकर
नई दिल्ली,
१० अक्टूबर, १९५१

नागपुर में दीक्षांत समारंभ में मंच पर डॉ. अंबेडकर, डॉ. सविता अंबेडकर और बौद्ध धर्मगुरु

डॉ. अंबेडकर और धर्ममंथन

डॉ. अंबेडकर जन्म से ही हिन्दु समाज के अन्याय और उपेक्षा सहन करते हुए संघर्ष करते हुए समाज, देश और दुनिया में सम्माननीय स्थान प्राप्त करने के बाद, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर तमाम प्रकार की उच्च डिग्रियां प्राप्त करने के बावजूद भी हिन्दु समाज डॉ. अंबेडकर को अस्पृश्य के रूप में ही देखता था। अत: एक प्रकार से शेर की जिगर रखने वाला यह नेता मन में ठान कर बैठा था कि इस परिस्थिति का स्थायी उपचार ढूँढना ही है। ताकि भविष्य में अस्पृश्य बंधुओं को अपमान सहन नहीं करना पड़े।

"दुर्भाग्य से मेरा जन्म हिन्दु जाति में हुआ है, लेकिन वह कोई मेरे हाथ की बात नहीं थी। परंतु मृत्यु के वक्त मैं हिन्दु के रूप में मरुंगा नहीं।"

वास्तव में धर्मांतरण का विचार बीज कई वर्षों से उनके मन में बोया हुआ था। किंतु उन्होंने तुरंत निर्णय लेने के बदले हिन्दु समाज का मानस परिवर्तन हो और समग्र अस्पृश्य वर्ग को हिन्दु समाज स्वरूप समुद्र उनको अपने अंदर समा ले उसका वर्षों तक इंतजार किया। एक तरह से कहे तो बीज को वटवृक्ष बनने में जितनी देर लगी करीबन उतना ही समय उन्होंने धर्म परिवर्तन का निर्णय मूर्तिमंत करने में लिया। २४ मई और २७ जून, १९२४ के ज्ञानप्रकाश के अंक में उन्होंने बार्शी में दिए व्याखान 'देशांतर, नामांतर या धर्मांतर' शीर्षक नाम से प्रकाशित हुआ था। जिसमें इस विचार बीज के दर्शन होते है।

सन १९३३ के आसपास सर्वप्रथम एसी बातें आई कि अंबेडकर धर्म परिवर्तन करने वाले हैं। गवई मंडल द्वारा एसी जानकारी प्रसिद्ध की गई कि अंबेडकर मुस्लिम धर्म स्वीकारने वाले हैं। इस संदर्भ में सूबेदार सवादकर ने अंबेडकर को लंदन पत्र लिख कर बताया कि, "अस्पृश्य जनता के प्रश्नों के समाधान के अलावा दलितों के राजा अंबेडकर ऐसा कोई फैसला जल्दबाजी में लेंगे नहीं। ऐसा दलित जनता को भरोसा है।" उनको पत्र का जवाब देते हुए अंबेडकर ने लिखा था कि,

"धर्मांतरण के प्रश्न के विषय में गवई के साथ मेरी चर्चा हुई थी, यह बात सच है। मैंने गवई को इतना ही कहा था कि, मैं हिन्दु धर्म का त्याग कर अन्य कोई धर्म स्वीकार करने वाला हूँ। अभी मैं बौद्ध धर्म की तरफ झुका हूँ और मुस्लिम धर्म तो कभी भी स्वीकार नहीं करूंगा। इससे अधिक अभी मैं अस्पृश्य वर्ग के भविष्य के काम में इतना व्यस्त हूँ कि, मेरे अपने व्यक्तित्व और व्यक्तिगत स्वातंत्र्य को भी इसलिए त्यागकर बैठा हूँ कि मुझे मेरी अपनी निजी बातों के लिए सोचने के लिए भी फुर्सत नहीं है।

सन १९३५ की अक्टूबर में येवला परिषद् मिलने वाली थी। अंबेडकर के विचारों के अनुसार उसमें अपने धर्म परिवर्तन की घोषणा करने का उनको विचार था। यह बात जाहिर हो गई थी। कई समाजसेवकों और स्पृश्य वर्ग के होने के बावजूद अस्पृश्योद्धार के लिए कार्यरत ऐसे नेताओं ने उनको पत्र लिखा। जिसमें सवर्ण हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन का मौका देने के लिए उनको यह घोषणा रोकने की विनती की गई थी।

पिछले दस वर्ष में अस्पृश्यों के लिए मानवीय अधिकारों को प्राप्त करने के लिए, उनको हिन्दु धर्म में योग्य स्थान मिले इसलिए अंबेडकर को कई लड़ाइयाँ लड़नी पडी थी। जैसे कि सार्वजनिक स्थल से पीने का पानी लेना, अच्छे कपड़े पहनना, धातु के बर्तन इस्तेमाल करना तथा शिक्षा प्राप्त करने के प्रयास भी निष्फल रहे थे।

जिसमें महाड सत्याग्रह के अनुभव ने उनको इस दिशा में सोचने के लिए मजबूर कर दिया और सत्याग्रह के बाद तो जैसे इस विचार ने उनके मन मस्तिष्क पर कब्जा ही कर लिया था।

महाड की अदालत में चवदार तालाब सत्याग्रह के वक्त उनको एक मुकद्दमे के लिए जाना था लेकिन रात हो गई थी। बारिश भी बहुत हो रही थी और पानी भी इतना ज्यादा भर गया था कि आगे भी नहीं जा सकते और पीछे भी नहीं जा सकते। एसी परिस्थिति में किसी परिचित का घर भी आस-पास नहीं था। किंतु किसी ने भी वे अस्पृश्य होने की वजह से घर में भी नहीं बुलाया और ना ही

पानी के लिए पूछा। कब बारिश रुके, पानी उतारे इस इंतजार में इस महापुरुष को बरसती बारिश में भीगते-भीगते ही रात गुजारनी पड़ी थी।

वे एकदम से यह कदम उठाना नहीं चाहते थे। शायद हिन्दु धर्म के धर्माधिकारी उनको अपना समझकर उनका समाविष्ट कर दे ! लेकिन अफसोस यह दिन भविष्य में आएगा एसी कोई संभावना उनको नहीं दिखाई दे रही थी। फिर भी उन्होंने नासिक में मंदिर प्रवेश आंदोलन आरंभ किया। उसी समय पास के एक गाँव में कुछ अस्पृश्यों ने मुस्लिम धर्म स्वीकार करने के विचार किया। उनको भी अंबेडकर ने रोका कि थोड़े समय रुककर हिन्दुओं को एक मौका दीजिए।

येवला परिषद्

१३ अक्टूबर, १९३५ के दिन येवला परिषद् का आयोजन हुआ। जिसमें करीबन १०,००० जितने अस्पृश्यों ने हिस्सा लिया। अंबेडकर ने इस परिषद् में तकरीबन डेढ़ घंटे व्याख्यान दिया। जिसमें अस्पृश्यों के लिए लघुत्तम मानवीय हक के लिए की गई उनकी लड़ाई में उनको हुए अनुभव, कालाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह के दौरान अस्पृश्यों पर हुए अत्याचार इत्यादि बातों का सविस्तार उल्लेख किया कि इन तमाम उद्देश्यों को सिद्ध करने के पीछे कितना समय और व्यर्थ धन खर्च हुआ है। उन्होंने आगे कहा कि हम हिन्दु समाज का एक हिस्सा होने के सबब निर्बलता और अवनीति की परिस्थिति का बोझ हमारे सिर रहने दिया है। अत: जो धर्म हमें समानता का दर्जा दें, समान अधिकार दें, हमारे साथ योग्य व्यवहार करें उसी धर्म का स्वीकार करना चाहिए।

उनका कहना था कि, "आज तक हमें मंदिर के हिन्दु देवी-देवता के दर्शन हुए नहीं हैं तो हम मर तो नहीं गए हैं और इस मंदिर में कुत्ते, बिल्ली, बकरी खुशी से घूमते-फिरते हैं, फिर भी वे जानवर इंसान तो नहीं हुए हैं इसलिए मंदिर प्रवेश के लिए सत्याग्रह बंद करके राजकीय सत्ता प्राप्त करके सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त करेंगे।"

उन्होंने नासिक सत्याग्रह के पीछे समय और धन व्यर्थ खर्च हो जाने की भावना व्यक्त की। उसको बंद करने की सलाह दी। स्पृश्य हिन्दुओं पर उसका

कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अत: अपृश्य समाज को अब हिन्दु समाज के अंदर न रहकर उससे बाहर जाकर अस्पृश्यों के लिए एक स्वतंत्रत नागरिक रूप में योग्य भविष्य बनाना चाहिए और इस तरह रहना चाहिए कि हमारे स्वतंत्रत रहने का खयाल हिन्दुओं को आ जाए।

उनकी यह घोषणा एक तरफ देश में चर्चा का विषय बन गई। तो दूसरी तरफ हिन्दु धर्म को मात देने के लिए उत्सुक मुस्लिम और इसाई धर्मगुरु और नेता उनसे संपर्क कर उनका सत्कार करने के लिए तैयार बैठे थे। इतना ही नहीं मुस्लिम और इसाई धर्म अपनाने के लिए कई लोगों द्वारा उनको लुभावने लालच दिए गए। हैदराबाद के निजाम ने उनको करोड़ों के हीरे-जवाहरात का ऑफर दिया। लेकिन डॉ. अंबेडकर किसी अलग ही मिट्टी के इंसान थे। उन्होंने किसी भी लालच या लोभ में पड़े बिना अपना कार्य जारी रखा। बौद्ध धर्मावलंबियों, सिख धर्मगुरुओं ने तो उनके अनुकूल वातावरण बनाने तक की भी तैयारी बताई थी। तो गाँधीजी, स्वातंत्र्यवीर सावरकर जैसों ने उनको फैसला बदलने की भी विनती की। कांग्रेस प्रमुख बाबू राजेन्द्र प्रसाद, मुंबई के अस्पृश्य नेता बालकृष्ण देवरुखकर इत्यादि लोगों ने इस निर्णय का विरोध किया। घोषणा सुनकर अस्पृश्य समाज से भी अनेक सकारात्मक और नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ आई। जैसे कि चांभर दलित समाज अंबेडकर से दूर हो गया। नारायण काजरोळकर ने कहा, "जिस अंबेडकर ने अस्पृश्यों को उनके अत्यंत निराशा के समय में धीरज दिया था। वे ही अब आत्महत्या करने के लिए कह रहे हैं। धर्म कोई व्यापार की वस्तु नहीं है कि जिसका लेन-देन किया जाए। डॉ. पी. जी. सोलंकी ने धीरज रखने के लिए कहा। उन्होंने कहा कि आने वाली युवा पीढ़ी निश्चित ही प्रगति कर सकेगी। श्री निवासन ने कहा कि धर्मांतरण के सबब अस्पृश्यों की संख्या कम होगी और समाज दुर्बल बनेगा। अंबेडकर को सावरकर ने सलाह दी कि अस्पृश्य समाज इस्लाम या इसाई धर्म स्वीकार करके समानता प्राप्त कर सकेंगे नहीं। इसके स्थान पर सुधारक हिन्दुओं के कंधे से कंधे मिलाकर अस्पृश्यों को अपना उद्धार करना चाहिए।

अंबेडकर ने कहा कि, "मैं धर्मांतरण पाँच वर्ष में करने वाला हूँ। तब तक सोचना

है कि कौन से धर्म स्वीकार करूं, परंतु मैं मेरे समाज को किसी भी शक्तिशाली समाज के साथ जोड़ना चाहता हूँ।"

अंबेडकर धर्मांतरण के बाद की परिस्थिति के लिए भी स्पष्ट और जाग्रत ही थे। वे कहते थे कि, "धर्मांतरण से दलितों की नर्क-यातना मिट जाएगी और समानता का स्वर्गसुख मिलेगा, यह अपेक्षा कुछ ज्यादा ही है। क्योंकि धर्मांतरण करने के बाद भी स्वातंत्र्य और समानता के लिए दलितों को संघर्ष करना ही पड़ेगा। हम कहीं भी जाएं इसाई, इस्लाम या सिख धर्म का स्वीकार करें, तो भी अपने हित के लिए लड़ना पड़ेगा। मुस्लिम बनने से प्रत्येक दलित नवाब नहीं बन जाएगा, इसाई होने से पोप नहीं बन जाएंगे हम कहीं भी जाए हमारे लिएं संघर्ष निश्चित ही है। इस परिस्थिति में भी कितनों को खुशी भी हुई। दलित महार समाज खुश हो गया। अंबेडकर ने स्त्रियों को, देहविक्रेय करने वाली नारी को सन्मार्ग पर चलने के लिए कहा और कई स्त्रियों ने यह व्यवसाय छोड़ दिया था। करीबन पाँच सौ जितने साधु कर्मकांड छोडकर धर्मक्रांति के पथ पर आगे बढ़ें। उन्होंने धर्मांतरण के लिए दलित समाज को तैयार करना शुरू किया। उनको मंदिर दर्शन, व्रत, उपवास, परस्पर की अपवित्रता दूर करना, रोटी-बेटी का व्यवहार आरंभ करना, उपज्ञाति में विभाजित रहने के बदले एक समाज के तौर पर रहना इत्यादि के बारे में जाग्रत किया जा रहा था।

अंबेडकर कहते थे कि, "हम भारत के मूल निवासी हैं। इसलिए एसे धर्म को न अपनाए कि जो हमारे राष्ट्रप्रेम से हमें वंचित करें। हम उस धर्म को स्वीकार नहीं कर सकते जो हमारी वफादारी को विदेश में घसीटकर ले जाए। हम इस्लाम धर्म का स्वीकार करेंगे तो भारत में मुस्लिमों की संख्या बढ़ेगी नतीजन विदेशी सत्ता और हितों का हस्पक्षेप दाखिल होगा। यदि हम इसाई बनेंगे तो ब्रिटिश प्रशंसक भक्तों की भीड़ में बढ़ोत्तरी होगी। परिणाम स्वरूप ब्रिटिश संस्था भारत में मजबूत बनेगी।"

उनका सत्कार सिख धर्मगुरुओं ने भी किया था। कई दलित सिख पंथ की ओर आकर्षित हुए थे। हापुड से १९३६ में पाँच सौ दलितों ने १५ दिसम्बर,

१९३६ के दिन पैदल चलकर दिल्ली गाजियाबाद आकर सिख पंथ को स्वीकार किया था। सिखों द्वारा उनका भव्य स्वागत हुआ था। १६ अप्रेल, १९३७ के दिन अंबेडकर को अमृतसर के गुरुद्वारा में सिख पगड़ी पहनाई गई। अंबेडकर ने अपने पुत्र यशवंतराय और भतीजे मुकुंदराय को सिख पंथ का अभ्यास करने भी भेजा था, लेकिन जिन दलितों ने सिख पंथ का स्वीकार किया था उनको सिख बनने के बाद दलित के रूप में पूना करार से मिले और अन्य अधिकारों को खोना पड़ा। अत: अंबेडकर ने सिख बनने का विचार छोड़ दिया।

बौद्ध धर्म प्रचारकों ने भी अंबेडकर का संपर्क किया। उन्होंने समझाया कि बौद्ध धर्म जातिभेद का विरोधी है। उसमें अपवित्रता को कोई स्थान नहीं है।

कुछ लोगों का मत था कि अंबेडकर खुद ही किसी नए धर्म की स्थापना करे। किंतु अंबेडकर व्यक्ति पूजा में विश्वास नहीं करते थे। उनको यह भी मंजूर नहीं था कि नए धर्म की स्थापना हो और लोग उनको ही देवता बना दें।

सन १९३५ में धर्म परिवर्तन की घोषणा करने के पश्चात् १९५६ में उन्होंने बौद्ध धर्म का स्वीकार किया। इस २१ वर्ष उन्होंने सभी धर्म के विषय में अभ्यास करने में, दूसरे शब्दों में कहे तो हिन्दुओं को उनके पूर्वजों द्वारा की गई गलती का प्रायश्रित करने का मौका दिया था, लेकिन प्रतिसाद न मिलने पर उन्होंने घोषणा की थी कि, "अब मैं धर्म परिवर्तन करूंगा। लेकिन कोई सांसारिक लाभ प्राप्त करने के लिए नहीं अपितु मेरे धर्मांतरण के पीछे आध्यात्मिक भावना के अलावा दूसरा ओर कारण नहीं है।"

वे मानते थे कि, "धर्म परिवर्तन कोई बच्चों का खेल या भोग-विलास की चीज नहीं या फिर अखबारों में निवेदन करने का कोई मसाला नहीं है। मानवजीवन की सफलता का गहन विषय है। जिसके ऊपर उसके अनुसरण करने वाले का भविष्य आधार रहेगा। एक बंदरगाह से दूसरे बंदरगाह जहाज को ले जाने के लिए एक केप्टन को जितनी तैयारी करनी पड़ती उससे भी विशेष तैयारी मुझे करनी है।"

आखिर में उन्होंने धर्म परिवर्तन का अंतिम निर्णय ले लिया। उन्होंने दिन तय

किया, आसो विजया दशमी, १४ अक्टूबर, १९५६। इसके लिए नाग लोगों की प्राचीन पूण्यभूमि और जिस भूमि के साथ उनको लगाव रहा, उनके जीवन में महत्त्व का स्थान रहा, एसे नागपुर को पसंद किया। सबब, उनके जवन के अनेक महत्त्व के कार्यों का आरंभ स्थान नागपुर रहा था। समारंभ की तैयारी और व्यवस्था के लिए उन्होंने भारतीय बौद्धजन समिति की शाखा के मंत्री वामनराव गोडबोले को निमंत्रण देकर विधिवत् व्यवस्था करने के लिए बुलाया था। तो भारतीय बौद्ध भिक्षु संघ के सबसे बड़े वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध साधु और गोरखपुर जिला के कुशीनारा के महास्थवीर चन्द्रमणिजी को विशेष निमंत्रण देकर दीक्षा देने के लिए बुलाया गया था।

नागपुर की श्रद्धानंदपेठ में चोखामेला छात्रावास के पास की चौदह एकड़ जमीन में इस समारंभ के लिए पंडाल बनाया गया। लाखों दलित भाई-बहन श्वेत वस्त्र परिधान करके आए ऐसा आह्वान बाबासाहब ने किया। यह एक एसे नेता का आह्वान था जिसने दलितों के लिए अपना पूरा जीवन खर्च कर दिया था। उनके हक के लिए लड़ने वाले सेनापति का आह्वान था। आह्वान स्वीकार कर जिनके पास श्वेत वस्त्र थे उन्होंने वह परिधान किए। जिनके पास नहीं थे उन्होंने अपना घर-बार बेचकर या कर्ज करके खरीदे। जिसको जो साधन मिला उस साधन के सहारे उन्होंने नागपुर का मार्ग पकड़ा। नागपुर की तरफ जाने वाले तमाम मार्ग 'भगवान बुद्ध की जय', 'बाबा भीमराव की जय' के प्रचंड नारों से गूंजने लगा।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने जिंदगी के ६६वें वर्ष में पुन: नवपल्लवित जीवन जीने के मार्ग की ओर प्रस्थान करने, जीवन की नाव को एक गरजते समंदर में नए किनारे से सफर करने के लिए फिर से आयोजन किया। पत्नी डॉ. सविताजी और निजी मंत्री नानकचंद रतु के साथ ११ अक्टूबर, १९56 के दिन दिल्ली से हवाई मार्ग से प्रस्थान किया। नागपुर में श्यामा होटल में अपना पड़ाव डाला।

उन्होंने कार्यक्रम की पूर्व संध्या को पत्रकारों को संबोधित किया, "बौद्ध धर्म हीनयान और महायान में विभाजित है, परंतु मैं या मेरे अनुगामी उसमें पड़ेंगे नहीं। हम एक नए ही बौद्ध धर्म का अनुसरण करेंगे। जिसको नवायान के रूप में पहचानेंगे।" पत्रकारों के हिन्दु धर्म त्यागकर बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बारे में प्रश्न पूछते ही

डॉ. अंबेडकर ने गुस्सा होकर जवाब देते हुए कहा कि, "मैं हिन्दु धर्म त्यागकर बौद्ध धर्म क्यों स्वीकार कर रहा हूँ वह आप अपने पूर्वजों को क्यों नहीं पूछते ? आरक्षण का लाभ लेने के लिए मेरे लोगों को दलित ही रहना चाहिए, ऐसा आपको क्यों लगता है ? क्या इन सुविधाओं का लाभ लेने के लिए ब्राह्मण अस्पृश्य होंगे ? हम इंसानियत प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। मैंने एक बार अस्पृश्यता के विषय में गाँधीजी के साथ चर्चा की थी, तब मैंने उनको कहा था कि, "इस प्रश्न को लेकर आपके और मेरे बीच मतभेद होने के बावजूद उचित समय आने पर मैं इस देश के लिए कम से कम खतरा हो ऐसा मार्ग स्वीकार करूँगा और इसलिए मैंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर इस देश का ज्यादातर हित देखा है। क्योंकि बौद्ध धर्म भारतीय संस्कृति का ही हिस्सा है। इस देश की संस्कृति, इतिहास और परंपरा को नुकसान ना पहुँचे इस बात का मैंने बहुत ध्यान रखा है।"

१४ अक्टूबर, १९५६ का सूरज नई आशा और किरण की थाली भरकर पूर्व दिशा से आरंभ होने की तैयारी में था तब नागपुर की धरती जैसे एक नए इतिहास की गवाह बनने जा रही थी। सुबह सवेरे बाबासाहब स्नान करके, श्वेत वस्त्रों को धारण करके, रेशमी धोती परिधान करके, बिलकुल नया सफेद कोट पहनकर नए प्रस्थान के लिए नए उत्साह और आनंद के साथ तैयार हुए थे। कई दलित कार्यकर्ता और नेता उनको लेने के लिए आए थे। दीक्षांत समारंभ स्थल पर चौदह एकड़ के विशाल मैदान के बीच-बीच में साँची के स्तूप जैसे आकारधारी भव्य मंच बाँधे गए थे। मंच इस प्रकार ऊँचा बनाया गया था कि बैठे हुए सभी घटना के साक्षी बन सके। बहनों तथा भाइयों के बैठेने के लिए पंडाल को दो विभागों में विभाजित किया गया था। पंडाल को झंडे-पताका से सुशोभित किया गया था। बौद्ध धर्म की आसमानी, हरी पट्टे वाली पताकाओं से पंडाल एक नया ही उत्साह लोगों में संचारित कर रहा था और उसी समय दलितों के मसीहा डॉ. बाबासाहब भीमराव अंबेडकर ने धीरे लेकिन स्वस्थ कदमों के आहत के साथ निजी मंत्री नानकचंद के कंधे पर हाथ देकर दृढ़ कदम के साथ एक नया इतिहास बनाने के लिए पंडाल में प्रवेश किया। दूसरे हाथ में दंड शोभा दे रहा था।

लोगों की नजर पड़ते ही जैसे सभी के बदन से बिजली दौड़ गई हो वैसे एक आवाज में एक ही साँस में पंडाल गूंज उठा : भगवान बुद्ध की जय, डॉ. बाबासाहब की जय। जैसे बाबासाहब में लोग भगवान तथागत की मूर्ति देख रहे हो। डॉ. बाबासाहब के मुख पर जैसे सदियों के काले-काले बादलों में से एक नए सूरज के उदय होने के साथ एक नया प्रकाश किरण अँधेरे को चिर रहा हो और कुदरत जैसे सूरज प्रकाश को सत्कारने के लिए तैयार बैठी हो, मुस्कुराती हो एसे कुछ भाव दृश्यमान हो रहे थे।

मंच पर भगवान तथागत की मूर्ति दोनों तरफ रखे बाध के शिल्प के साथ जैसे आशीर्वाद बरसा रही थी। धूप समग्र वातावरण को दिव्य सुगंधमय बना रहा था। मंच पर उस समय के भारत के श्रेष्ठ बौद्ध साधुओं ने अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लिया था। दीक्षांत समारंभ की शुरुआत होने जा रही थी। सर्वप्रथम भगवान तथागत समक्ष दीप प्रागट्य हुआ। पुष्प अर्पण-धूपसली प्रज्वलित की गई थी। दीक्षांत समारंभ के आयोजक बळवंत वहोले की सुपुत्री ने बाबासाहब का प्रशस्ति गीत गाया। सबने तालियों के गड़गड़ाहट से उसका सम्मान किया। संजोगानुसार १४ अक्टूबर बाबासाहब के पिता रामजी सूबेदार की पुण्यतिथि का दिन था। उनके सम्मान में एक मिनिट का मौन रखा गया। तत्पश्चात् अध्यक्ष साधु महास्थवीर चंद्रमणि ने दीक्षांत समारंभ का आरंभ करवाया।

सम्यक सम्बुद्ध का स्मरण दो हाथ जोड़कर त्रिशरम, पंचशील की धम्मपूजा की गई। आखिर में सभी प्रतिज्ञा लेने के बाद तमाम प्रकार की प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात् बौद्ध भिक्षु ने कहा, मैंने यह आपको दीक्षा दी हैं। उसके जवाब में दिक्षार्थी ने कहा साधु ... साधु ... साधु और बाबासाहब ने दोनों हाथ जोड़कर भक्तिभाव से भगवान बुद्ध की प्रतिमा को तीन बार नमस्कार कर पुष्पमाला अर्पण की। उपस्थित भिक्षुसंघ द्वारा पालीगाथाओं का गान हुआ और अध्यक्ष साधु महास्थवीर चंद्रमणि ने डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया, इस बात की घोषणा की। कार्यकर्ताओं, मित्रों, नेताओं ने बाबासाहब को फूलहार पहेनाकर शुभकामनाएँ दी। बाबासाहब ने घोषणा कि, "मैं आज से मेरे पुराने धर्म का त्याग कर पुनर्जन्म

ले रहा हूँ। मैं हिन्दु देवी-देवताओं की पूजा करूँगा नहीं। मैं श्राद्ध करूंगा नहीं। मैं आज से हिन्दू धर्म का त्याग कर रहा हूँ।" इतना बोलते-बोलते उनका गला रुँआसा हो गया। स्थिर होकर उन्होंने २२ प्रतिज्ञाओं का पठन किया। तत्पश्चात् उन्होंने मंच से घोषणा कि, यदि नीचे बैठे हुए में से किसी को बौद्ध धर्म की दीक्षा लेनी है तो वे खड़े हो जाएं और एक साथ सभामंडप में तीन लाख हिन्दु बौद्ध धर्म स्वीकार करने के लिए तैयार हो गए थे।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के धर्ममंथन के विषय में विचार करते हुए हमारे ध्यान में आता है कि उन्होंने अनेक धर्म का अध्ययन किया। तकरीबन २१ वर्ष अनेक धर्मग्रंथों के अध्ययन के पश्चात्, जब धर्म परिवर्तन के लिए अनेक अलग-अलग धर्म के लोगों ने उनको अपने धर्म में समाविष्ट करने के लिए अनेकों प्रकार की सुविधाएँ और अनेकों प्रकार के प्रलोभनों, धर्म के अंदर अनेक प्रकार की छूटछाट देने की तैयारी दर्शाई। जिसमें इसाई-मुस्लिम-सिख प्रमुख थे। जिस समय द्रव का महत्त्व अधिक था, तब हैदराबाद के निजाम ने उनको स्वर्णमुहरें देने की तैयारी दिखाई। लेकिन डॉ. अंबेडकर किसी अलग ही मिट्टी के इंसान थे। उन्होंने तमाम प्रकार के आर्थिक प्रलोभनों को ठुकराकर, इस देश की मिट्टी से बने धर्म का पूरा अध्ययन किया और उसमें किसी भी स्थान पर छुआछूत नहीं है, कोई ऊँच-नीच नहीं है।

इन सभी बातों को परखकर, बौद्ध धर्म स्वीकार करते वक्त वे अपने आपको हिन्दु धर्म से अलग करते हुए वेदना-पीड़ा का अनुभव करते हैं। वे कहते हैं कि, "मैंने २१ वर्षों तक हिन्दु धर्म के वाहकों को सोचने का समय दिया, किंतु उसमें जिस प्रकार से अस्पृश्य समाज को हिन्दुओं द्वारा जो सहयोग मिलना चाहिए था उस कदम को भी उठाने की हिन्दुओं ने कोशिश नहीं की है। अत: पीड़ा एवं वेदना के साथ मुझे हिन्दु धर्म से दूर जाना पड़ा है। यद्यपि मैं मेरे देशवासियों को भरोसा दिलाता हूँ कि सवर्ण हिन्दुओं के विरुद्ध मेरा कुछ मुद्दों पर विवाद है, उसका मैं स्वीकार करता हूँ। लेकिन मैं प्रतिज्ञा लेता हूँ कि हमारी इस भूमि की रक्षा के लिए मेरा जीवन न्यौछावर करूंगा। इस देश की मिट्टी से उद्भवित धर्म ही मैं स्वीकार कर रहा हूँ। जिससे इस देश को कोई नुकसान नहीं हो उसका ध्यान रख रहा हूँ।

मैं आज भारतीय भूमि के राष्ट्रीय प्रवाह का बौद्ध धर्म स्वीकार कर रहा हूँ। यदि मैं अन्य धर्म जैसे इसाई धर्म का स्वीकार करता हूँ तो अंग्रेज इस देश में मजबूत होंगे। अत: उस धर्म के लिए सोचना मेरे लिए असंभव है।"

यदि मैं मुस्लिम धर्म स्वीकार करता हूँ तो विधर्मी इस देश में मजबूत होंगे। मुस्लिम धर्म देश के बाहर का धर्म है। इसलिए वह धर्म मुझे और मेरे समाज को, विदेशी ताकत मजबूत बने इस सोच से भी व्यथित करता है। अत: उस धर्म का स्वीकार करूँगा नहीं यदि हम सिख धर्म की बात करें तो उसमें भी ऊँच-नीच की पतली-सी भेदरेखा हैं। इस तरह डॉ. बाबासाहब ने सभी धर्म के बाद बौद्ध धर्म में अपनी आस्था रखी ! यह धर्म हमारे अंदर हमारी संस्कृति-राष्ट्रीयता हमेशा प्रज्वलित रखेगी। १४ अक्टूबर, १९५६ के दिन डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने हजारों अस्पृश्यों को साथ रखकर नागपुर में बौद्ध धर्म स्वीकार किया और साथ ही कहा कि, "बुद्धम् शरणम् गच्छामि"। धर्म के विषय में उनके विचार कभी भी राष्ट्र से अलग नहीं रहे हैं। डॉ. अंबेडकर के जीवन का अध्ययन करते हैं तो हमें बहुत से पहलुओं के बारे में जानकारी मिलती हैं। वे हिन्दु धर्म और उसकी कमजोर कड़ी के बारे भी स्पष्ट मंतव्य रखते थे।

सांस्कृतिक एकता के प्रचारक

डॉ. बाबासाहब को सच्चा धर्म चाहिए था। बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेने के पश्चात् भी इस धर्म में महायान और हीनयान एसे पंथों से अलग प्रकार की रचना उनको अभिप्रेत करती थी। इसलिए उनके मत को कईयों ने 'भीमयान' अथवा 'नवायान' के नाम से पहचाना हो ऐसा लगता है। स्वतंत्रता, समता, बंधुत्व इन तीन सूत्री मंत्र के बारे में बोलते हुए उन्होंने स्पष्ट किया हैं कि, "मैंने यह मंत्र फ्रांस की राज्य क्रांति से नहीं लिया है, किंतु मेरे धर्म गुरु भगवान बुद्ध के उपदेश से ग्रहण किया है। मेरे इस तत्व का आधार राज्यशास्त्र नहीं अपितु धर्मशास्त्र है। इस तरह डॉ. बाबासाहब की विचारधारा इस मिट्टी के साथ जुड़ी है ऐसा स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। बौद्ध धर्म भारतीय संस्कृति का अंश नहीं अपितु भारतीय

संस्कृति है, इस विषय को लेकर डॉ. बाबासाहब के मन में कभी शंका न थी। अत: उन्होंने जब मुसलमान और इसाई धर्म का विचार किया तब गाड़गे महाराज के साथ चर्चा करके ही बौद्ध धर्म का स्वीकार किया था। इस राष्ट्र की सांस्कृतिक धारा को उन्होंने सातत्य से पकड़ कर रखा है। 'डॉ. बाबासाहब के आंदोलन के बाद की पार्श्वभूमिका' इस नाम के पुस्तक में लेखक चांगदेव खैरमोडे लिखते हैं कि, "जैन और बौद्ध पंथ उनके अंदर रहे हिंदुत्व को संपूर्णतया नष्ट नहीं कर सके हैं। इसका कारण यह है कि इन दोनों पंथों ने वेदों और ब्राह्मण को फेंक देने के बाद भी वे हिन्दु धर्म से बिलकुल अलग अपनी पहचान प्रस्थापित कर नहीं सके हैं। ये दोनों वास्तव में हिन्दु धर्म के ही अंश हैं। हिन्दु धर्म का जिस सोच की नींव पर विकास हुआ है उसी नींव पर जैन और बौद्ध पंथ का विकास हुआ था।"

अस्पृश्यता हिन्दु धर्म का कलंक

सन १९३५ में डॉ. बाबासाहब ने येवला में धर्मांतरण की घोषणा की तब तक उन्होंने एकात्म हिन्दु समाज के लिए समग्र प्रकार के प्रयास करके देखें। १९२७ में महाड का चवदार तालाब सत्याग्रह, १९३० से १९३५ तक नासिक में चले कालाराम मंदिर प्रवेश के संघर्ष इत्यादि एक भी संघर्ष में हिन्दु समाज ने उनको सहयोग नहीं दिया। उलटा उनका उपहास किया गया। परिणाम स्वरूप उन्होंने अत्याधिक क्रोध में धर्मांतरण की घोषणा कर दी। उसके बाद के समय काल में उन्होंने दलित बंधुओं को एक अलग रास्ते ले जाने का प्रयत्न किया। उनकी मानसिकता बनाने के लिए डॉ. बाबासाहब ने सातत्यपूर्वक लिखा और व्याख्यान दिए, "अस्पृश्यता हिन्दु धर्म का कंलक है ऐसा जहाँ तक मैं मानता रहा, वहाँ तक उसे दूर करने के लिए सभी का कोशिश करना आवश्यक है ऐसा मानता रहा था। परंतु अस्पृश्यता हिन्दु धर्म का कलंक है साथ में वह मेरे बदन का भी कलंक है। ऐसा अब मैं मानता हूँ इसलिए इस कलंक दूर करने के लिए मुझे ही प्रयास करना चाहिए ऐसा मैंने तय किया है।" यह बात उन्होंने लोगों के गले उतारी। इस संबंध में उन्होंने जो-जो सुझाव दिए वह थोड़े कड़क भाषा में देने के बावजूद वे संपूर्ण राष्ट्र हित में थे ऐसा आज सभी को लग रहा हैं। आचार्य अत्रे ने 'दलितों

के बाबा' इस विषय को लेकर लेख लिखे थे। इन लेखों का संकलन १९६० के मध्य में भाऊसाहब अडसूले ने किया था।

इस पुस्तक में बाबासाहब का एक विचार किया गया है। उसमें बताया गया है कि, "गोलमेजी परिषद् से वापस आने के बाद एक सार्वजनिक सभा में डॉ. अंबेडकर बोले थे कि, "मैं हिन्दु धर्म का शत्रु हूँ, विनाशक हूँ ऐसी मेरी समालोचना की जाती है, किंतु एक दिन ऐसा जरूर आएगा कि मेरे हिन्दु समाज पर उपकार किए जाने के लिए हिन्दु मुझ पर धन्यवाद की बारिश करेंगे।" डॉ. बाबासाहब की बात आज हकीकत बन रही है। आज हिन्दु समाज को संगठित करने वाली राष्ट्र की प्रमुख संस्थाओं और संगठनों ने डॉ. बाबासाहब के विचारों का स्वीकार किया हैं ऐसा स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है।

सन १९३६ में लाहोर में 'जात-पात तोडक मंडल' समक्ष उनको व्याख्यान देना था लेकिन किसी कारणवश डॉ. बाबासाहब रूबरू नहीं जा सके थे। यह व्याख्यान 'एनिहिलशन ऑफ कास्ट' नामक पुस्तक के रूप में प्रकट हुआ है। उसके अंदर महात्मा गाँधी ने 'हरिजन' ११ जुलाई, १९३६ के अंक में कुछ प्रश्न किए थे उसके उत्तर डॉ. बाबासाहब ने दिए थे। खुद के द्वारा किए गए प्रश्नों को महात्मा गाँधीजी ने स्पर्श भी नहीं किया था, ऐसा बताकर बाबासाहब लिखते हैं कि, "मैंने अपने व्याख्यान में जो प्रमुख बात थी उनको सिद्ध करने का प्रयास किया है।"

डॉ. बाबासाहब की बातों और व्यवहार में राष्ट्रवाद की परछाई हैं, ऐसा हमें ध्यान में आया हैं। बाबासाहब ने संघर्ष करते वक्त एकात्म का सूत्र कभी नहीं छोड़ा था। १९२७ के महाड में चवदार तालाब के सत्याग्रह प्रसंग के समय जवळकर और जेधे नामके दो गैरब्राह्मण पुजारियों को उन्होंने लिखे पत्र में जो प्रतिक्रया व्यक्त की वह हमें अंतर्मुख करने वाली है। बाबासाहब लिखते हैं कि महाड में क्रांति सत्याग्रह किस तरह करना चाहिए इस विषय जवळकर और जेधे ने जो मत दर्शाए हैं वे मत मुझे मंजूर हैं, फिर भी एक महत्त्व की बात पर उनका और मेरा मतभेद हैं। जेधे और जवळकर ने ऐसी शर्त रखी हैं कि इस सत्याग्रह में "किसी भी ब्राह्मण जाति के गृहस्थ को शामिल नहीं किया जाए ! ऐसी शर्त मुझे

कभी भी मान्य नहीं होगी। मैं ब्राह्मण का विरोधी नहीं हूँ। वे लोग हमारे दुश्मन नहीं हैं, किंतु ब्राह्मणत्व से जकड़े हुए लोग हमारे दुश्मन हैं ऐसा मैं मानता हूँ। मेरे द्वारा आयोजित सत्याग्रह में प्रत्येक व्यक्ति का स्वागत है। भले ही वह व्यक्ति किसी भी जाति का क्यों न हो। (बाबासाहब अंबेडकर का प्रसिद्ध व्याख्यान का अग्रलेख – पृष्ठ – २४)

बाबासाहब के उपरोक्त विचार पर किसी भी प्रकार की विशेष स्पष्टीकरण की कोई आवश्यकता नहीं है।

हिन्दु धर्म के कट्टर समालोचक के रूप में मेरा उपयोग हिन्दु के स्वातंत्र्य विरुद्ध करने के लिए ही शायद ब्रिटिश शासन ने मेरी नियुक्ति की होगी तो भी मैं, हिन्दु समाज एवं उसके असंख्य सामाजिक दूषणों विरुद्ध जो कटु आलोचना करता था। उससे भी अनगिनत उग्र समालोचनाओं मैं जहाँ आवश्यक होगी वहाँ ब्रिटिश सरकार की अचूक करूँगा। तदुपरांत ब्रिटिश शासनकर्ताओं का उपयोग उनके साम्राज्य को स्थिर करने के लिए करना होगा तो, मैं वह होने नहीं दूँगा। दलितों को मैं ब्रिटिशरों के पाशविक पंजे से मुक्त कराकर बाहर निकालूँगा, उसका आश्वासन देता हूँ।

मेरा समग्र जीवन आपकी समक्ष खुला हैं। अपनी समग्र जीवन-किताब को सबके लिए दूसरे किसी नेता ने इतनी हद तक खुली रखी हो इस बात की मुझे जानकारी नहीं हैं।

- डॉ. भीमराव अंबेडकर

भारत के संविधान की रचना के लिए डॉ. भीमराव अंबेडकर को न्युयार्क कोलंबिया युनिवर्सिटी द्वारा सम्मान और एल.एल.डी. की उपाधि एनायत की गई, उस वक्त की लाक्षणिक मुद्रा की तस्वीर

डॉ. अंबेडकर की उपलब्धियां

महाड सत्याग्रह पूर्ण हुआ। एक तरह से देंखें तो वह एक धर्मसंग्राम था। पुराने युग का अंत और नए युग का आरंभ था। कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में संपूर्ण स्वातंत्र्यता की घोषणा हुई। जहाँ अंबेडकर के महाड सत्याग्रह की घोषणा सामाजिक स्वातंत्र्यता थी वहीं कांग्रेस की घोषणा राजकीय स्वातंत्र्य की थी। महाड के सत्याग्रह का अस्पृश्यों के जीवन पर गहरा असर हुआ। अस्पृश्य वर्ग कमजोर नहीं, उसकी अब उपेक्षा की जा सके ऐसा नहीं हैं। ऐसा संदेश अंग्रेज सल्तनत और सनातनी हिन्दु दोनों के पास गया। अब अस्पृश्यों में आई जागृति और स्वावलंबन को दबाया नहीं जा सकता है। अस्पृश्यों में अन्याय विरुद्ध संगठन खड़ा किया जा सकता हैं तथा आवाज उठाई जा सकती हैं। हम अपनी शिकायतें पेश कर सकते है। अब हम अकेले नहीं हैं एवं अन्य जिलों से अस्पृश्य बंधु हमारी सहायता करने मुसीबत के समय दौड़कर आएंगे ऐसा विश्वास अस्पृश्यों में फैल गया।

सन १९२८ के आरंभ में मुंबई प्रांत के जिलाधिकारी श्री मा. का. जाधव की नियुक्ति अंग्रेज सरकार ने की। अस्पृश्य समाज का यह पहला व्यक्ति था, जिसकी ऐसे उच्च पद पर नियुक्ति हुई। जो अंबेडकर द्वारा सरकार समक्ष, सरकारी कचहरियों में उच्च स्थान पर योग्यता धारण करने वाले अस्पृश्यों की नियुक्ति होनी चाहिए ऐसी लगातार माँग का परिणाम था।

अस्पृश्य समाज को नागरिक अधिकार प्राप्त हो, उसके लिए पेशी का एक भी मौका वह जाने नहीं देते थे। १९२८ में मुंबई में सितम्बर महीने में आयोजित होने वाले गणेशोत्सव में गणपति की पूजा अखिल हिन्दु समाज कर सकेगा कि नहीं ? इस विषय को लेकर विवाद हुआ। सनातनी और सुधारावादियों में इस बात को लेकर उग्र संघर्ष होता। आखिर में अंबेडकर द्वारा हुए प्रयास, दी गई धमकियों एवं सी. के. बोले, प्रबोधनकार ठाकरे (बाल ठाकरे के पिता) इत्यादि द्वारा अंबेडकर को दिए गए साथ और साझेदारी के संघर्ष के अंत में सनातनियों ने अपनी जिद

के हथियार नीचे रख दिए और कथित अस्पृश्य हिन्दु समाज के बहिष्कृत लोगों को गणपति पूजा का अधिकार मिला।

सन १९३० में अंबेडकर के गोलमेजी परिषद् में जाने से पूर्व मुंबई सरकार ने अस्पृश्यों को पुलिस विभाग में प्रवेश देने की घोषणा की। सन १९३० में ही पहली बार गोलमेजी परिषद् के वक्त अस्पृश्यों के मुलभूत अधिकारों का घोषणापत्र घोषित हुआ और बहुत ही होशियारी से अल्पसंख्यक समिति को राज्य संविधान में समाविष्ट किया गया। इस घोषणापत्र को 'हिन्दुस्तान का भावी राज्य संविधान और अस्पृश्यता निवारण की योजना" नाम दिया गया। इस घोषणापत्र में उनके द्वारा की गई कई माँगों में से एक थी हिन्दुस्तान के सभी नागरिक कानून की दृष्टि से समान हो उन सर्व के नागरिक अधिकार समान हैं। उन्होंने प्रत्येक राज्य में नौकरी में किसी को अन्याय न हो इसके लिए लोग "सेवा आयोग (पब्लिक सर्विस कमिशन)" का आरंभ कराया, यह व्यवस्था आजादी के बाद भी विद्यमान है।

अंबेडकर जब विदेश में थे तब मुंबई सरकार ने उनकी नियुक्ति जस्टिस ऑफ पीस में (जे. पी.) की थी।

मताधिकार विचार समिति की दिल्ली में आयोजित बैठक में अस्पृश्य वर्ग का किसी भी प्रकार का सामाजिक बहिष्कार करना यह गुनाह है। ऐसी धारा का अपराध संहिता में समाविष्ट करना अथवा राज्य संविधान में उसका समाविष्ट करना और मुलभूत नागरिक अधिकारों को भुगतने के लिए उनको स्वतंत्रता देना, यह माँग अंबेडकर ने पेश की जो समिति ने मंजूर की थी।

लोथियान समिति समक्ष अंबेडकर तरफी विचारधारा रखने वाले नेताओं ने संयुक्त मतदाता संघ का विरोध किया और स्वतंत्र मतदाता संघ की माँग की। लोथियान समिति का कार्य १ मई, १९३२ के दिन पूर्ण हुआ। लोथियान अंबेडकर के साथ कुछ बात करना चाहते थे इसलिए वे शिमला में दो दिन ज्यादा रुके। अंबेडकर ने एक स्वतंत्र निवेदन लोथियान समिति को दिया। आखिर लोथियान समिति की रिपोर्ट घोषित हुई। जिसमें उन्होंने १९१६ में नियुक्त सर हैनरी सार्प (जो तब भारत

के शिक्षा निदेशक थे) की कमिटी द्वारा लिए गए निर्णय जो आज पर्यंत लागू था, उसके अनुसार साउथ बरो मताधिकार विचार समिति इत्यादि ने अस्पृश्यों को गुनहगार जाति, वन्य जाति और आदिवासी जाति में समाविष्ट किया था। लेकिन लोथियान समिति ने अस्पृश्य समाज की जातियों का 'डिप्रेस्ड क्लास' अर्थात् 'अस्पृश्य वर्ग' ऐसा अर्थगठन किया। यह अंबेडकर की जीत थी।

दिनांक २५ सितम्बर, १९३२ के दिन गाँधीजी और अंबेडकर के बीच हुए पूना करार के आधार पर अस्पृश्यता का वातावरण दूर करने में बहुत बड़ी सफलता मिली। पूना करार के आधार पर अस्पृश्यों को लोकतंत्र के हक तो मिले ही, अपितु मंदिरप्रवेश, रास्ते, कुएं, तालाब, स्कूल इत्यादि सार्वजानिक स्थलों के उपयोग की मंजूरी भी मिली। जो शायद अंबेडकर के जीवन की भारतीय इतिहास में एकता, अखंडता और सामाजिक समरसता के सिद्धांत को चरितार्थ करने वाली सबसे महत्त्व की उपलब्धि कही जा सकती है। इस करार के अमल से अस्पृश्यों को एक तरह से इंसानियत का दर्जा मिला था।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के विषय में एक घटना याद आती है। एक बार डॉ. अंबेडकर ने अपने पी. ए. नानकचंद रतु को घर जाने के लिए कहा और फिर काम करने लगे। काम में इतने लीन हो गए थे कि उन्होंने पुन: जब ऊपर नजर की तो नानकचंद रतु वहीं हाजिर थे। बाबासाहब ने पूछा कि, "रतु तू अभी तक घर नहीं गया ?" तब रतु ने जवाब दिया कि, "साहब मैं तो घर गया, सोकर सुबह घर से वापस आया हूँ।" काम-काम में ही पूरी रात गुजर गई थी। उसका खयाल डॉ. बाबासाहब को नहीं रहा। इस प्रकार की एकाग्रता की, तपश्चर्या की पराकाष्ठा से वे काम करते थे। ऐसी जिसमें एकाग्रता होती है, वहीं व्यक्ति महापुरुष बन सकता है। और ऐसे महापुरुष समाज एवं राष्ट्र को दिशा दे सकते हैं। ऐसे महापुरुष महात्मा के महात्मा होते हैं। अनेक प्रकार की उच्च और अंतरराष्ट्रीय कक्षा की डिग्री, उपाधियाँ प्राप्त करने बाद भी अनेक कही अनकही मुसीबतों को जीवनभर सहन करते रहे। अपने आपको उष्ण गर्मी की भट्ठी में जलाकर, स्वर्ण अणु समान अपना जीवन बनाते गए थे।

शायद उनकी सबसे बड़ी सिद्धि यह थी कि, जो लोग उनका विरोध करते गए उनको वे अपनी विद्वत्ता और महानता से झुकाते गए। जिस हिन्दु समाज ने उनको जीवनभर अपमान, अत्याचार तथा डुत्कारा उसी हिन्दु समाज और विशेषकर हिन्दु बहनों के वैवाहिक जीवन की तथा जीवन की सुरक्षा के लिए हिन्दु कोड बिल का मसौदा संसद में रखा था, लेकिन तत्कालीन पंडित जवाहरलाल नहेरु के बड़प्पन की कांग्रेस सरकार द्वारा हिन्दु कोड बिल संसद में पास न कारने के कारण हिन्दु कोड बिल के मामले में ही उन्होंने इस्तीफा दिया था। उन्होंने संविधान की रचना में छोटी-छोटी बातों का खयाल रखकर भविष्य में देश में संवैधानिक आपातकालीन स्थिति खड़ी न हो जाए इसलिए दुनिया का सर्वश्रेष्ठ संविधान दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र को दिया। दुनिया के लोकतंत्र के इतिहास की जब चर्चा होगी, तब इसका उल्लेख करना पड़ेगा, ऐसी अद्वितीय उनकी सिद्धि हैं। सबसे महत्त्व की सिद्धि तो लोकतंत्र का संविधान बाबासाहब डॉ. भीमराव अंबेडकर ने भारत को दिया वह है।

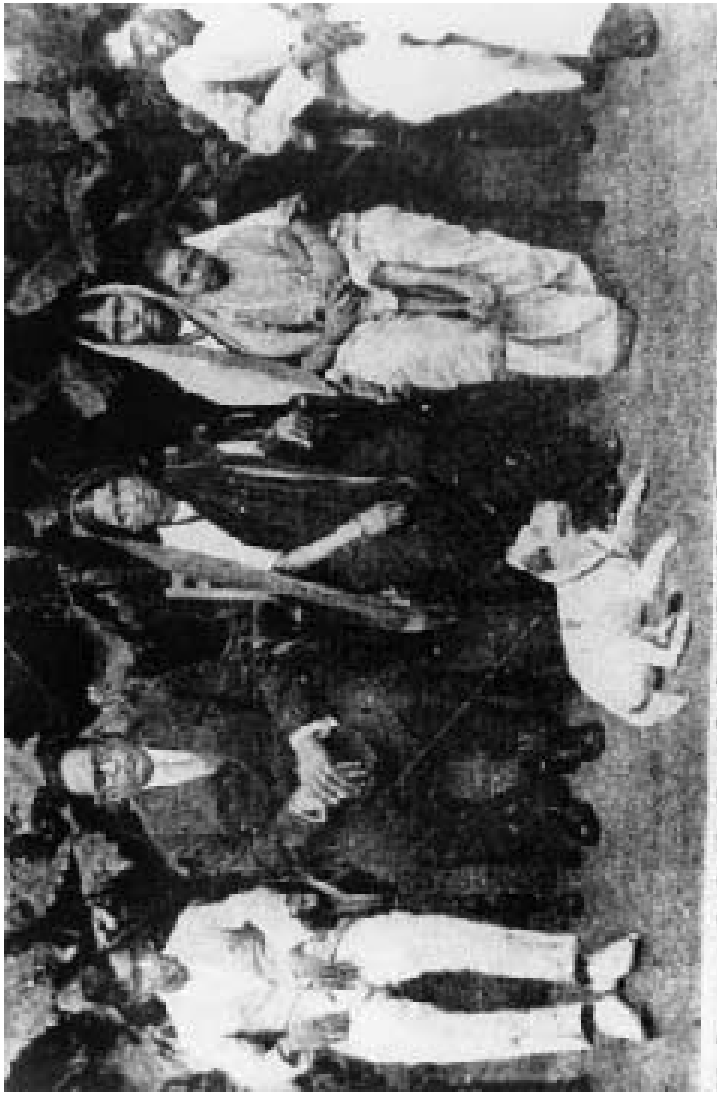

पुत्र यशवंत अंबेडकर, डॉ. अंबेडकर, पत्नी रमाबाई और भतीजे

भीम विचारकर्णिका

- यदि आज राष्ट्र को किसी चीज की आवश्यकता होगी तो वह जनता के मन में राष्ट्रीयता की भावना निर्माण करने की है। हम प्रथम भारतीय हैं तत्पश्चात् हिन्दु, मुसलमान, सिंधी अथवा तो कन्नड़। ऐसी भावना निर्माण करने से अच्छा है कि हम प्रथम भारतीय हैं और उसके बाद भी भारतीय ही हैं।"
- राष्ट्रनिर्माण के काम में समान तक के सूत्र का स्वीकार महत्त्वपूर्ण है।
- गौतम बुद्ध, संत कबीर और महात्मा फुले इन तीनों विभूतियों को अंबेडकर अपना गुरु मानते थे।
- एक अकेला इंसान सभी काम 'मैं हकीकत में अकेले हाथों करूँगा।' ऐसा कहता है लेकिन वैसा करना वास्तव में उसके लिए असंभव ही है। मैं राजनीति, समाजकार्य में लगा हुआ हूँ फिर भी मैं आजन्म विद्यार्थी ही हूँ।
- विद्या की उपासना ही मेरा बहुत ही गहरा व्यसन बन गई है।
- जब हम सोने के मूल्य जितना काम करेंगे तब जाकर अन्य समाज के लोग उस कार्य को जस्ता (एक तुच्छ धातु) के जितना मूल्यवान मानेंगे, यदि वे जस्ता के मूल्य जितना कार्य करेंगे तो भी उसको सोने जितना मूल्यवान मानेंगे।
- सन १९३२ में अंग्रेजों द्वारा कम्युनल अवॉर्ड दिया गया, जिसके माध्यम से दलितों को अपना अलग मत देकर अपना दलित प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिला।
- आत्मविश्वास जैसी दूसरी कोई दवा नहीं है।
- व्यक्तिगत स्वार्थ से ज्यादा समाज के लाभ के लिए अधिक ध्यान देना चाहिए।
- खुद में संगठन, शील और अनुशासन को बढ़ाइए। हमें उसके माध्यम से ही समाज की उन्नति करनी पड़ेगी।

- हमारा कार्य जितना स्वहित का है उतना ही राष्ट्रहित का है। अपने स्वत्व और जन्मसिद्ध अधिकारों के लिए आप लड़ाई लड़ने के लिए तैयार हैं, यह देखकर मुझे बहुत आनंद हुआ है।
- सुख हमेशा दुःख के आखिर में प्राप्त होता है।
- अपना मार्ग न्याय का है। यदि ऐसा लगता है और यदि यातनाएँ सहन करने के लिए तैयार हैं तो सत्याग्रह के लिए सहमति दीजिए।
- जो समाज समर्पण के लिए तैयार होता है उसकी प्रगति हुए बिना नहीं रहती है ।
- सनातनी हिन्दुओं का हृदय परिवर्तन करने के लिए उनको मौका दीजिए।
- जिन लोगों की परिस्थिति गुलामों से भी बदतर है और जिनकी जनसंख्या फ्रांस देश की जनसंख्या जितनी है। मैं ऐसे भारत के एक पंचमांश लोगों की शिकायत गोलमेजी परिषद् में पेश करता हूँ। दलितों की माँग है कि भारत सरकार लोगों ने, लोगों द्वारा और लोगों की सरकार होनी चाहिए।
- हम पर लगा अस्पृश्यता का कलंक हम ही हमारे शूरवीर पुण्य से धो डालेंगे।
- साम्यवादियों के साथ जुड़ना मरे लिए संभव नहीं है। अपने राजकीय उद्देश्य की खातिर मजदूरों का उपयोग करना चाहते साम्यवादियों का मैं कट्टर शत्रु हूँ।
- अंबेडकर ने भारत में रहने वाले तमाम नागरिकों के लिए एकसमान कानून "समान नागरिक संहिता" का प्रस्ताव रखा था।
- लोकतंत्र के लिए सद्विवेक बुद्धि की भी आवश्यकता है।
- शिक्षा के विषय में अपने पिता के एक मित्र के यहाँ न्यूयार्क अभ्यास के लिए गए थे वहाँ से लिखे पत्र में वे लिखते हैं। – "अस्पृश्य समाज से आने वाले हमारे प्रत्येक कार्यकर्ता को शिक्षा प्रसार के लिए संघर्ष के लिए तैयार रहना चाहिए। शेक्सपियर के एक नाटक में आता है, "प्रत्येक इंसान के जीवन में जब उपयुक्त मौके की लहर फैलती है, तब जो उस मौके का यथायोग्य

उपयोग करता है उसी इंसान को वैभव प्राप्त होता है।"

- सन १९२७ की २१ अगस्त को भारत आगमन, उस समय के क्षेत्र शहर न्यायाधीश रावबहादुर चिमनलाल सेतलवाड़ के प्रमुखस्थान से सम्मान कार्यक्रम के लिए संभाजी वाघमारे और अन्य मिलने गए तब कहा कि, "मुझे मानपत्र नहीं चाहिए। मैं आपके उपकार के लिए नहीं पढ़ा हूँ। मुझे ईश्वर की कृपा से मौका मिला और मैं पढ़ा। मेरी तरह दूसरे लोगों को भी मौका मिलेगा तो वह भी बड़ी परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे। अत: आप लोग ने मुझे मानपत्र देने के लिए जो पैसा इकठ्ठा किया है, उस पैसे का उपयोग हमारी अस्पृश्य जाति के योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देने के लिए कीजिए वह अधिक योग्य है।"

- "मूकनायक" पाक्षिक के प्रथम अंक में वे लिखते हैं – "हिंदुस्तान सिर्फ विषमताओं का घर हैं। हिन्दु समाज एक मीनारा है, लेकिन मीनारा पर चढ़ने के लिए निसेहनी नहीं है। एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर जाने के लिए सीढ़ी नहीं है। जिसका जिस मंजिल पर जन्म हुआ है, उनको उसी मंजिल पर ही मरना चाहिए। निचली मंजिल पर रहने वाला इंसान कितनी भी योग्यता क्यों न रखता हो उसके लिए ऊपर की मंजिल का प्रवेश निषेध है और उपरी मंजिल पर रहने वाला इंसान कितना भी नालायक क्यों न हो, उसको निचली मंजिल पर फेंकने की किसी की हिम्मत नहीं होती। चेतन, अचेतन अथवा जड़ वस्तुएँ इश्वर का ही रूप हैं, ऐसा कहने वाले स्वधर्मी को अस्पृश्य मानते हैं। सांप्रत ब्राह्मणों की महत्वाकांक्षा ज्ञानसंचय करने की ओर है, ज्ञान का प्रसार करने के ओर नहीं। ब्राह्मणेत्तर के पतन का कारण यह है कि, सत्ता और ज्ञान के अभाव में ब्राह्मणेत्तर पीछे रह गए हैं और उनकी उन्नति नहीं हुई। युगांतर से चलती आ रही गुलामी और दरिद्रता से बहिष्कृत वर्ग को मुक्ति देने के लिए आकाश-पाताल एक करना चाहिए। उनकी आँखों में ज्ञानरूपी काजल लगाकर अपनी हीन परिस्थिति से वाफिक कराना चाहिए।"

- मूकनायक के दूसरे लेख में वे लिखते हैं, - "भारत के स्वतंत्र होने से सभी प्रश्नों के समाधान मिल जाएंगे ऐसा नहीं हैं। भारत को एक ऐसा राष्ट्र बनाना चाहिए कि प्रत्येक नागरिक के समान धार्मिक, आर्थिक व राजकीय अधिकार हो तथा उनको अपने विकास के लिए उपयुक्त मौका मिले। अंग्रेजी शासन विरुद्ध किया गया यह आक्षेप ब्राह्मणों के मुख में कई गुना शोभा देता है। वही आक्षेप ब्राह्मण राज्य की विरुद्ध किसी बहिष्कृत की ओर से किया गया होता तो हजारों गुना शोभा देता है। यह कथन अवास्तविक है ऐसा कहने वाला कोई पापी निकलेगा ऐसा दिखाई नहीं देता है। अंग्रेज राज्य में जिनकी बातें सहन नहीं की जाती थी उनकी बातें सहन करनी पड़ेगी ! इसलिए ऐसा स्वराज्य दीजिए कि जिसमें थोड़ा बहुत हमारा भी राज्य हो।"
- जब लंदन में अभ्यास कर रहे थे तब उन्होंने कड़ी मेहनत की थी। हर रोज लायब्रेरी में सबसे पहले प्रवेश करके दिनभर पढ़ते थे। रात को घर जाने के बाद रात का खाना अर्थात् एक गिलास बोवरिल और दो-तीन बिस्कुट ले लेते और फिर पढ़ने बैठ जाते। रात को १० बजे भूख लगती तो चार पापड़ और एक कप दूध पीकर फिर से पढने बैठ जाते थे। साथ में रहने वाले अस्नाडेकर नाम के मुंबई के एक सज्जन देर रात को उठकर कहते कि, "अरे, अंबेडकर ! काफी रात बीत गई है रोज कितना जागते हो ? अब आराम कीजिए।" तब अंबेडकर जवाब देते कि, "अन्न के लिए पैसा और सोने के लिए समय मेरे पास नहीं है।"
- उनको जब-जब पैसे की जरूरत पड़ती थी तब-तब वे अपने मित्र नवल भाते से मँगवाते थे। एक घटना में उन्होंने पत्र में लिखा है कि, "मेरी वजह से तुझे बहुत तकलीफ होती है। इसका मुझे अत्यधिक दुःख है। विश्वास रखना, तुझे मेरे लिए जो परेशानी सहनी पड़ी है वह परेशानी परम मित्र के लिए सहन करना असंभव है। यह मुझे ज्ञात है। एक या दूसरी वजह से मुझे तत्काल पैसे की माँग करनी पड़ती है। अत: मेरे एकमात्र दोस्त तू मुझे दुखी करेगा नहीं, ऐसी मुझे उम्मीद है।"

- उन्होंने १९२५ में १५ दिसम्बर रॉयल कमीशन समक्ष भारतीय चलन के विषय में गवाही दी। उसमें आयोग को बताया कि – "हुंडियामन के विनिमय में सुवर्ण परिमाण चालू रखना भारत के हित में नहीं है। क्योंकि स्वर्ण परिमाण की भारत में मूलभूत स्थिरता नहीं है।"
- उस समय के प्रगतिशील विचारक शिक्षामंत्री डॉ. आर. पी. परांजपे। मुंबई की सिडनहेम कॉलेज में प्रधानाचार्य का स्थान खाली पड़ा था उस स्थान पर अंबेडकरजी की नियुक्ति कराने हेतु उन्होंने कई प्रयास किए लेकिन सफलता न मिलने पर उन्होंने एल्फिस्टंट कॉलेज में प्राध्यापक की नौकरी दिलाने की तैयारी दिखाई, किंतु अंबेडकर ने उनको बताया कि, "स्वजनों के उद्धार के लिए मेरा जीवन व्यतीत करने का मेरा संकल्प अडिग है। जिससे मेरे सेवा और कार्य में अवरोध खड़े हो ऐसा बंधन मैं कभी भी स्वीकार करूँगा नहीं।"
- स्वातंत्र्य के अधिकार भीख माँगने से नहीं मिलते। उसे अपनी शक्ति से प्राप्त करना पड़ता है, वह उपहार के रूप नहीं मिलते हैं। आत्मोद्धार कभी अन्य की कृपा से नहीं मिलता, यह तो प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही करना पड़ता है।
- अंबेडकर अपने बंधुओं को ऐसा उपदेश देते कि जिस तरह अग्निशिखा को तुच्छ मानकर उसे जबान पर रखने से वह जबान को जला देती है और अपनी कद्र करने के लिए बलात करती है। उसी तरह अस्पृश्य लोगों ने खुद को अस्पृश्य कहने वालों की जुबान खींच ली होती तो किसी ने भी उनको अस्पृश्य कहने की हिम्मत न की होती।
- अस्पृश्यों के लिए, उनके हक के लिए लड़ाई लड़ने वाले डॉ. बाबासाहब के आरंभ के कई वर्षों तक की ऐसी ही भूमिका रही थी कि हम (अस्पृश्यों सहित समग्र हिन्दुओं) हिन्दु समाज के अविभाज्य अंग हैं। उनकी मान्यता थी कि अस्पृश्यता का प्रश्न संपूर्ण हिन्दु समाज का प्रश्न है और उसके लिए उच्च वर्ण तथा अस्पृश्य दोनों को कंधे से कंधा मिलाकर काम करना चाहिए।

अत: २० जुलाई, १९२४ के दिन उन्होंने जब 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना करके बहुताई हिन्दु समाज के लोगों को स्थान दिया था। उनको मिलिंद महाविद्यालय के प्राध्यापक ने प्रश्न पूछा था कि, "बाबासाहब आप ब्राह्मणों के विरुद्ध क्यों हों ? उन्होंने जवाब दिया था कि, "यदि मैं ब्राह्मणों की विरुद्ध होता तो आप मेरी संस्था में नहीं होते। मेरी संस्था में बहुधा शिक्षक ब्राह्मण ही हैं। मैं ब्राह्मणों की विरुद्ध नहीं अपितु ब्राह्मणत्व की विरुद्ध हूँ।"

- शिक्षा के विषय में महाराष्ट्र विधानसभा के प्रथम व्याख्यान में मार्च, १९२७ में उन्होंने कहा, "सामान्य इंसान के लिए शिक्षा सुलभ बने एसी व्यवस्था करनी चाहिए। निम्न वर्ग के लिए उच्च शिक्षा खर्चीली नहीं होनी चाहिए। निम्न वर्गों को उच्च वर्गों की समकक्ष लाने के लिए उनको सुविधाएँ देनी चाहिए। पांच और दस की संख्या को दो से गुना जाए तो गुणनफल १० और २० आएगा। अत: पाँच का दो से और दस का एक से गुणनफल करना चाहिए। अर्थात् उच्च वर्गों की समकक्ष लाना चाहिए। ऐसा करना अर्थात् समानता।"

- चवदार तालाब सत्याग्रह बाद वहाँ के हिन्दुओं ने तालाब का शुद्धिकरण किया। उससे अंबेडकर को बहुत गुस्सा आया। उन्होंने अस्पृश्यों के तालाब से पानी भरने के अधिकार को प्राप्त करने के लिए पुन: एक बार रणमैदान में उतरने और सत्याग्रह करने का संकल्प किया। उन्होंने तालाब का शुद्धिकरण करने वाले हिन्दुओं को कहा कि, "हिन्दुओं मुसलमान बनने के बाद उस तालाब से पानी भरते हैं तो हिन्दु धर्म अपवित्र नहीं होता है किंतु हिन्दु धर्म के ही महार, चमार उस तालाब से पानी भरते हैं तो हिन्दु धर्म डूब जाता है।" इस प्रकार की धोषणा करने वालों को उन्होंने चेतावनी दी कि, "यह धर्मरक्षण नहीं अपितु धर्मद्रोह है।" आगे उन्होंने ने कहा कि, "अस्पृश्यता हिन्दु धर्म के ऊपर कलंक नहीं, यह तो हमारे बदन पर का कलंक है।" "कलंक हिन्दु धर्म पर है ऐसा हम मानते थे वहाँ तक यह काम आपको सौंपा गया था। अब वह कलंक हमारे ऊपर हैं अत: वह पवित्र कार्य हमने खुद ही करने

का तय किया है। उस कार्य को सिद्ध करने के लिए हम में से किसी को भी आत्मबलिदान देना पड़ा तो उसकी कोई आपत्ति नहीं हैं। यदि ईश्वर का ऐसा ही संकल्प है तो हम अपने आपको भाग्यशाली समझ रहे हैं। सवर्णों ने तालाब शुद्ध कर हमारी अपवित्रता सिद्ध करने का जो तुच्छ प्रयास महाड में किया, वैसा भले ही भविष्य में करें। लेकिन हम पवित्र हैं। वह आपके मुख से बुलाये बिना हमें शांति नहीं मिलेगी।"

- "किसी भी कार्य में सफलता मिलेगी या नहीं उसका जितना आधार उसमें उपलब्ध साधन-सामग्री पर है, उतना ही आधार उस कार्य की नैतिकता पर भी हैं। यदि कार्य के मूल में शक्ति है तो उसमें सफलता मिलेगी कि नहीं इस बात की चिंता करने का विशेष कारण नहीं है। सत्याग्रही में आत्मबल होना चाहिए। आत्मबल हम जो कर रहे हैं वह योग्य है कि अयोग्य उस पर आधारित हैं। अत: इस बात पर भरोसा होना चाहिए, इसलिए सत्याग्रहियों के लिए सत्याग्रह अर्थात् क्या यह समझना आवश्यक है। जिस कार्य के लिए लोकसमूह तैयार होता हैं, उस सत्कार्य के लिए किया गया आग्रह अर्थात् सत्याग्रह। यदि बुद्धि शुद्ध नहीं है तो लोकविग्रह होगा, स्वार्थ के उद्देश्य से विग्रह होगा। जहाँ लोकसमूह हैं वहाँ सत्कार्य हैं। यह हमारी विचारधारा है। यह विचारधारा गीता से ली गई है। सत्याग्रह गीता का प्रतिपादित विषय है। गीता भगवान के द्वारा दिया गया उत्तर है। गीता का आधार लेने का कारण यह है कि वह स्पृश्य और अस्पृश्य दोनों को मान्य हैं। हमारे आंदोलन का उद्देश्य लोक संगठन का है।" (चवदार तालाब के दूसरे सत्याग्रह के वक्त के विचार)
- "हिंसा या अहिंसा सिर्फ आग्रह सिद्धि के साधन हैं। जैसे कर्म और कर्मों के संदर्भ में क्रियापद का रूप बदल जाता है उसी तरह कई साधनों के संदर्भ में आग्रह का नैतिक स्वरूप बदलता नहीं हैं क्योंकि कुछ दुराग्रही अपने आग्रह को पूरा करने के लिए अहिंसा का मार्ग स्वीकार करते हैं तो उसके लिए उसके दुराग्रह को सत्याग्रह नहीं कहा जा सकता अथवा कुछ सत्याग्रही

सत्याग्रह की सिद्धि के लिए हिंसा का आचरण करे उसके लिए ही उसके सत्याग्रह को दुराग्रह कहना असंभव है। ऐसा कहा जाए तो गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सत्याग्रह की सिद्धि के लिए जो हिंसा का मार्ग स्वीकार करने की बात कही उसका क्या अर्थ है ?"

- "यदि जल्द से जल्द अस्पृश्यता खत्म नहीं होती हैं तो धर्मांतरण करना, ऐसा वे कहते थे। अत: हिन्दु नाराज हुए थे। उन्होंने उनको उत्तर दिया कि, "यदि धर्मांतरण के लिए हम अधीर होते तो और अस्पृश्यता निवारण का प्रश्न हमारे तक सिमित होता तथा हमारी भावी पीढ़ी तक दूर करना होता तो हम ऐसा धर्मांतरण कब का कर चुके होते। लेकिन जहाँ तक संभव है वहाँ तक हिन्दु धर्म में रहना और समग्र बहिष्कृत वर्ग की दृष्टि से विचार करना, ऐसी ही हमारी इच्छा होने से, हमने हमारे सत्य के प्रयास जारी रखे हैं। यद्यपि किसी भी व्यक्ति अथवा किसी भी वर्ग की सहनशीलता की एक मर्यादा होती है। अस्पृश्यता एक गुलामी है। गुलामी तथा धर्म एक साथ नहीं रह सकते हैं।"
- चवदार तालाब के दूसरे सत्याग्रह के पश्चात् समाज की स्त्रियों को संबोधित करते वक्त उन्होंने कहा, "आप अपने आपको अस्पृश्य मत मानिए। आपना घर स्वच्छ रखिए। स्पृश्य स्त्री जिस पद्धति से साड़ी पहनती है; उसी पद्धति से ही आप साड़ी पहनिए। कपड़े भले ही फटे हो लेकिन स्वच्छ होने चाहिए। आपके गर्भ से जन्म लेना पाप क्यों और अन्य के गर्भ से जन्म लेना यह पुण्य क्यों माना जाता है, इस पर विचार कीजिए। आप प्रतिज्ञा लीजिए कि एसी कलंकित स्थिति में हम भविष्य में नहीं जिएंगे। आपको पुराने और गंदे रिवाजों का त्याग करना चाहिए। आज के दिन से किसको, कैसा व्यवहार करना चाहिए इस पर प्रतिबंध नहीं है। उसी तरह चांदी के गहने शरीर पर भरपूर पहने जाते हैं वह आपकी पहचानने की निशानी है। गहने पहनने ही हैं तो सोने के पहनिए। घर में कोई अमंगल बात मत होने दीजिए। मृत पशु का मांस खाना बंद कीजिए। शराबी पति, भाई अथवा पुत्र को भोजन देना बंद कीजिए। पुत्रियों को शिक्षा दीजिए। ज्ञान और विद्या स्त्रियों के लिए भी

आवश्यक है।"

- "भाषावार प्रांतरचना का तत्व इतना विशाल है कि उसे प्रत्यक्ष व्यवहार में उतरना असंभव है। इस तत्व का थोड़ा भी तर्क स्वीकार किया जाए तो इतने नए प्रांत बनाने पड़ेंगे कि उसकी संख्या ही इस भाषावार प्रांतरचना के तत्व की अव्यवहार्यता सिद्ध करेगा।"
- पाकिस्तान की माँग के विषय में उन्होंने कहा था कि, "यह एक जातिवादी माँग थी। पाँच प्रांतो में से मुसलमानों की जातिगत बहुमत का रूपांतर करके उसको राजकीय बहुमत में परिवर्तित करने का एक जबरदस्त षडयंत्र था। यह योजना जितनी दिखाई देती है, उतनी निरुपद्रवी और निर्हेतुक नहीं है। यह बात निसंदेह है कि इस योजना के पीछे का मकसद भयंकर है। बैरयुक्त न्याय और शांति रखने का षड़यंत्र है।" उन्होंने सन १९२९ में ही समग्र देश को इस विषय में चेतावनी दी थी। उन्होंने कहा था कि, "युद्ध की सिद्धता शांति की हिफाजत करने का सर्वोत्तम मार्ग है।" इसलिए उन्होंने गाँधीवादी मुस्लिम नेता मौलाना आजाद द्वारा कलकत्ता में किए गए व्याख्यान को उद्धृत किया था। जिसमें मौलाना ने कहा था कि, "हिन्दुओं के नौ प्रांतों के साथ मुसलमानों के पाँच प्रांतों की रचना होगी। अत: नौ प्रांतों में हिन्दु मुसलमानों के साथ जैसा व्यवहार करेंगे वैसा व्यवहार पाँच प्रांतों के हिन्दुओं के साथ किया जाएगा। क्या यह बड़ा लाभ नहीं है ? मुसलामानों को अपने अधिकारों को प्रस्थापित करने लिए एक नया शस्त्र मिला ऐसा नहीं हैं ? इस तरह अंबेडकर ने गाँधीजी के साथ के मुस्लिम नेताओं की मानसिकता पर प्रहार कर प्रकाश डालकर देश को चेतावनी दी थी।
- मुस्लिमों की स्वतंत्र मतदाता संघ की माँग के बारे में उन्होंने कहा था कि, "दुनिया में मुसलमान अल्पसंख्यक में हैं, ऐसा सिर्फ हिन्दुस्तान एकमात्र देश नहीं हैं। विश्व के दूसरे देशों भी मुसलमान लघुमत में हैं। फिर भी वे वहाँ अलग मतदाता संघ की माँग नहीं करते हैं। आगे उन्होंने कहा कि जातिवादी प्रतिनिधित्व का मूल ही इतना गलत है कि इस विषय में भावना का शिकार

होना अर्थात् देश के संविधान में एक दोष को कायम करना।"

- नासिक में चित्तेगाँव में एक विराट परिषद् का सन १९२९ में आयोजन किया गया था। तब साम्यवादी मुंबई में मजदूरों को हड़ताल के मार्ग पर ले जा रहे थे। अंबेडकर के मतानुसार हड़ताल शस्त्र था। जिसका योग्य तरीके से उपयोग होना चाहिए। साम्यवादी इस हड़ताल का उपयोग राज्यक्रांति के लिए करते हैं तदुपरांत मजदूरों में से भी अस्पृश्य मजदूरों की आर्थिक परिस्थिति इस हड़ताल के कारण ओर ज्यादा बिगड़ी थी। क्योंकि एक तरफ कमाई बंद हो गई थी और दूसरी तरफ पठान के पास ब्याज पर लिए हुए पैसे से इस मजदूरों के परिवार डूबते जा रहे थे। उन्होंने इस परिषद में बताया कि, "मनुष्य का स्वाभिमान टिकाकर रखने वाली शिक्षा एकमात्र बात नहीं है, शिक्षा प्राप्त करने से इंसानियत आ जाती तो सुशिक्षितों और अधिकारियों की तरफ से हमारे साथ अन्याय नहीं हुआ होता। इंसानियत के लिए उग्र लड़ाई लड़ें। अपना ध्येय हासिल करने के मार्ग में आने वाली रुकावटों को खुद ही दूर करके अपने पर लगे कलंक को आप स्वयं ही धो डालिए।"
- अस्पृश्यों को वे सलाह देते हैं कि, "मैं आज आपको एक बात स्पष्ट रूप से कहने का उपयुक्त मौका ले लेता हूँ। अस्पृश्यों के समग्र दुःख दूर करने के लिए राजकीय सत्ता एकमात्र उपाय नहीं है। अपने सामाजिक जीवन का स्तर ऊँचा लाने में ही आपका उद्धार है। आपको अपनी जीवन-पद्धति सुधारनी चाहिए। आपकी जीवन-प्रणाली और वर्तन में ऐसा फर्क आना चाहिए कि जिससे आपके प्रति आदर और मित्रता में बढ़ोतरी हो। आपको शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। सिर्फ लिखना, पढ़ना या अंकगणित सिखने से कुछ नहीं होने वाला। इसमें से एक से भी अनेक लोगों का जीवन स्तर ऊँचा नहीं होता हैं तो समग्र अस्पृश्य वर्ग के बारे में लोगों के मन में आदर भावना कैसे बढ़ेगा ? आपको आपके दयनीय दशा और आत्मसंतोष की भावना से बाहर निकालकर जागृत करने की आवश्यकता है, जिसमें से मनुष्य की उन्नति होती हैं, ऐसा निर्माण करना चाहिए।"

- ७ नवम्बर, १९३२ के दिन वे इंग्लैंड जाने के लिए निकले तब गाँधीजी ने यरवदा जेल से दलित आंदोलन के बारे में जो सार्वजनिक निवेदन दिया था, उसके विषय में उन्होंने अपने मित्रों को बताया कि, "गाँधीजी का रवैया बदलकर हमारे मत के अनुकूल होता नजर आ रहा है। लेकिन अंतरजातीय विवाह और सहभोज के लिए गाँधीजी का मन अभी तक नहीं मान रहा है। गाँधीजी को उपवास नहीं करने चाहिए, क्योंकि ऐसा करके वे व्यर्थ में प्राण गँवा देंगे।"
- ऐतिहासिक 'पूना करार' का भविष्य अंबेडकर जानते थे। उन्होंने 'पूना करार' के पश्चात् बताया कि, "अलग मताधिकार राष्ट्र का हितकर्ता है। ऐसा मानकर हमें साम्प्रदायिक फैसले के विरुद्ध 'पूना करार' करना पड़ा। किंतु मैं स्पष्ट रूप से मानता हूँ कि बहुमत प्रतिनिधित्व को शायद अलग मताधिकार अहितकर होगा, अपितु अल्पसंख्यकों के लिए तो यह अलग मताधिकार आशीर्वादरूप हैं। तदुपरांत हमने आज जो करार किए हैं उसमें सयुंक्त मताधिकार की व्यवस्था की, लेकिन इससे दलितों की अस्पृश्यता समस्या का कोई हल निकलेगा, ऐसा नहीं है, क्योंकि दलित समाज को हिन्दु समाज में सम्मान के साथ-साथ सामाजिक समता मिले इसलिए हिन्दु समाज को भी सहयोग देना पड़ेगा। आज दलित समाज जिस प्रकार से अज्ञानता के अंधकार में पड़ा है उसको अब जागृत होना पड़ेगा, आत्मसम्मान की भावना जगानी पड़ेगी। इसके लिए शिक्षित बनना ही पड़ेगा। दलित समाज को हिन्दु धर्म से दूर होने से रोकना पड़ेगा और यह महात्मा गाँधी समझ गए हैं। इसलिए ही मंदिर, तालाब के द्वार दलितों के लिए खोलने की घोषणा होने लगी है। यदि हिन्दु धर्म को जिंदा रखना है तो अस्पृश्यता को मारना ही पड़ेगा।"
- इस विषय में आगे उन्होंने अस्पृश्यता निवारण संस्था के महामंत्री श्री अमृतभाई ठक्कर (ठक्करबापा) को पत्र लिखकर बताया कि, "स्पृश्यों और अस्पृश्यों दोनों कायदे के बंधन से अथवा अलग मतदाता मंडल के बदले सयुंक्त मतदाता मंडल की रचना करने से कभी भी वे एक नहीं होंगे। सिर्फ प्रेम का बंधन ही

उनको एक रख सकेगा और न्याय तथा समानता स्वीकार्य किए बिना प्रेम उद्‌भव होता नहीं है। सवर्ण हिन्दु को उसके विचार और आचार में क्रांति करने का फर्ज अदा करवाना पड़ेगा तभी अस्पृश्यों का उद्धार होगा। अर्थात् अस्पृश्य वर्गों को नागरिकत्व के सीधे सादे अधिकार को प्राप्त करके कुएं से पानी भरना, स्कूल में उनके बच्चों को दाखिल करवाना, गाँव के चौराहे में प्रवेश और उनकी बैलगाड़ी, घोडागाड़ी, नाव इत्यादि वाहनों को बिना रोक-टोक इस्तेमाल करने देने के लिए आंदोलन करना। इस आंदोलन को सफल बनाना है तो आपको समाजसेवियों की एक फौज तैयार करनी पड़ेगी। ये स्वयंसेवक अस्पृश्यों को उनके अधिकारों के लिए लड़ने के लिए उत्तेजित करके प्रवृत करेगी और सरकारी कचहरियों से न्याय प्राप्त करने आर्थिक एवं दूसरी जरूरी सहायता करेंगी।"

- कहा जाता है कि भारत की राजनीति में डॉ. अंबेडकर जैसे स्पष्ट और तेज जबान उस वक्त किसी दूसरे नेता की नहीं थी। वास्तव में क्रांतिकारी कभी भी गोल और मीठी भाषा में बोलते नहीं हैं और प्रगति के वक्त धूल और धुए को उड़ाए बिना भी नहीं रहते हैं। यदि कोई इंसान गाँधीजी एक पवित्र व्यक्ति होने की बात अंबेडकर समक्ष करता, तो तुरंत वे गुस्सा होकर कहते "गाँधीजी उल्लू जैसे अपवित्र और अशुभ है।" "गोलमेजी परिषद के वक्त गाँधीजी का व्यवहार अत्यंत विश्वासघाती था। कोई निम्न कक्षा का बदमाश भी ऐसा व्यवहार नहीं करता।

- मैं खुले आम कहता हूँ मैं नहीं मानता कि इस देश में कोई विशेष संस्कृति का स्थान होगा। फिर भले ही हिन्दु संस्कृति हो, मुस्लिम संस्कृति हो, कन्नड संस्कृति हो या फिर गुजराती संस्कृति हो। यह एसी बातें हैं जिनका हम इन्कार नहीं कर सकते हैं। लेकिन एसी बातों का वरदान के रूप में भी विकास नहीं करना है। एसी बातों को अभिशाप के रूप में एवं जो हमारी वफादारी को विभाजित करती हो और हमको हमारे समग्र ध्येय से दूर ले जाती हो ऐसी माननी है। यह समान ध्येय अर्थात् हम सब भारतीय है ऐसी

भावना का निर्माण करना। जबकि कई लोग ऐसा कहते हैं, हम प्रथम हिन्दु या मुसलमान हैं उसके बाद भारतीय हैं यह मुझे पसंद नहीं है। मैं साफ-साफ कहता हूँ कि, देश पहले और बाद में धर्म। कई लोग कहते हैं धर्म पहले और बाद में देश। किंतु मैं कहता हूँ देश पहले और उसके बाद भी देश ही।

- जिस व्यक्ति में प्रेम और नफरत प्रबल नहीं उस व्यक्ति को एसी आशा भी नहीं रखनी चाहिए कि, वे अपने संतान पर कोई प्रभाव छोड़ जाएंगे और वह ऐसी सहायता प्रदान करेगी, जो महान सिद्धांत और संघर्ष के बिना लक्ष्य के लिए उचित हो। तदुपरांत मैं मेरे आलोचक को बताना चाहता हूँ कि, मैं मेरे भावों (विचार) को मेरा वास्तविक बल और शक्ति मानता हूँ और वह पवित्र प्रेम की अभिव्यक्ति है। जो मैं, उस लक्ष्यों और उद्देश्यों के लिए प्रकट करता हूँ, जिसके प्रति मेरा अटूट विश्वास है।
- अहिंसा का सिद्धांत मुझे पसंद है, किंतु अहिंसा और शरणागत में फर्क है। शरण में जाकर गुलामगिरी और बेबस जीवन जीना शोभास्पद नहीं है। मैं इस विषय में संत तुकाराम के साथ सहमत हूँ। दुराचारियों का नाश और सदाचारियों की रक्षा यह भी अहिंसा ही है। यद्यपि दुराचारियों का नाश यह भी अहिंसा का एक भाग है। शक्ति तथा चरित्र यही आपका ध्येय होना चाहिए।
- बलप्रयोग अस्थायी व्यवस्था है। बलप्रयोग के माध्यम से कुछ समय तक ही शांति स्थापित हो सकती है, लेकिन स्थायी और वास्तविक इच्छा रहती है। जिस देश को बार-बार जीतना पड़े उस देश पर शासन करना कठिन है। आंतकवादी माहौल में बलप्रयोग हमेशा सार्थक साधन नहीं बन सकता है। यह सभी को समझ लेना चाहिए कि शस्त्र से कभी भी विजय प्राप्त नहीं होती।
- गुलामी की लंबी जिंदगी जीने से अच्छा है आजादी का क्षणिक जीवन जीना।

- यह बात तो स्पष्ट है कि जब तक संदेह उत्पन्न नहीं होता, तब तक प्रगति नहीं हो सकती है। हमने यह भी देखा हैं कि सभ्यता इंसान के ज्ञान के योगदान पर निर्भर रहती है और इस बात पर भी अवलंबित रहती है कि ज्ञान कहाँ तक संचरित किया गया है। लेकिन लोग अपने ज्ञान से संतुष्ट होकर बैठ जाते नहीं हैं। जो व्यक्ति अपने ज्ञान और विचारों को संपूर्ण मानते हैं और उसके ज्ञान के आधार को ढूंढने का कष्ट उठाता नहीं है, उनके ज्ञान में वृद्धि नहीं होती है। वे अपने बुजुर्गों से जो सीखे हैं जो सुना है उसे सत्य मानते हैं। उसके विरुद्ध कुछ कहा जाए तो उनको बुरा लगता है। अब जब उनकी मानसिक स्थिति ही ऐसी होती हैं तब नए सत्यों तथा तथ्यों का स्वीकार करना उनको असंभव लगेगा, जो उनके रूढ़िगत फैसलों के साथ मेल नहीं खाते हैं।
- तब ही औचित्य ग्रहण कर सकते हैं जब लोग जाति, ज्ञाति, रंग व ऊँच-नीच के भेदभाव भूलकर उनमें रही सामाजिक भातृत्व की भावना को सर्वोच्च स्थान दें।
- सभी मनुष्य एक ही मिट्टी से बने हैं अत: सभी को अधिकार हैं कि वे अपने साथ अच्छे व्यवहार की अपेक्षा रखें।
- प्रत्येक प्रगति के लिए मूल्य चुकाना पड़ता है जो प्रजा मूल्य चुकाती हैं वहीं प्रजा प्रगति हासिल कर सकती है।
- एक इतिहासकार निश्चित, निखालिस, निष्पक्ष, आवेगयुक्त, स्वार्थ, भय तथा अनुराग से दूर एवं सत्यनिष्ठ होना चाहिए, जो सत्य इतिहास की जननी है, जो (इतिहास) महान कार्यों का संरक्षक है, जो विस्मृति का शत्रु और भूतकाल का गवाह है एवं भविष्य का नियामक है। संक्षिप्त में कहे तो एक इतिहासकार दिमाग वाला (विचार वाला) होना चाहिए अपितु खाली दिमाग वाला नहीं होना चाहिए। ऐसे इतिहासकार को उसके समक्ष पड़े हुए सभी प्रमाण की छानबीन करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। फिर भले ही वे गवाह नकली हो।

- मैं किसी भी समाज की प्रगति का अनुमान इस बात से करता हूँ कि उस समाज की महिलाओं की स्थिति कैसी है ? नारी की उन्नति बिना परिवार, समाज एवं राष्ट्र की प्रगति के सपने देखना यह तो रेगिस्तान में जहाज चलाने जैसा है।

- भारत में समाजसुधार का मार्ग स्वर्ग के मार्ग जितना ही कठिनाईयों से भरा है। भारत में समाज सुधारकों के प्रशंसक अल्प और आलोचक ज्यादा होते हैं। मेरे मन में इस प्रश्न को लेकर जरा भी संदेह नहीं है कि जब तक हम लोग वर्तमान समाज का ढाँचा नहीं बदलेंगे तब तक प्रगति के रूप में हम कुछ विशेष पा नहीं सकेंगे।

- श्रेष्ठ व्यक्ति के कारण सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को दूर किया जाता है और खराब व्यक्ति के कारण अच्छी व्यक्ति को दूर किया जाए यह नहीं होना चाहिए। अमूर्त सिद्धांत के साथ किसी को भी लड़ाई नहीं हो सकती हैं। किंतु इंसान यंत्र नहीं है। वह किसी के प्रति हमदर्दी की तो अन्य के प्रति द्वेष की भावना दर्शाने वाला इंसान है। श्रेष्ठ व्यक्ति के लिए भी यह सत्य ही है। उनमें भी वर्गभेद वर्गद्वेष की भावनाएँ होती हैं। इन ख्यालों का ध्यान रखते हैं तो शासकवर्गों और दासवर्गों के एकदूसरे के लिए अभिगमों में जो भेद हैं, वह एक राष्ट्र की व्यक्ति के अन्य राष्ट्र के व्यक्ति के प्रति अभिगम जैसा ही होता है,

- अपने सामाजिक और आर्थिक ध्येय संवैधानिक के ढाँचे में रहकर परिपूर्ण करने चाहिए। नागरिकों द्वारा कायदे का उल्लंघन, असहयोग, हठाग्रह, सत्याग्रह इत्यादि गैरसंवैधानिक मार्गों को बंद करने चाहिए। जब आर्थिक और सामाजिक ढाँचे को समृद्ध बनाने के लिए कोई संवैधानिक उपाय नहीं होता है तब ही न्यायिक तौर पर संविधान की उपेक्षा किए बिना सामाजिक और आर्थिक ध्येय पूर्ण करने चाहिए। लेकिन जब संवैधानिक उपाय और उद्देश्य नजर के समक्ष हो तब गैरसंवैधानिक तरीके नहीं अपनाने चाहिए। यह गैरसंवैधानिक तरीके ही अराजकता का कारण है। अत: देश को समृद्ध

बनाने के लिए इस तरह की अराजकता फैलाए एसी रित-रस्मों को छोड देनी पड़ेगा।

- असमानता जैसी बिलकुल स्वार्थी वस्तु को परंपरा बनाना जितना आसन है उतनी ही आसानी से सत्य को आदर्श नहीं बना सकते है। इंसान अपने निजी स्वार्थ के लिए आदर्श (परंपरा) बनाता है। ऐसे स्वार्थ को परंपरा बनाना वह गुनाह के अलावा ओर कुछ नहीं है। यह असमानता (स्वार्थ) परंपरा है, ऐसा अभिप्राय भी सदाचार का विरोध करता है। सम्यक समझ धारक कोई भी समाज ऐसी परंपरा का स्वीकार ही नहीं करता अपितु इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देंखे तो व्यक्ति और समाज ने जो प्रगति की है वह सिर्फ नैतिक सिद्धांत के कारण ही की है। अत: जो भी गलत परंपराएँ हैं वह कभी भी शाश्वत परंपरा नहीं होती है किंतु उस परंपरा को सत्य के परिप्रेक्ष्य में पुन: शाश्वत बनानी चाहिए।
- मूल्य आदर्श मापदंड के रूप में अच्छे और अनिवार्य है। कोई भी व्यक्ति या समाज मापदंड के बिना नहीं हो सकता है। लेकिन यह मापदंड समय और परिस्थिति के प्रवाह के साथ परिवर्तित होते रहने चाहिए। कोई भी मापदंड कायम के लिए निश्चित किया हुआ नहीं होना चाहिए। अपने मापदंड और मूल्यों में हमेशा पुन:मूल्यांकन की व्यवस्था होनी चाहिए। मूल्यों के पुन:मूल्यांकन के लिए खुला रहने की (विचारों से) संभावना तभी हो सकती है, जब सामाजिक संस्था को (धर्म की) पवित्रता का पहनावा नहीं पहनाया हो ! पवित्रता का आचार-विचार उसके मूल्यों के पुन:मूल्यांकन की प्रक्रिया को रोकता है। बस एक बार पवित्र अर्थात् कायम के लिए पवित्र !
- मेरा मन खुला है जबकि खाली नहीं है। खुला मन वाली व्यक्ति सदैव अभिनंदन के पात्र है। किंतु कई बार ऐसा होता है कि खुला मन खाली भी होता है। ऐसा खुला मन कई बार सुखद या दुखद परिस्थिति का सर्जन करता है। खाली दिमाग धारण करने वाली व्यक्ति पर संकट आसानी से वर्चस्व जमा देता है। एसी व्यक्ति बिना मालसामान और पतवार के जहाज जैसी होती है। जो सही दिशा के अभाव में चट्टान के साथ टकराकर टूट

जाता है।

- गोरे लोगों द्वारा नीग्रो पर जितने अत्याचार होते हैं, उससे अनेक गुना अत्याचार सवर्णों द्वारा दलितों पर किए जाते हैं। नीग्रो गुलाम पर सिर्फ शारीरिक अत्याचार होते हैं जबकि दलितों पर शारीरिक-मानसिक अत्याचारों होते हैं। गोरे लोगों ने निग्रो के बदन को जलाया हैं। जबकि सवर्णों ने दलितों के मन को मार डाला है। बदन जलाने से ज्यादा मन मारना अत्याधिक घातक है। इस बात का सभी स्वीकार करेंगे ही।
- मेरे समग्र जीवन के दौरान मैं विद्यार्थी ही रहना चाहता था। ज्ञान क्षुधा के परितोष के लिए पेट की क्षुधा को दबाकर भी मैंने कई बार ग्रंथ को खरीदे थे। प्राध्यापक की छोटी नौकरी स्वीकार कर सुख से जीवन बिताने की मेरी इच्छा थी। लेकिन सदभाग्य कहो या दुर्भाग्य मैं अछूतों के आंदोलन में आ गया फिर उसमें धँसता गया... आदमी नहीं, पैसे नहीं और बुद्धिमत्ता की भी बहुत कमी रखने वाले एसे दलित समाज की इस स्थिति में इस समाज का कार्य करना अति कठिन है। किंतु मैं अविरत करता ही रहा... करता ही रहा।
- विश्व में इंसान को जो सुखदुख भुगतने पड़ते हैं वह ईश्वरेच्छा से आते हैं। दारिद्र हमारे लिए ही है ऐसा लोग मानते हैं। हमें ऐसा नीच मानने की वृत्ति छोड़ें। सहभोजन और मंदिर प्रवेश के विरुद्ध मेरा विरोध नहीं है। लेकिन इससे हमें राजकीय हक मिलने वाले नहीं हैं। अब से जो कायदे बनेंगे वह अस्पृश्य वर्गों की सहमति से बनेंगे। यह एक सामाजिक क्रांति है। हमें परिवार का निर्वाह चलाने की जरूरत हैं। अन्न, कपड़े और रहने के लिए अच्छा मकान हमें मिलने ही चाहिए। अस्पृश्य वर्गों से भी आंतरिक जातिभेद दूर होने चाहिए।
- राष्ट्र को नेतृत्व चाहिए तब राष्ट्र को नेतृत्व कौन दे सकता है ? यह प्रश्न है। मैं यह कहने की हिम्मत करता हूँ कि सिर्फ श्रमिक ही राष्ट्र की जरूरत के

वक्त नेतृत्व करने के लिए शक्तिमान हैं। दूसरी चीजों से ज्यादा सच्चे नेतृत्व के लिए स्वतंत्र विचारधारा और आदर्शवाद जरूरी है। अकेला आदर्शवाद तो कुछ कुलीन वर्ग के लोगों के लिए संभव है अपितु आदर्शवाद और स्वतंत्र विचारधारा मध्यम वर्ग के लोगों के लिए संभव नहीं है। राष्ट्र को मार्गदर्शन देने के लिए स्वतंत्र विचारधारा और आदर्शवाद की आवश्यकता है। लेकिन उसका स्वागत करने मध्यम वर्ग के लोग तैयार नहीं है। उनमें नई रूढ़ी बनाने की इच्छा ही नहीं हैं, जो अभी मजदूर वर्ग के लोगों में जीवंत हैं। राजकीय भविष्य के लिए यह एक अगत्य का पहलू है, जो श्रेष्ठ भूतकाल वापस लाने के लिए जरूरी है। श्रमिकों का नेतृत्व भारत व भारतीयों की एकता और संघर्ष के लिए जरूरी है। जीत का आस्वाद स्वतंत्रता और नए सामाजिक ढाँचे के लिए आवश्यक है। ऐसी जीत के लिए सभी को संघर्ष करना चाहिए। इस जीत के आस्वाद से पितृ मुल्क में समानता तथा एकता के अधिकार को नकारा नहीं जा सकता है।

- मजदूरों का धर्म अंतरराष्ट्रीयता है। वे राष्ट्रवाद में विश्वास करते हैं क्योंकि, प्रतिनिधित्व वाली लोकसभा, जिम्मेदार अमलदारी प्रथा, संवैधानिक प्रणालिकाएँ इत्यादि लोकशाही के आधारस्तंभ, राष्ट्रीय भावना के कारण एक सूत्र में बँधकर बहुत अच्छी तरह से कार्य करते हैं। अत: मजदूर की संवेदना राष्ट्रवाद में रूचि रखती है। राष्ट्रवाद मजदूर के लिए आखरी लक्ष्य नहीं या जिस आखरी लक्ष्य के लिए मजदूर जीवन के श्रेष्ठ सिद्धांतों के साथ निपटारा करने के लिए सहमत हो।
- गाँधी हो या जिन्ना मैं व्यक्तिपूजा में नहीं मानता। उस न्याय से मैं रानडे की व्यक्तिपूजा में जुड़ नहीं सकता हूँ। अपने यहाँ व्यक्तिपूजा और उसके बाद मूर्तिपूजा चली है। जो दुर्भाग्य है। मैं तो कहता हूँ कि, "जेबकतरों से सतर्क रहो" जैसे तख्ते की तरह "महापुरुषों से सतर्क रहो" एसे तख्तें लगाने की आवश्यकता है। व्यक्ति के आदर्शों की, कार्य की कीमत होनी चाहिए।
- यात्रा करने से, एकादशी, सोमवार इत्यादि उपवास करने से या शनि महात्म्य,

शिवलीलामृत, गुरुचरित्र इत्यादि पोथियों का पारायण करने से आपका उद्धार होने वाला नहीं है। आपके बुजुर्ग-पूर्वज हजारों वर्षों से यह सब करते आ रहे हैं, लेकिन उससे क्या उनकी दयनीय परिस्थिति में रत्ती भर भी फर्क पड़ा है ? पहले के जैसे अभी भी आपके अंगों पर फटे-पुराने वस्त्र ही हैं। अभी भी आपके पूर्वज की तरह आपको आपकी ओर फेंके गए जूठन पर ही जीवननिर्वाह करना पड़ता है। जानवर बाँधने की जगह से भी गंदे निवास स्थान में ही आपको रहना पड़ता है। आप अभी भी मुर्गी-बतख की तरह अनेक बिमारियों का भोग बन रहे हो। आपके द्वारा किए धार्मिक उपवास, व्रत या तपश्चर्या किसी ने भी आपको भुखमरी से छुड़ाया नहीं है।

- शिक्षा एक दोधारी तलवार होने से इसके इस्तमाल जोखिमभरा भी है। चारित्र्यहीन और विनयहीन सुशिक्षित मनुष्य पशु से भी ज्यादा भयंकर होता है। सुशिक्षित इंसान की शिक्षा गरीब जनता के हित की विरोधी हो, तो ऐसे सुशिक्षित मनुष्य समाज के लिए अभिशाप बन जाते हैं। एसे मनुष्य धिक्कारपात्र होते हैं।

- चारित्र्य शिक्षा से ज्यादा अधिक महत्त्वपूर्ण है। युवाओं में धर्म की ओर जो उदासीनता फैल रही हैं उसे देखकर मुझे दुःख होता है। धर्म तो अफीम की गोली है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। किंतु यह बात सच नहीं है। मेरे अंदर जो भी सच्चे गुण है, अथवा तो मेरी शिक्षा की वजह से समाज का जो कुछ भी हित हुआ है, वह मुझ में रही धर्मभावना से ही संभव हो पाया है। मुझे धर्म चाहिए, किंतु धर्म के नाम पर चल रहे दंभ मेरे लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है।

- साहित्यकारों को मैं आग्रहपूर्वक कहना चाहता हूँ कि, आप अपने साहित्य सृजन द्वारा उदात्त जीवन मूल्यों और सांस्कृतिक मूल्यों का विकास कीजिए। आप अपने विचार संकुचित या सिमित न रखते हुए उनको उदार और उदात्त बनाइए। आपकी वाणी को चारदिवारी में मर्यादित न रखते हुए गाँव-गाँव के गहन अँधेरे को दूर करके चारों तरफ प्रकाश फैलाएं। आपको भूलना

नहीं चाहिए कि, हमारे देश में उपेक्षितों, दलितों तथा दिन-दुखियों का एक अलग विश्व है। उनका दुःख, उनकी व्यथा को समझें और साहित्य द्वारा उनके जीवन को उन्नत बनाने के लिए आपकी सर्जनशक्ति समर्पित कीजिए। सच्ची इंसानियत इसी में है।

- मैं आपको कहता हूँ, धर्म मनुष्य के लिए है। मनुष्य धर्म के लिए नहीं। इस विश्व में आपको संगठित बनना हैं, समाज को एक संघ बनाना है। यदि इस विश्व में यश संपादित करना है तो हिन्दु धर्म का त्याग कीजिए। जो धर्म आपको इंसान के रूप में पहचानने को तैयार नहीं हो, वह धर्म तो 'धर्म' संज्ञा के लिए अपात्र है। जो धर्म आपको शिक्षा लेने नहीं देता, आपके उत्कर्ष के आड़े आता रहता है। वह धर्म धर्म मानने के योग्य नहीं है। जो धर्म उसके अनुगामियों को उनके धर्मबंधुओं के साथ इंसानियत से व्यवहार करना सिखाता नहीं है, वह धर्म नहीं है, अपितु एक रोग है। जो धर्म उसके अनुगामियों को अमंगल पशुओं के स्पर्श को सहन करना तो सिखाता है, किंतु इंसान के स्पर्श को असह्य मानता है, वह धर्म नहीं किंतु पागलपन है। जो धर्म कुछेक वर्गों को शिक्षा से दूर रखता है, धनसंचय करने नहीं देता हैं और शस्त्र भी धारण करने नहीं देता है वह धर्म नहीं, मानवजीवन की ठिठोली है। जो धर्म अज्ञानी अज्ञानी ही रहे और निर्धन निर्धन ही रहे ऐसा कहता है तो वह धर्म नहीं अपितु एसे संबंधित वर्ग के लिए एक सजा के समान है।
- मैं मेरे दलित भाइयों को एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि, आपने समाज के लिए क्या किया ? आप लोग गृहसंसार की झंझाल में ही मत पड़े रहो लेकिन जिस समाज में आपका जन्म हुआ है उस समाज की परिस्थिति क्या है उस तरफ भी आपको ध्यान देना चाहिए। अपने समाज की उन्नति और उद्धार के लिए संभवत: त्याग कीजिए। आप नौकरी करते-करते भी जितना हो सके उतने दान की सहायता कीजिए। महामुसीबत से मिली सुविधाओं का ज्यादा से ज्यादा लाभ उठाइए और शिक्षा प्राप्ति के बाद सरकार के महत्त्वपूर्ण स्थानों

पर नियंत्रण प्राप्त कीजिए। जहाँ से आप समाज की ज्यादा से ज्यादा सेवा कर सकोगे। यदि आपने सरकारी सहायता का इस्तेमाल कर उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की और उच्च पद प्राप्त नहीं किए तो बाद में पछतावा होगा। उच्च पद प्राप्त करने के बाद इस समाज को कभी मत भूलिएगा।

डॉ. अंबेडकर विषयक महानुभावों के विचार

- कोल्हापुर संस्थान माणगाँव में राज्य तरफ से अस्पृश्यों की प्रथम परिषद् मार्च १९२० में आयोजित की गई थी। उस परिषद् में शाहू महाराज विशेष उपस्थित थे। उन्होंने परिषद् में बताया कि "मेरे राज्य के बहिष्कृत प्रजाजनों, आपने अपना सही नेता ढूंढ लिया है। उसके लिए मैं आपको अंत:करण से अभिनंदन देता हूँ। मुझे भरोसा हो गया है कि डॉ. अंबेडकर आपका उद्धार किए बिना शांति से बैठेंगे नहीं, इतना ही नहीं एक ऐसा समय आएगा कि वे पूरे भारत के नेता बनेंगे। मेरा मत ऐसा कहता है।"
- अमरीका में अभ्यास के कार्यकाल दौरान वे प्रखर राष्ट्रभक्त और देशभक्ति की रात-दिन जलती मशाल समान लाला लाजपतराय के सम्पर्क में आए। डॉ. अंबेडकर से लालाजी प्रभावित हुए और अंबेडकर के लिए सेंलिंग्मन को लालाजी ने कहा "यह विद्यार्थी सिर्फ भारतीय विद्यार्थियों में ही नहीं, अमरीकन विद्यार्थियों में भी श्रेष्ठ हैं।"
- दिनांक ४ नवम्बर, १९२७ मुंबई में दामोदर सभागृह में "बहिष्कृत हितकारिणी सभा" के स्थान पर ब्रिटिश लोकसभा के मजदूर पक्ष के सभ्य मार्डी जोन्स का सम्मान करने का कार्यक्रम हुआ। उसमें जोन्स ने कहा कि, "इंग्लैंड, आयलैंड और स्कॉटलैंड इत्यादी मिलकर जितनी जनसंख्या होती हैं उससे भी अधिक अस्पृश्यों की संख्या इस देश में हैं। उनको इंसानियत के अधिकार नहीं दिए जाते हैं। वह शर्मजनक एवं कलंकित बात है। अंग्रेजों की तरह ब्राह्मणों को लगता हैं कि वे सर्वज्ञाति सुधारक हैं। पॉप की हार प्रोटेस्टेंटो ने की, यह बात ध्यान में रखने जैसी है।" आगे उन्होंने कहा कि, "सदभाग्य से अस्पृश्य समाज में अंबेडकर जैसे निष्ठावान महार पुरुष ने जन्म लिया है। यह महापुरुष अस्पृश्यों का उद्धार करेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है।"

- ब्रिटिश प्रधानमंत्री मेकडोनाल्ड, (प्रथम गोलमेजी परिषद् में व्याख्यान देने के पश्चात् अंबेडकर को शुभकामनाएँ देते हुए बोले थे) "अंबेडकर का यह व्याख्यान अर्थात् वाकपटुता कला का उत्कृष्ट नमूना है।"
- गोलमेजी परिषद् में व्याख्यान सुनने के पश्चात् श्रीमंत महाराजा सयाजीराव गायकवाड (उनके पत्नी के साथ बात करते हुए) "हमारे सभी प्रयास और पैसे सार्थक हुए। आज एक महान कार्य में मिली सफलता देखकर और उनको प्राप्त यश से आंनद हुआ।"
- कोचीन संस्थान के कांग्रेस के कार्यकर्ताओं द्वारा जून १९३१ में मंदिर प्रवेश के लिए आंदोलन चलया जा रहा था। अस्पृश्यों ने अंबेडकर को पूछा कि, "कांग्रेस के चलाए हुए मंदिर प्रवेश के आंदोलन में जुड़ना चाहिए कि नहीं ?" उन्होंने बताया कि, "हमें उनकी मदद पर अवलंबित नहीं रहना चाहिए और ऐसा करने से निष्फलता ही मिलेगी। हमें अपनी स्वातंत्र्य और इंसानियत अपने आप ही प्रयास करके प्राप्त करनी चाहिए।"
- कुलाबा समाचार – महाराष्ट्र

  इस अखबार का अंबेडकर के साथ सामाजिक सुधार के मुद्दों पर विरोध था। उसने वह विरोध भूलकर चिरनेर कबीले में जो स्वदेशाभिमान बताया उसके लिए धन्यवाद दिए। सायमन कमीशन के आगमन के प्रसंग पर अंबेडकर द्वारा की गई देशसेवा, गोलमेजी परिषद् के प्रथम अधिवेशन में बताए देशप्रेम का उल्लेख कर अखबार ने लिखा, "अंबेडकर पूर्ण राष्ट्रीय वृत्ति के नेता हैं। दूसरी गोलमेजी परिषद् में अपनी और मातृभूमि की कीर्ति वे बढ़ाए ऐसा हम चाहते हैं। भारतमाता के पैरों में पड़ी गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के कार्य में उनको गोलमेजी परिषद् में महात्मा गाँधी और अन्य नेताओं का पूरा साथ मिले।"
- इंडियन डेली मिरर

  "अंबेडकर बेजोड राष्ट्रभक्त हैं। भारत को स्वयंशासित सरकार मिले ऐसी

उनकी भावना है। भावी वादविवाद में और राजकीय संविधान के विषय में मतदान के अधिकार का प्रश्न अत्यंत महत्त्व का बनने वाला है। इस विषय में अस्पृश्य समाज का यह प्रभावशाली प्रतिनिधि अत्यंत मौलिक कार्य किए बिना रहेगा नहीं।"

- मिस मेयो ने "मदर इंडिया" ग्रंथ के दूसरे भाग में अंबेडकर के विषय में किए गए गैरजिम्मेदार विधानों का उत्तर देते हुए 'फ्री प्रेस जर्नल' के संवाददाता ने लिखा, "डॉ. अंबेडकर की स्वतंत्र, निर्भय और स्वाभिमानी वृत्ति सरकार, हिन्दु, मुसलमान इस सभी को ही अप्रिय, एक प्रकार की अस्वस्थता का निर्माण करेगी। एसी भावना है तो भी वे अस्पृश्य वर्ग के स्वीकृत कार्य की देखभाल करने के लिए समर्थ और लायक हैं। इस विषय में किसी के मन में कोई संदेह नहीं लगता है।"

- सर्वन्ट्स ऑफ इंडिया

  "गोलमेजी परिषद में अंबेडकर और न. म. जोशी की नियुक्ति अर्थात् जनता के सही पक्षकारों की नियुक्ति। समाज के निम्न स्तर से इन दोनों नेताओं का उदय हुआ है। एक गरीब मजदूर नेता तो दूसरा जन्म तथा तत्व से अस्पृश्यों का नेता। जिस गरीब और पददलित प्रजा के अधिकारों और हितों के लिए वे संघर्ष कर रहे हैं उस प्रजा जैसा सरल और निखालस उनका ध्येय है। वे समृद्ध नेताओं का लिहाज रखे बिना गरीब, मजदूर और पददलित प्रजा के हितों के लिए जो अबाधित ऐसे तत्व हैं उस तत्व के पुरस्कार के लिए निर्भयतापूर्वक आग्रह रखेंगे।"

- ऐतिहासिक पूना करार के पश्चात् रजनीशजी नामक कार्यकर्ता ने इस समग्र घटनाक्रम का मूल्यांकन करते हुए बताया कि, "गाँधीजी ने उपवास के सत्याग्रह से और अपने ही विचारों को किसी पर थोपना यह भी एक हिंसा ही है, और गाँधीजी के प्राण बचाकर अंबेडकर अहिंसक साबित हुए।"

- १९३८ में सरकारी लॉ कॉलेज, मुंबई के आचार्य स्थान से निवृत्त हुए तब लॉ कॉलेज की पत्रिका लिखती है, "ज्ञान तथा कर्तृत्व दोनों के विषय में विद्यार्थियों का अत्यंत आदर प्राप्त कर चुके एसे प्रिंसिपल की बहुत बड़ी कमी कॉलेज को पड़ेगी। वे अत्यंत संभालकर और मेहनत से व्याख्यान की तैयारी करके आते और विद्यार्थी भी उनके व्याख्यान एकाग्रता से सुनते।"

संविधान की रचना के बाद महानुभावों के डॉ. भीमराव अंबेडकर के विषय में विचार

- भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्रप्रसाद कहते हैं कि, "अध्यक्ष के आसन पर बैठे-बैठे मैंने हमेशा देखा है कि, मसौदा समिति के अध्यक्ष डॉ. अंबेडकर ने अस्वस्थ तबियत होने के बावजूद अन्य किसी व्यक्ति से ज्यादा सुंदर तरीके से अति उत्साह-लगन से कार्य किया है। दूसरी व्यक्ति से ज्यादा इस विषय में विशेष टिप्पणी की है। हमने डॉ. अंबेडकर को मसौदा समिति के सदस्य के रूप में रखकर एवं उसके अध्यक्ष के रूप में चुनने का जो फैसला लिया उससे अधिक अच्छा और सही निर्णय दूसरा कोई नहीं हो सकता। उन्होंने ना सिर्फ हमारे निर्णय को सार्थक किया है अपितु उन्होंने जो कार्य किया हैं उस महान कार्य से हमारे फैसले को चार चाँद लगा दिए हैं। निर्णय की सार्थकता पर सफलता का तुर्रा लगा दिया है।"

- **के. बी. राव :**

  संविधान के पिता डॉ. अंबेडकर नहीं परंतु नहेरु और सरदार थे। डॉ. अंबेडकर तो संविधान की जननी थे। उनको दूसरों के अस्त-व्यस्त विचारों को धारण करने पड़ते। उसका लालन-पालन करना पड़ता था। उसकी योग्य रखवाली कर पालन-पोषण कर अपने विचारों के अनुरूप व्यक्त करने पड़ते थे। उनकी संवैधानिक बुद्धि, उच्च कोटि की कार्यकुशलता, दृढ़ता, सौम्यता और उनके अथक परिश्रम के फल स्वरूप ही यह प्रक्रिया परिपूर्णता को प्राप्त हुई है तथा हमको एक आदर्श संविधान प्राप्त हुआ है।

- **डॉ. पायली :**

  डॉ. अंबेडकर अपार गुणों के चक्रव्यूह समान थे; विद्वत्ता, पांडित्य, कल्पना, तर्कशक्ति और वाकपटुता के विशेषज्ञ थे। जब वे संविधान सभा में बोलते,

तब संविधान में प्रविधानों के सुंदर और स्पष्ट स्वरूप नजर समक्ष घूमती और उनके बैठने के साथ ही शंका-कुशंका के संशय के बादलों का कोहरा बिखर जाता। उनको भारतीय संविधान के पिता और आधुनिक मनु मानना चाहिए।

■ **मुस्लिम नेता ताज मुल हुसैन :**

डॉ. अंबेडकर विश्वभर के संविधान के कायदे के हुनरमंद व्यक्ति थे, चातुर्य के ज्ञाता थे। जिसकी उनको खबर नहीं हैं उसको जानने की जरूरत भी नहीं है। नादुरस्त तबियत होने के बावजूद भी आरंभ से ही अपार परिश्रम करके राष्ट्र को महान संविधान का उपहार दिया है।

■ **श्री वी. आइ. मुनी स्वामी पिल्लै :**

भारतीय संविधान की मसौदा समिति के चेरमेन को अभिनंदन देते हुए मैं भावुक हो जाता हूँ। जिन्होंने रात-दिन अथक परिश्रम करके ऐसा सुंदर संविधान राष्ट्र के कदमों में रखा है उनकी महान शक्ति को अब ध्यान में लिया गया है। दलित वर्गों के लोगों ने राष्ट्र को भूतकाल में महान भक्त नंदनार भेंट दिए थे। महान वैष्णव संत तिरुपजनालवर भी उन्होंने ही हमें दिए थे। उनका नाम-काम भारत में ही क्या दुनिया के इतिहास में परिचित हैं। अब इस समाज ने हमें डॉ. अंबेडकर जैसे महापुरुष देकर भव्य गौरव परंपरा में वृद्धि की है। उन्होंने दुनिया को दिखा दिया है कि उपयुक्त मौका मिले तो पददलित भी सर्वोत्तम चोटी पर पहुँच सकता है, विश्व की सेवा कर सकता है।

■ **इतिहासकार डॉ. बी. पट्टाभिसीता रामैया :**

सिर्फ तीन वर्ष में संविधान का महत्त्वपूर्ण कार्य करके डॉ. अंबेडकर ने अतिशय दुर्दमनीय, अदृश्य और अजेय बुद्धि से 'स्टीम रोलर' का कार्य किया था। जिसने बड़ी-बड़ी अवरोधक चट्टानें खोदकर, वटवृक्ष उखाड़कर एवं छोटे

कंटीले जाल, कंटीली डाल साफ करके समग्र संविधान की भूमि को समतल कर परिमार्जित की। उनको सही लगा उसके लिए परिणाम की परवाह किए बिना आखिर तक जूझते रहे थे।

■ **न्यायमूर्ति मोहम्मद करीम चागला :**

हमें मिले अधिकारों को भुगतने वाला प्रत्येक नागरिक अंबेडकर का कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करेगा। मैं इस समारोह में उपस्थित रहा हूं, उसकी वजह अंबेडकर हैं। ये सिर्फ दलित समाज के नेता नहीं, वे समग्र राष्ट्र के नेता हैं, ऐसा मैं मानता हूँ। अंबेडकर और मैं एक ही समय इंग्लेंड में कानून का अभ्यास करते थे और दोनों ने वकालत का आरंभ भी साथ ही किया था। हम दोनों एक समय सरकारी लॉ कॉलेज में प्राध्यापक के रूप में काम करते थे। विश्व के एक महान संविधान विशेषज्ञ के रूप में डॉ. अंबेडकर अब प्रसिद्ध हुए हैं। राज्यशास्त्र के विषय पर अधिकारी वक्ता एसे प्रमुख नेताओं में उनकी गिनती होती है।

■ **विनोबा भावे :**

डॉ. अंबेडकर को दूसरा बौद्ध महाथेरो विनयधर उपाली माना जा सकता है। जिस तरीके से यह पूर्वाश्रम शुद्र (नाई) ने बौद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद तीसरे महीने बौधसंघ के संविधान विनयन को संहिताबद्ध किया गया वैसे ही भारतीय संविधान को 'भीमस्मृति' के रूप में नवाजा जा सकता है।

■ **काकासाहब कालेलकर :**

वर्णाश्रम के पीछे की भ्रामकता घातक भी है। हिन्दु समाज ने मनुस्मृति लिखकर हरिजनों का विकास रोक दिया, किंतु हरिजन डॉ. अंबेडकर ने देश के स्वराज्य का विधान लिखा, हिन्दु लॉ कोड उनके ही हाथों तैयार हुआ हैं। जिन लोगों को पिछड़े और बुद्धिहीन मानकर हमने पाखंडी माने, उनके ही हाथों आज देश का भविष्य लिखा गया है।

भारत में राजकीय समानता की व्यवस्था तो हो गई है,
लेकिन अभी भी सामाजिक और आर्थिक समानता थोड़ी ही उपलब्ध है।
यह विसंगति को त्वरित दूर करनी चाहिए, वरना शोषितों और वंचितों
राजकीय लोकतंत्र उखाड कर फेंक देंगे।

सत्ता अपने आप कभी भी आत्महत्या नहीं करती है।

डॉ. भीमराव अंबेडकर

डॉ. अंबेडकर द्वारा लिखे लेख और पुस्तकें

- प्रसिद्ध ऐतिहासिक महानिबंध "ध इवेल्युएशन ऑफ प्रोविंशियल फाइनांस इन ब्रिटिश इण्डिया।"
- १९१५ "प्राचीन भारत का व्यापार" एम.ए. की उपाधि प्राप्त की।
- १९१६ के मई महीने में डॉक्टर गोल्डन वेजर के परिसंवाद में "भारतीय जाति संस्था, उसकी यंत्रणा, उत्पत्ति और विकास" महानिबंध।
- १९१६ जून "भारत की राष्ट्रीय आय का बँटवारा: एक ऐतिहासिक पृथक्करण परिशीलन" महानिबंध कोलंबिया विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकार।
- 1918 Book on – "small holding in india and their remidies।"
- आठ वर्ष बाद लंदन की पी. एस. किंग एण्ड संस नामक प्रकाशन संस्था द्वारा यह महानिबंध "ब्रिटिश भारत की आर्थिक उत्क्रांति" नाम से प्रसिद्ध हुआ। ग्रंथ की छपी हुई कापियाँ कोलंबिया विश्वविद्यालय में पेश करते 'डॉक्टर ऑफ फिलोसोफी' डिग्री अनायत।
- "प्रोविंशियल डिसेंट्रलाइजेशन ऑफ इम्पिरयल फाइनांस इन ब्रिटिश इंडिया" विषय पर उन्होंने जून, १९२१ में एम.एससी. किया।
- १९२२ "रुपया का प्रश्न" महानिबंध लंदन विद्यापीठ समक्ष पेश किया।
- १९२३ में उनको डॉक्टर ऑफ साइंस की उपाधि मिली। इस लेख में उन्होंने ब्रिटिश राजकर्ताओं ने रूपये का प्रमाण ब्रिटिश व्यापारियों के कल्याण की दृष्टि से किस तरह तय किया है और भारतीय लोगों का कैसे अमर्यादित शोषण किया है, उसके पर प्रकाश डाला है।
- भिक्षुकशाही और पुरोहित वर्ग के खात्मे के लिए उन्होंने १९२९ में "बोम्बे क्रॉनिकल" में एक लेख लिखा था।

- उन्होंने दो संशोधन ग्रंथों दलित और बौद्धों के संबंध पर लिखे।

  (१) "शुद्रों की खोज"

  (२) "अस्पृश्य कौन थे और कैसे ?"

- १९४० – "थोट्स ऑन पाकिस्तान"
- १९४८ – THE UNTOUCHABLES

डॉ. अंबेडकर की जीवन तवारीख

दिनांक	वर्ष	जीवन तवारीख
१४ अप्रेल	१८९१	महू-मध्यप्रदेश की सैन्य छावनी में पिता रामजी सकपाल की पत्नी भीमाबाई के कुख गर्भ से जन्म।
	१८९६	प्राथमिक शिक्षा का आरंभ-पहली स्कूल सतारा की केम्प स्कूल।
	१८९६	माता भीमाबाई की दुखद मृत्यु।
०७ नवम्बर	१९००	सतारा वर्नाक्युलर अंग्रेजी स्कूल में प्रवेश।
जनवरी	१९०५	एल्फिन्स्टन हाईस्कूल मुंबई में प्रवेश।
दिसम्बर	१९०७	मेट्रिक परीक्षा में उत्तीर्ण, प्रथम बार भगवान बुद्ध के जीवन चरित्र के साथ परिचय हुआ। जो दादा केलुस्कर ने सम्मान में दिया था।
०३ जनवरी	१९०८	मुंबई की एल्फिंस्टंट कॉलेज में प्रवेश
अप्रेल	१९०८	शादी रमाबाई से।
दिसम्बर	१९१२	बड़े पुत्र यशवंत का जन्म।
०६ जनवरी	१९१३	अंग्रेजी, फारसी के साथ बी.ए. पास।
२३ जनवरी	१९१३	वडोदरा राज्य की नौकरी में जुड़े।
०२ फरवरी	१९१३	पिता की मृत्यु, वड़ोदरा की नौकरी छोड़ दी।
०४ अप्रेल	१९१३	विदेश उच्च अभ्यास के लिए महाराज सयाजीराव की तरफ से छात्रवृत्ति मंजूर हुई।
२० जुलाई	१९१३	उच्च शिक्षा के लिए न्युयॉर्क पहुँचे।
२१ जुलाई	१९१३	न्युयॉर्क, अमरीका की कोलंबिया युनिवर्सिटी में प्रवेश।

०२ जून	१९१५	'प्राचीन भारत का व्यापार' विषय पर संशोधन निबंध पेश कर कोलंबिया युनिवर्सिटी से अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र के साथ एम.ए. की उपाधि प्राप्त की।
०९ मई	१९१६	नृवंशशास्त्र के सेमिनार में 'भारत में जातियाँ' विषय का संशोधन निबंध पढ़ा।
१० जून	१९१६	'ब्रिटिश भारत में प्रांतिक अर्थव्यवस्था की उत्क्रांति' विषय का संशोधन महा निबंध लिखा, जिनको Ph.D. (डॉक्टरेट) की उपाधि प्राप्त हुई।
१० जून	१९१६	लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में आगे अभ्यास के लिए प्रवेश।
नवम्बर	१९१६	'ग्रेज इन' में 'बार' के लिए प्रवेश।
मई	१९१७	कोलंबिया युनिवर्सिटी से Ph.D. की उपाधि प्राप्त की।
२१ अगस्त	१९१७	वड़ोदरा राज्य की छात्रवृत्ति समाप्त होने से भारत वापस आए।
सितम्बर	१९१७	वडोदरा राज्य में सैनिक सचिव पद पर नियुक्ति। अस्पृश्यता के पाप से रहने के मकान नहीं मिलने से ग्यारहवें दिन इस्तीफा दिया।
११ नवम्बर	१९१८	सरकारी 'सिडहाम कॉलेज ऑफ कॉमर्स एण्ड इकोनोमिक्स', मुंबई में अर्थशास्त्र के प्राध्यापक के तौर पर नियुक्ति।
२७ जनवरी	१९१९	साउथ बरो कमीशन विरुद्ध दलितों के प्रश्नों की पेशी, रिपोर्ट प्रस्तुत की।
जनवरी	१९१९	समाजसुधारक और प्रगतिवादी कोल्हापुर के महाराजा शाहुजी महाराज के साथ मुलाकात और मित्रता।
३१ जनवरी	१९२०	मराठी पाक्षिक 'मूकनायक' का आरंभ।

फरवरी	१९२०	'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना।
मार्च	१९२०	माणगाँव में संपन्न महाराष्ट्र अस्पृश्य परिषद् की अध्यक्षता।
सितम्बर	१९२०	अधूरा छोड़ा हुआ अभ्यास पूर्ण करने इंग्लैंड गए, पुन: लंदन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स एण्ड पॉलिटिकल सायन्स में एम.एससी. पूर्ण करने और बेरिस्टर के लिए प्रवेश।
जून	१९२१	एम.एससी. के लिए शोध निबंध 'प्रोविन्शियल डिसेंट्रलाइजेशन ऑफ इम्पिरयल फाइनेंस इन ब्रिटिश इंडिया' लंदन विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया।
२० जून	१९२१	एम.एससी. की उपाधि प्राप्त की।
अक्टूबर	१९२१	डी.एससी. के लिए शोध निबंध 'प्रोब्लम्स ऑफ रूपी' लंदन विश्वविद्यालय में प्रस्तुत।
जून	१९२२	विशेष अभ्यास के लिए इग्लैंड के जर्मनी से 'बॉन' युनिवर्सिटी में गए।
०५ मई	१९२२	छत्रपति शाहुजी महाराज की आकस्मिक मृत्यु।
अक्टूबर	१९२२	डी.एससी. के लिए महानिबंध युनिवर्सिटी में प्रवेश 'The Problem of Rupee its Origin and its Solution' जो ग्रंथ स्वरूप प्रकाशित हुआ।
०३ अप्रेल	१९२३	पुन: स्वदेशागमन।
०५ जुलाई	१९२३	मुंबई हाईकोर्ट में वकालत का आरंभ।
०४ अगस्त	१९२३	अस्पृश्यों को सार्वजनिक स्थान में मुक्त प्रवेश, सी. के. बोले का प्रस्ताव।
२३ नवम्बर	१९२३	डी.एससी. की उपाधि प्राप्त की।
१५ जून	१९२४	पुत्र राजरत्न का जन्म।
१९ जुलाई	१९२४	पुत्र राजरत्न की मृत्यु।

२० जुलाई	१९२४	'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' का रजिस्ट्रेशन कराया। 'शिक्षित बनो, संगठित बनो, संघर्ष करो' का सूत्र दिया जो मुद्रालेख बन गया।
२० जून	१९२५	'बाटली बोयज एकाउंटेंसी इंस्टिट्यूट' में जुड़े।
०५ अगस्त	से	'प्रोफेसर ऑफ मर्कंटाइललो' के पद पर नियुक्ति।
	१९२८	'ब्रिटिश भारत में प्रांतीय अर्थ व्यवस्था का विकास'
	तक	महानिबंध ग्रंथ रूप में प्रकाशित किया।
	१९२५	भारतीय चलन के विषय में रॉयल कमिशन समक्ष आवेदनपत्र देकर पेशी की।
०५ अगस्त	१९२६	अस्पृश्यों को सार्वजनिक स्थानों पर मुक्त प्रवेश देने के लिए श्री सी. के. बोले के प्रस्ताव को अमल में नहीं लाने वाले नगर परिषदों और जिला मंडलों को दे जाने वाली वार्षिक धनराशि बंद करने का श्री बोले का प्रस्ताव।
दिसम्बर	१९२६	मुंबई प्रांतिक विधानसभा में सदस्य के तौर पर नियुक्ति।
१९ मार्च	१९२७	महाड में चवदार तालाब सत्याग्रह, अस्पृश्यों ने चवदार तालाब से पानी पिया।
०३ अप्रेल	१९२७	'बहिष्कृत भारत' पाक्षिक का आरंभ।
२५ नवम्बर	१९२७	'बहिष्कृत भारत' में संपादकीय 'अस्पृश्यता व सत्याग्रहाची सिद्धि'।
२५ नवम्बर	१९२७	महाड मैदान में पुन:क्रांति कर सत्याग्रह
२७ दिसम्बर	१९२७	मनुस्मृति के पत्र की होली।
१९ मार्च	१९२८	महार वेतन विधेयक विधिमंडल में रखा।
०८ अप्रेल	१९२८	समाज समता संघ की स्थापना।

मई	१९२८	इन्डियन स्टेच्युटरी कमीशन (साइमन कमीशन) विरुद्ध दलितों के प्रश्नों और समस्याओं की पेशी।
१२ जून	१९२८	सरकारी लॉ कॉलेज में प्रोफेसर।
२९ जून	१९२८	समता पाक्षिक का आरंभ।
जून	१९२८	'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' का विसर्जन, भारतीय बहिष्कृत समाज शिक्षा प्रसारक मंडल की स्थापना, भारतीय बहिष्कृत समाज सेवा समिति की स्थापना।
०३ अगस्त	१९२८	सायमन कमीशन को सहयोग देने के लिए नियुक्त विधानसभा की समिति में नियुक्ति।
०५ अक्टूबर	१९२८	सायमन कमीशन समक्ष मौखिक गवाह के रूप में उपस्थिति।
०५ नवम्बर	१९२८	स्टार्ट समिति की स्थापना सभ्य के रूप में नियुक्ति।
०७ दिसम्बर	१९२८	लाला लाजपतराय की मृत्यु पर 'बहिष्कृत भारत' में लेख।
२९ मई	१९२९	पातुर्डे में मध्यप्रांत दलित वर्ग परिषद् की अध्यक्षता।
	१९२९	मुंबई में मजदूरों हड़ताल।
१५ नवम्बर	१९२९	'बहिष्कृत भारत' में पर्वती सत्याग्रह की समालोचन।
०२ मार्च	१९३०	नासिक में कालाराम मंदिर प्रवेश के लिए सत्याग्रह।
०८ अगस्त	१९३०	अंबेडकरजी के अध्यक्ष स्थान से 'ऑल इंडिया डिप्रेस्ड क्लासिस' का नागपुर में प्रथम अधिवेशन।
११ सितम्बर	१९३०	प्रथम गोलमेजी परिषद् में अस्पृश्यों के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्ति।
०४ अक्टूबर	१९३०	प्रथम गोलमेजी परिषद् के लिए प्रस्थान।
२० नवम्बर	१९३०	प्रथम गोलमेजी परिषद् में व्याख्यान।
३१ जनवरी	१९३१	'जनता' पाक्षिक का आरंभ।

जुलाई	१९३१	लोगों द्वारा डॉ. अंबेडकर को 'दलितों के मसीहा' खिताब इनायत।
१४ अगस्त	१९३१	दूसरी गोलमेजी परिषद् में जाने से पूर्व गाँधीजी से मुंबई में प्रथम भेंट।
१५ अगस्त	१९३१	दूसरी गोलमेजी परिषद् के लिए मुंबई से प्रस्थान।
	१९३१	दूसरी गोलमेजी परिषद् में ३१ दिसम्बर को दलितों के लिए अलग मताधिकार की माँग के कारण अंबेडकर और गाँधीजी के बीच संघर्ष की शुरुआत हुई।
२९ जनवरी	१९३२	इंग्लैंड अमरीका का प्रवास करके मुंबई वापस आए, चौदह संस्थाओं द्वारा सम्मानपत्र अर्पण।
०६ मार्च	१९३२	राजा-मुंजे के समझौते पर दिल्ली में हस्ताक्षर।
२६ मई	१९३२	राजा-मुंजे के समझौते के कारण गुप्त तरीके से इंग्लैंड के लिए प्रस्थान।
१० अगस्त	१९३२	मेक्डोनाल्ड ने घोषणा की।
२५ सितम्बर	१९३२	गाँधीजी की जिद विरुद्ध उनके प्राण बचने के लिए अंबेडकर और गाँधीजी के बीच ऐतिहासिक 'पूना करार'।
२६ मई	१९३५	पत्नी रमाबाई की मृत्यु।
१३ अक्टूबर	१९३५	येवला नासिक में मिली परिषद् में धर्मांतरण की घोषणा।
१५ मई	१९३६	'जात-पात-तोड़क मंडल' लाहौर में दिया गया 'जातिभेद का नाश' व्याख्यान पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ।
१५ अगस्त	१९३६	स्वतंत्र मजदूर पक्ष की स्थापना, घोषणापत्र घोषित।
जनवरी	१९३७	मुंबई लेजिस्लेटिव एसेम्बली के बतौर सदस्य चुने गए।
१७ मार्च	१९३७	महाड कबीले का फैसला।

१५ मई	१९३८	सरकारी लॉ कॉलेज के प्रिंसिपल पद से इस्तीफा।
जनवरी	१९३९	'फेडरेशन विरुद्ध फ्रीडम' अंग्रेजी में ग्रंथ लिखा।
अप्रेल	१९३९	नहेरु अंबेडकर प्रथम भेंट, मुंबई।
२२ जुलाई	१९४०	अंबेडकर-सुभाष प्रथम मुलाकात, मुंबई।
०८ अगस्त	१९४०	गवर्नल जनरल का आश्वासन, कि अस्पृश्यों की सहमति के बिना संविधान में परिवर्तन नहीं होगा।
अप्रेल	१९४२	ऑल इंडिया शेड्यूअल कास्ट फेडरेशन की स्थापना।
०९ जुलाई	१९४२	गवर्नल जनरल की एक्जिक्युटिव काउन्सिल में मजदूर मंत्री के रूप में नियुक्ति।
०८ अगस्त	१९४२	कांग्रेस द्वारा भारत छोड़ो आंदोलन की घोषणा।
२९ अगस्त	१९४२	महाराज्यपाल के पास दलितों की माँगों का गुप्त निवेदन।
१५ दिसम्बर	१९४२	कनेडा में पेसिफिक रिलेशन्स कोंफरंस में भारत के अछूतों की समस्या के विषय में 'गाँधीजी और अछूतों की मुक्ति' विषय पर पेपर पेश किया।
१८ जनवरी	१९४३	'रानडे-गाँधी-जिन्ना' विषय पर ग्रंथ प्रकाशित किया।
२४ जून	१९४५	'गाँधीजी तथा कांग्रेस ने दलितों के लिए क्या किया ?' ग्रंथ का प्रकाशन।
१५ मार्च	१९४६	ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली द्वारा 'हिन्दुस्तान को स्वतंत्रता प्राप्ति के अधिकार' की घोषणा।
२० जून	१९४६	सिद्धार्थ कॉलेज का आरंभ
१८ जुलाई	१९४६	अंबेडकर-सरदार पटेल प्रथम मुलाकात।
१० अक्टूबर	१९४६	'शूद्रों की खोज' अंग्रेजी ग्रंथ प्रकाशन।
१७ दिसम्बर	१९४६	'अखंड भारत' के विषय संविधानसभा में राष्ट्रवादी व्याख्यान।
२० जनवरी	१९४७	पंडित नहेरू का 'मुलभूत अधिकारों' के विषय में रखा गया प्रस्ताव का स्वीकार।

११ अप्रेल	१९४७	हिन्दु कोड बिल विधिमंडल समक्ष प्रस्तुत।
२३ जुलाई	१९४७	संविधानसभा के लिए मुंबई से पुन: चुने गए।
२९ जुलाई	१९४७	प्रारूप समिति में नियुक्ति।
०३ अगस्त	१९४७	संविधान के लिए ड्राफ्टिंग कमिटी में नियुक्ति। भारतीय संविधान समिति की मसौदा समिति के अध्यक्ष पद से सर्वानुमत से चुनाव।
३० जनवरी	१९४८	गाँधीजी की हत्या।
०९ अप्रेल	१९४८	हिन्दु कोड बिल प्रवर समिति को भेजा गया।
१५ अप्रेल	१९४८	कु. शारदा कबीर के साथ पुन:लग्न जो सविता अंबेडकर के नाम से पहचाने गए।
नवम्बर	१९४८	संविधान समिति के अध्यक्ष के रूप में संसद में भारतीय संविधान का मसौदा पेश किया।
२५ नवम्बर	१९४९	संविधान समर्पण किया उस दिन संविधान विषयक ऐतिहासिक व्याख्यान दिया संविधान सभा के सदस्यों द्वारा सम्मान।
२६ नवम्बर	१९४९	संविधान पर आखरी मतदान।
२४ फरवरी	१९५०	लोकसभा में हिन्दु कोड बिल प्रस्तुत किया।
१५ जून	१९५०	औरंगाबाद में मिलिंद महाविद्यालय की स्थापना।
११ अक्टूबर	१९५१	'हिन्दु कोड बिल' पारित नहीं होने पर नहेरु मंत्रिमंडल से इस्तीफा। बतौर विरोधपक्ष के नेता लोकसभा में बैठे।
११ जनवरी	१९५२	लोकतांत्रिक भारत की प्रथम चुनाव में लोकसभा में मुंबई से ८३७५ मत से हार। दलितों के अलग मताधिकार और उनके नेता चुनने का अधिकार छीन जाने से यह परिणाम आया।

०५ जून	१९५२	अमरीका की कोलंबिया युनिवर्सिटी ने 'डॉक्टर ऑफ लॉ' की उपाधि दी।
दिसम्बर	१९५४	वर्ल्ड बुद्धिस्ट कोंफरंस रंगून में डेलिगेट के रूप में हिस्सा लिया।
०४ फरवरी	१९५६	१९३० में आरंभ किया 'जनता' पाक्षिक 'प्रबुद्ध भारत' के नाम से चलाने की शुरुआत की।
जून	१९५६	सिद्धार्थ लॉ कॉलेज का मुंबई में आरंभ किया।
३० सितम्बर	१९५६	'भारतीय रिपब्लिकन पार्टी' की स्थापना।
१४/१५ अक्टूबर	१९५६	अशोक विजया दशमी के दिन नागपुर में हिन्दु धर्म का त्याग करके बौद्ध धर्म स्वीकार किया।
१५/२० अक्टूबर	१९५६	नेपाल काठमांडू में चौथी विश्व बौद्ध परिषद् में सहभागी, पिरषद द्वारा बहुमान।
०५ दिसम्बर	१९५६	The Buddha and His Dhamma पुस्तक की प्रस्तावना देर रात तक पूर्ण की।
०६ दिसम्बर	१९५६	दिल्ली के २६, अलीपुर रोड के निवासस्थान से सुबह परिनिर्वाण हुए।
०७ दिसम्बर	१९५६	मुंबई के शिवाजी पार्क में अंतिम संस्कार हुए। जो अंबेडकर चैत्यभूमि के नाम से पहचानी जाती है।
१४ अप्रेल	१९९०	देशभर में अंबेडकरजी की जन्मशताब्दी मनाई गई। संसद में डॉ. अंबेडकर के तैलचित्र की स्थापना।
०३ जून	१९९०	डॉ. बाबासाहब अंबेडकर को मरणोपरांत भारतरत्न इनायत किया।

* * *